क्रौंचवध

मूल लेखक

वि० स० खांडेकर

अनुवादक

मोरेश्वर तपस्वी

विद्या प्रकाशन मन्दिर

नई दिल्ली 2

संस्करण प्रथम 1984
मूल्य रुपया 48 00
प्रकाशक विद्या प्रकाशन मन्दिर 1681 दरियागंज, नई दिल्ली 2
मुद्रक हरिकृष्ण प्रिंटर्स, दिल्ली 32

KRAUNCHVADH (a Novel by V S Khandekar)
Rs 48 00

क्रौंचवध जारी है

मा निपाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काम मोहिताम ॥

एक निमम अयाय को देखकर वाल्मीकि के हृदय की व्यथा इन शब्दो मे फूट पडी। क्रौंच पक्षियो का वह निरीह जोडा, मुक्त आकाश मे उडते-उडते एक पेड पर आकर बैठ जाता है। प्रणय मैथुन का एकान्त मिलने पर उसकी खुशियो मे वह खोए थे कि निपाद के वाण ने नरपक्ष को बेध दिया। करुण आक्रोश करते हुए अपनी जान की भी परवाह न कर क्रौंच-मादा विलाप कर उठती है। उसे क्या पता कि इस ससार मे निरीह जीव सुरक्षित नही है। दीन-दुखिया का कोई सहारा रखवाला नही। विवशता घोर अपराध है और निपादी शक्ति से प्रेरित अयाय के शरसधान से बच पाना किसी के लिए सभव नही।

इस अयाय से व्यथित वाल्मीकि का आक्रोश शाप उस क्रूरकर्मा निपाद के लिए शब्दो के अतिरिक्त कोई अथ नही रखता। निममता के आदी बन चुके उसके मन पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नही होती। अन्याय का प्रतिकार करने की सामर्थ्य वाल्मीकि मे मात्र शब्दो तक ही थी।

आज के युग मे भी क्रौंचवध निरन्तर हो रहा है दादा साहब ! अयाय को देखकर भावना के आसू बहाना और उसका बौद्धिक प्रतिकार करना आज की दुनिया मे कल की तरह नही हो सकता। समाजवादी लोग धम को अफीम की गोली मानते ह, किन्तु मेरी राय मे बुद्धि भी अफीम का काम करती है। इसी बौद्धिक अफीम का परिणाम आज हमारा समाज भुगत रहा

है। आप जसे प्रोफेसर जीवन भर पुराने काव्यो को रटते रटाते रहते हैं। मेधावान डाक्टर बीमारियो का उन्मूलन करने की बजाय दवाइयो की दलाली कर नर्सिग होम की दूकानें खोल रहे हैं और प्रतिभावान लेखक तोता-मना की प्यार भरी दास्तानें लिखने अथवा क्षुद्र मसखरेपन को भड कीले शब्दो रगो मे चित्रित करने मे अपनी बुद्धि खच कर रहे हैं। आज का बुद्धिवान सुखलोलुपता का पर्याय हो रहा है। यही कारण है कि अपने आपको बुद्धिजीवी कहलाने वाला वग गाधी जी के आन्दोलन से हमेशा अलग रहा।

क्रौंचवध आज भी जारी है, इसलिए वाल्मीकि का काम आज भी समाप्त नही हुआ है। पर आज की दुनिया कल की तरह रहने वाली नही है। आज के वाल्मीकि के पास तीर कमान होगा जो क्रूरकर्मा निषाद के बाणो को ऐसी जघन्यता के पूव ही हवा मे टुकडे टुकडे कर देगा तथा अपनी दुनिया म सुख से जीने वाले निरीह प्राणियो को निभय जीवन दने की पहल करेगा।

अमरकथा शिल्पी वि० स० खाडेकर ने एक विशाल फलक पर इस थीम को ऐसी व्यापक सवेदना दी है जो वाल्मीकि जैसी ही वेदना से प्रस्फुटित होकर चिन्तन का एक नया आयाम देती है-- जीवन को एक नई दृष्टि देती है।

लेखक

विष्णु सखाराम खाडेकर। जन्म 11 जनवरी 1898। अध्यापक और लेखक। 1920 से 1938 तक अध्यापन, 1919 से लेखन प्रकाशित होने लगा। कवि और हास्य व्यंग लेखक के रूप मे साहित्य मे प्रवेश। सन 1925 से कथाकार के रूप मे प्रसिद्धि। 1936 मे हस पिक्चस के लिए 'छाया' की पटकथा का लेखन।

लगभग ढाई सौ कहानिया, डेढ सौ निबन्ध इतनी ही समीक्षात्मक टिप्पणिया, बारह उपन्यास, अठारह पटकथाए अनेक सपादित ग्रथ भापण सग्रह आदि इनकी बहुमुखी प्रतिभा की साक्षी है।

इस सुदीर्घ साहित्य सेवा के लिए भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' से सम्मानित (1968), साहित्य अकादमी की फेलोशिप (1970) भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित होने वाले मराठी के प्रथम साहित्यकार। शिवाजी विश्वविद्यालय ही 'डी० लिट' की सम्मानित उपाधि—

मृत्यु 2 सितम्बर 1976।

अनुवादक

श्री मोरश्वर तपस्वी मूलत मराठी भाषी हैं, इसके साथ ही हिन्दी भाषा पर इनका पूरा अधिकार है। यही कारण है कि इनका यह अनुवाद मूल मराठी कृति को पूरी तरह आत्मसात कर हिन्दी मे उसकी अस्मिता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। श्री वि० स० खाडेकर की कई रचनाओ का अनुवाद इन्होने किया है।

पता—डी 2/71 पडारा रोड, नई दिल्ली 3

झननननझन्—

यह कौन भागा सितार के तार छेडकर ?

क्या सुलोचना थी ?

नही ! सुलोचना अब नन्ही सी दुधमुही बच्ची कहा रही है, जो भवरे की गुजार की नाई सितार की झकार सुनने की नटखट चाह से उसके तारा को यो छेडकर भाग जाय ?

अबके सावन मे पूरे चौबीस की हो जाएगी, फिर अब वह कुमारी सुलोचना दातार भी तो नही है। वह है श्रीमती सुलोचनाजी शहाणे !

जी हा, श्रीमती सुलोचना जी !

केवल सुलोचना जी कहने से शायद वह अपमानित हो जाएगी। सारी रामगढ रियासत उसे डाक्टरनी मानती है। जी हा, मेडिकल कालिज म गए बिना ही व डाक्टरनी हो गई है। फिर सुलू कोई मामूली डाक्टरनी नही है। किसी कोने मे धूलभरी तख्ती लटका कर रोगियो की प्रतीक्षा म मक्खिया मारते बैठने वाले डाक्टर की पत्नी थोड़े ही है वह। भगवतराव शहाणे छोटी उम्र के भले ही हो, किन्तु है वे रामगढ के सिविल सर्जन !

रामगढ नरेश उन पर बेहद खुश हैं। क्या भरोसा, कल भगवतराव जी को रियासत का दीवानजी ही बना दें !

सुना है, इधर कुछ दिनो से राजासाहब का शरीर ठीक मे नही चल रहा है। यह युद्ध समाप्त होते ही आबोहवा बदलने के विचार से व स्विटजलैण्ड जाने वाले हैं। डाक्टर भगवतराव भी अवश्य ही उनके साथ जाएगे, और भगवतराव के साथ सुलू भी। रही न बडे भाग्य की बात ? वरना एक सौ चालीस रुपये की मामूली माहवारी पर काम करने वाल एक अदना प्राध्यापक की लडकी यूरोप, अमरीका की सैर करने जा सकती है किसी ने सोचा भी होगा ?

तो इतनी बडी हो चुकी सुलू मेरे कमरे म आकर सितार के तारा को झकारकर गिलहरी की तरह एकदम भाग जाएगी ?

— असभव !

तभी यकायक प्राध्यापक दादासाहब दातार की तंद्रा टूटी। अर्धनिद्रा की अवस्था में मन कहीं उलझा था, उन्होंने अनुभव किया। गोधूलि-समय मे तरह-तरह के दृश्य आँखो के सामने आ जाते हैं, उन्होंने अपने आपको समझाया और सिरहाने के पास का बिजली का बटन दबाया। कमरा एकदम रोशन हो गया। दीवार पर टगी बडी घडी पाच पैंतीस का समय दिखा रही थी।

तो अभी जिसे सितार की झकार समझ बैठे थे वह घडी के घण्टे की आवाज थी। किसी सुभाषित मे शायद ठीक ही कहा है कि निद्रा और प्रेम का जादू साक्षात कठोरता को भी मुलायम बना देता है। किसका है वह सुभाषित ?

दादासाहब याद करने लगे क्या मेरे आदर्श भवभूति का ? नही-नही ! तो क्या किसी अन्य सस्कृत कवि का ? वह भी नही सुलू परसो वह खलिल गिब्रान ले आई थी मैंने योही पन्ने पलटकर सरसरी तौर पर उसे देखा था उसमे वर्णित उस मॅडमन का ही शायद यह वाक्य हो सकता है !

लगता है सुलू उस गिब्रान को आदर्श मानने लगी है। पीढी बदलते ही क्या आदर्श भी इस तरह बदल जाते हैं ? मेरा भवभूति उसे भाता नही और उसके दोस्त मुझे कतई अच्छे लगते नही ! लेकिन वह सुभाषित था किसका ? 'निद्रा और प्रेम का जादू ' वह गिब्रान का ही है या किसी

दादासाहब की स्मरण शक्ति काफी सोच विचार करती रही, किन्तु वह सुभाषित उनके संग आखमिचौली करता रहा। ऊबकर दादासाहब अपने से ही कहने लगे—

अभी ऐसा बुढ़ापा तो नही आया है, जो याददाश्त काम न कर सके। लेकिन पच्चीस छब्बीस वष लगातार वे ही बातें पढाते पढाते उकता गया हू। काश ! वह आज जीवित होती तो मेरा उत्साह अब भी '

घडी की दाहिनी ओर टगी अपनी धमपत्नी की तस्वीर पर उनकी दृष्टि गई।

पच्चीस वष पूव की ऐसी ही एक सुहानी भोर याद आ गई।

प्राध्यापक बने अभी एक ही साल हो रहा था। प्रात ठीक साढ़े पाच

पर उठता था। कालिज मे जो पाठ पढ़ाना होता था उसकी तैयारी किया करता था। यह क्रम बराबर चलता था। लेकिन उस दिन घड़ी ने साढ़े पाच का घण्टा बजाया तो आसानी से उठ बैठना संभव नहीं हो पाया।

मां से लिपटकर सो गए अबोध शिशु की निरीहता से धमपत्नी मुझसे लिपटकर गहरी नीद सो रही थी। सुलू के समय उसे दोहद आनी शुरू हो गई थी। दोहद लक्षण ये भी बहुत ही विकट, न ठीक तरह से खाना खा पाती थी, न नीद ले पाती थी। अभी पिछली रात ही तो उससे पूछा था ठीक उसी तरह उत्तररामचरित मे सीता की दोहदें पूरी करने के विचार से राम उससे पूछ चुके थे, 'सीत, तुम्हारा जी क्या चाहता है ?' सीता ने उत्तर दिया था, 'जी चाहता है कि गगामैया की पवित्र धारा मे फिर नहा आऊ '

'एक बात बताओगी ?'

पूछिए।'

'एकदम सही सही, मन की बतानी होगी। बिल्कुल, दिल की तह में बैठी बात ?'

उसने हसकर सिर हिलाया।

'अच्छा, बताओ, तुम्हारी दोहदपूर्ति मे क्या करू ?'

वह बोली नही। लगा, वह शरमा गयी है। मैं तुरत कह गया, 'तुम्हें मेरी कसम !' उसकी आँखें पनियाई। कुछ कपित स्वर मे बोली, 'पहले आप कसम हटाइए।' पत्नी के डरपोकपन की खिल्ली न उड़ाने वाला पति शायद अभी पैदा नही हुआ है। कसम हटाना तो दूर रहा, मैंने मखौल उड़ाते हुए कहा, 'हमने तो कभी सोचा भी न था कि पुनर्विवाह करने वाली लड़की भी इतनी सनातनी हो सकती है।'

उसकी आंखो से आसुओ की धार बह पड़ी। फिर भी मैंने अपनी जिद नही छोडी। ससार मे तीन ही हठ प्रख्यात हैं—बालहठ, स्त्रीहठ और राजहठ। कितु पतिहठ मे इन तीनो हठो का समिलन होता है। परिणाम यह रहा कि पतिहठ के सामने पत्नीहठ हार मान गया। उसने अपनी दोहद सही सही बतला दी। मिट्टी खाने को इसका जी बहुत चाहता था।

फिर क्या था ? मेरी जुबान कैंची की तरह चलने लगी। गुदगुदी कर बच्चे को हसाने मे जो मजा आता है, वैसा ही मजा शायद पत्नी को चिढा चिढाकर रुलाने मे भी है। कम-से कम पति जब तरुण हो तो उसे यह मजा अवश्य ही आता है। पता नही, प्रणय अपनी सारी कोमलता के साथ क्रूरता भी लिए आता है शायद ! कम-से कम मेरे जैसो का तो, जिनका बोलते रहना ही व्यवसाय है, ऐसे समय अपनी वाणी पर कोई नियत्रण नही रहता !

मिट्टी खाने की उसकी दोहद को लेकर मैंने उसका काफी मजाक उडाया। उसे जी चाहा उतना कोसा भी, 'कल तुम्हारे लडका हुआ, तो वह आई० सी० एस० के लिए जाएगा, खेतो की मिट्टी मे खपने वाला हल धर नही बनेगा वह, समझी ?' इस पर वह और भी दुखी हुई। कुछ भी कहिए यह सच है कि महिलाओ म विनोद बुद्धि जरा कम ही होती है।

रात मे हुइ इस मसखरी का अन्त आसुओ मे ही होना था, सो हुआ। पत्नी आखें पोछती हुइ दूर जाकर रूठ बैठी। इधर मुझे कब नीद लग गई, पता ही न चला। दैनिक आदत के अनुसार प्रात साढे पाच बजे नीद खुली और देखा कि पत्नी अबोध बालक की तरह लिपट कर सो गई। उठना मेरे लिए बहुत आवश्यक था। लेकिन बिना पत्नी की नीद तोडे वह कैसे सभव हो पाता ? सोचा, दिए हुए शब्दपाश से मुक्ति पा लेना आसान है किन्तु इस अतीव रोमहर्षक करपाश से छुटकारा कैसे पाया जा सकता है ?

घडी की सूइया आगे-आगे भागती जा रही थी। कालिज म मुझे प्रतिष्ठा प्राप्त करनी थी। कल के पाठ से आज का पाठ पढाना अधिक बेहतर तैयारी करके जाना था। इसके लिए आवश्यक सारी सावधानी मैं बरतता जा रहा था। आहिस्ता से मैंने पत्नी का हाथ अपने गले से हटाया। किन्तु बिस्तर स अभी उठा भी न था कि उसने भी आँखें खोल दी।

"मैंने कहा, तुम आराम से अभी सोयी रहो। मैं जरा पढने बैठता हू !"

नयनो की भाषा शब्दो से अधिक आसान होती है। उसने मेरी ओर एक नजर डाली। मैं उसके आलिगन से उठकर न जाऊ तो अच्छा, यह भाव उस एक दृष्टिक्षेप म उसने इतनी सहजता से जता दिया कि पल भर के लिए मैं भी बिस्तर पर ही रुक गया। उसने धीरे से कहा, 'सुनिए, आज

जी अच्छा नही है !'

मैं हँसकर उठ गया। मुह-हाथ धोकर पडोस के कमरे मे जाकर पढन बैठ गया। निशानी लगा रखी थी वही से आगे पढना प्रारम्भ किया। वही से आज कक्षा में पढाना था। वह श्लोक था—

'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वामगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ।।'

यह श्लोक मुझे बहुत ही पसद था। कविता की निर्मिति किस तरह अतीव कोमल भावनाओ से होती है, इसका यह एक श्लोक एक बेमिसाल उदाहरण था। छात्रो को उसका मर्म भलीभाति समझा सकने के विचार से मैंने चिंतन आरम्भ किया। देखते ही-देखते मेरी आँखो के सामने से क्रौंच-युगल ओझल हो गया। उसके स्थान पर मुझे अपनी तथा पत्नी की मुद्राए दीखन लगी। वही से कोइ निशाना साधकर मेरी पत्नी पर तीर चलाने जा रहा था। वह दुष्ट व्याध कौन था ? मैंने मुडकर देखा। व्याध के स्थान पर मुझे अपनी ही प्रतिमा दिखाई दी।

किताब फेंक दी, बत्ती गुलकर दी और वापस अपन कमरे मे जा पत्नी का सिर गोद मे लेकर मैं धीरे धीर उसे थपथपाने लगा। वह खिल उठी। हसकर उसने पूछा, 'आपको पढना था न ?'

'पढना तो था ?'

'तो जाइएगा, वरना कालिज के लडके दोष मुझे देंगे।'

'एक श्लोक का मम ठीक तरह से समझ मे नहीं आ रहा है, इसीलिए यहा आकर बठ गया हू !' कहते हुए मैंने वह श्लाक उसे सुनाया।

'मेरी तो खाक समझ मे नही आया।' वह बोली।

मैंन कहा, 'व्यर्थ का विनय दिखा रही हो। इसका मम अभी-अभी तुमने ही तो बताया था।'

मैंने ?' उसने आश्चय से पूछा।

'जी हा, तुम तुमने तुम्हारी इन सुन्दर आखो से !'

दादासाहब पत्नी की तस्वीर को एकटक देखने लगे। सोचने लगे, तस्वीर अच्छी है, एकदम हूबहू है। लेकिन आँखें वैसी नहीं बन पायी हैं, जैसी उसकी थी।

तभी घडी पर नजर पडी। पौने छह हो चुके थे।

वे तुरन्त उठे। उन्होंने सोचा उठने के लिए देरी हो जाने के कारण सुलू जरूर ताना कसेगी। इन दिनो बस एक ही रट-सी लगाती रहती है—"दादा अब आप बूढे हो चले, है न ?" लगभग एक माह पूर्व वह अचानक अकेली पीहर आई तबसे तो उसकी बातो में एक तरह का अजीब परिवतन आया-सा दिखाई देता है। वह एकदम मुहफट होती जा रही है। परसो किसी ने मसखरेपन से उससे पूछा, 'दादासाहब को धेवते का मुखदशन कब नसीब होने जा रहा है।' तो सुलू ने तपाक से उत्तर दिया, 'देश के सामने जन-सख्या बढाने का प्रश्न अब नही है। जो लोग हैं, उन्हें दो जून की रोटी नसीब कराने की ही समस्या है, समझे ?'

मुह-हाथ धोने के लिए दादासाहब स्नानगृह जाने को मुडे। जाते-जाते उन्होंने सुलू के कमरे की ओर देखा। वहा कोई बत्ती नही जल रही थी। दादासाहब ने सोचा, शायद अभी जागी नही है। उन्हे याद आया, अभी परसो ही की बात है, सुलू बता रही थी कि इन दिनो वह एक उपन्यास लिख रही है। हो सकता है रात मे देर तक लिखती रही होगी। वरना सुलू प्रात तडके ही उठी नही, ऐसा तो कोई दिन उन्हे याद नही आ रहा था।

गुसलखाने मे ब्रश करते करते दादासाहब की आखो के सामने नन्ही सुलोचना खडी हो गई। मा जब उसके दातो मे मजन करवाती तो सुलू जोर शोर से रोने लगती और किसी तरह भाग खडी हो जाया करती थी। मैं फिर उसे तोता-मैना की कहानी सुना-सुनाकर ले आता था और उसके दात माजते हुए कहता था 'देखो, कैसी बोल रही है बाजा की पिटिया'। फिर सुलू खिलखिलाकर हसती और स्वय अपनी उगली से रगड रगडकर दातो मे मजन किया करती थी। बस, केवल बीस साल ही तो बीते हैं तबसे। किन्तु उस सुलू म और आज की सुलू म कितना अतर आ गया है। इसमे कोई शक नही कि समय बहुत ही अजीब जादूगर है।

दादासाहब मुह धोकर बाहर आ गए। सुलू अब भी उठी नही थी। यह जानकर कि बिना चाय पिए किसी भी काम मे ठीक से मन नही लगेगा, वे सोच मे पडे कि क्या किया जाए ? क्या स्वय ही रसोई मे जाकर चाय

बनाई जाय, नौकर को जगाया जाय या सुलू को आवाज दी जाय ? सुलू एक माह पूर्व अचानक ही पीहर आई, उसी तरह चार दिन बाद वह अचानक चली भी जाएगी, फिर क्यो न उसके हाथ की बनी चाय इस बीच जितनी अधिक बार पी सकें उतनी पी जाय ? दादासाहब को अपने विचार पर हसी आ गई।

'मुझे बरबस क्यो जगा दिया, दादा ?' सुलू यदि ऐसा सवाल कर बैठी, तो उसका क्या उत्तर दिया जाय यह भी उन्होंने सोच लिया। वह सुलू से कहते, 'रेगिस्तान का प्रवास करने से पहले ऊँट जिस तरह भरपेट पानी पी लेता है, उसी तरह मैं भी तेरे हाथ की बनी चाय पिए रखने वाला हू। साल मे एकाध बार ही तू चार दिन के लिए पीहर आती है। उन चार दिनो मे मुझे पूरे साल भर का प्रबध कर ही लेना चाहिए, है न ?'

अपने इस उत्तर पर मन ही मन मिया मिट्ठू होते हुए दादासाहेब सुलू के कमरे के सामने आ गए। उन्होंने बहुत ही दुलार से पुकारा, 'बेटी सुलू '

भीतर से कोई उत्तर नही आया।

दादासाहब मन ही मन हसे। इतने प्यार दुलार से पुकारने पर तुरन्त जाग उठने के लिए सुलू कोई बूढी नानी थोडे ही चुकी थी।

उन्होंने जोर से आवाज दी—' सुलू "

परली ओर की वाटिका मे जाग उठे पछियो की चहचहाट दादासाहब को सुनाई दी। किन्तु सुलू के कमरे मे से कोई आहट तक नही आई।

दादासाहब कुछ बेचैन हुए। वे जान गए कि किवाड पर जोर से दस्तक किए बिना सुलू जागने वाली नही। उन्होंने किवाड पर उगली से टक-टक-टक किया। उस प्रशात वेला मे वह आवाज भी उन्हे इतनी कर्कश लगी कि फिर से किवाड पर वैसी दस्तक देने को उनका मन नही हुआ।

उन्होंने किवाड को थोडा ढकेलकर देखा। किन्तु उनके हलके धक्के से भी दोनो कपाट जोर से खुले और दीवार पर जा टकराए। पल भर के लिए दादासाहब के मन मे आया कि सुलू इस आवाज से चौंक उठेगी, वे कुछ भयभीत भी हुए। अधेरे मे दादासाहब को कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। उनकी सारी जिज्ञासा कानो मे आ गई थी। पलग की चरमरा-

हट या सुलू द्वारा करवट बदलने की आवाज कुछ भी तो सुनाई नहीं दे रहा था। यह ठानकर कि सुलू की इस कुंभकर्णी नींद का अब खासा मजाक बनाया जाए, दादासाहब ने बिजली का बटन दबा दिया।

सारे कमरे में रोशनी फैल गई किन्तु दादासाहब को वह अंधेरे से भी भयानक प्रतीत हुई, क्योंकि सुलू पलंग पर नहीं थी। यही नहीं, पलंग पर बिछी चादर में कहीं पर भी एक भी झुर्री नहीं पडी थी। ओढने के लिए तरतीब से रखी गई चादर भी तह की हुई ज्यों की त्यों रखी थी। उस रात सुलू के उस बिस्तर पर सोने के कोई लक्षण वहां नहीं थे।

दादासाहब चकित रह गए। सोचने लगे, आखिर यह लडकी रात भर बिना सोए कर क्या रही होगी? उस दिन एक सनातन वक्ता ने अपने भाषण में ठीक ही कहा था कि आजकल के नौजवान लोग एकदम भूत होते हैं भूत! उसका वह भाषण पढते समय तो यही लगा था कि शायद तालियों की आशा से ही उसने वह वाक्य कहा होगा। किन्तु सुलू का यह सारी सारी रात जाग कर बिताना क्या किसी भूतबाधा से कम है?

तभी उस दिन वह कह रही थी कि वह एक उपन्यास लिख रही है। अब यह उपन्यास लिखने का भूत सिर पर सवार हो जाए तो सोना-वाना और नींद का नाम लेना भी व्यर्थ ही है।

दादासाहब ने झुककर सुलोचना की मेज के नीचे झांक कर देखा। रद्दी की टोकरी कागज के टुकडे से लबालब भरी पडी थी।

दादासाहब को लगा कि उनका तर्क ठीक ही था, उपन्यास का कोई प्रसंग मनपसंद ढंग से शब्दबद्ध नहीं कर पाई होगी, इसीलिए शायद लिख लिखकर कागज फाडती चली गई होगी, जिनके टुकडों से यह टोकरी लबालब लद गई है शायद। प्रेम के समान कला की यह आसक्ति भी बडी अजीब हुआ करती है। बिटिया को समझाना होगा कि उपन्यास लेखिका के रूप में तुम्हारी कीर्ति सर्वत्र फले न फैले, पहले अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। इस तरह रात रात जागकर लिखती रही तो बीमार पड जाओगी और फिर भगवतराव कहेंगे, 'विवाह के बाद लडकी की चिंता कोई नहीं किया करता।'

इस कौतूहल से कि आखिर सुलोचना कौनसा उपन्यास लिख रही है,

टोकरी मे दादासाहब ने मुट्ठी भर कागज के टुकडे उठा लिए और एक-एक कर खोलकर देखने लगे। किसी भी टुकडे पर अखड पाच छह शब्द नही मिले। अतएव उनसे कुछ भी वोध वे पा न सके।

उन्होने गौर से देखा, एक टुकडे पर दो ही शब्द लिखे थे—'प्रिय दिलीप।'

लिखावट सुलू की ही थी।

दादासाहब को लगा, हो न हो, सुलू के उपन्यास का नायक दिलीप ही होगा और सुलू जो रात भर जागती रही वह इसी नायक को नायिका द्वारा लिखे जाने वाले पत्र की रचना उसके मनपसद नही हो पा रही थी इसीलिए।

उन्होने कागज के कुछ और टुकडे देखना शुरू किया। किसी पर सुलू के अक्षर दिखाई देते तो किसी और पर कुछ दूसरे की लिखावट दिखाई देती थी। वह दूसरी लिखावट भी अपनी जानी पहिचानी होने का आभास दादासाहब को होने लगा। किन्तु ठीक मे कुछ याद नही आ रहा था।

हर साल सैकडो विद्यार्थी उनसे विद्याग्रहण करके जाते थे। उनकी शक्ल-सूरत भी अब याद नही आती थी। वम्बई मे कभी-कभार कोई युवक रास्ते मे मिल जाता और नमस्कार करता हुआ कहता, 'सर, मुझे पहिचाना ? उस समय बडी पेशोपेश मे कह दिया करता, 'चेहरा तो जाना पहिचाना लगता है, लेकिन अब नाम जरा 'और किसी तरह बात का टाल जाता। तब वह युवक कहता, सर मैं आपका छात्र था। अब नगरपालिका मे काम करता हू। पाठशाला तथा कालिज मे पढी पढाई सारी बाता को भुला चुका हू। किन्तु आपने हमे जो 'उत्तररामचरित' पढाया था वह अभी तक याद है। यह सुनकर मैं फूला न समाता। किन्तु दूसरे ही दिन उस युवक का नाम और चेहरा फिर भूल जाता।

दादासाहब का विचार-चक्र चल रहा था। साथ ही वे दूसरी लिखावट के कागज के उन टुकडा का गौर से निरीक्षण भी करते जा रहे थे। उनकी अवस्था सागर तट की रेती मे खोया हुआ नया पैसा खोजने वाले के समान हा गई थी।

उकता कर उन्हाने वे सारे कागज के टुकडे फिर टोकरी मे डाल

दिए।

उन्होंने सोचा रात्रि के जागरण के कारण ऊबी हुई सुलू मुह अधेरे ही टहलने के लिए बाहर गई होगी। वे अपने से ही कहने लगे, 'घूमने और सर करने के लिए जाने का बचपन से ही बडा शौक है लडकी को ।' उन्हें याद आया—सुलू तब सात-आठ साल की नन्ही बालिका थी। उसे जब मालूम हुआ कि दादा उम सवेरे अपने साथ सर करने नही ले जाते, तो सबेरे पाच बजे ही वह बिस्तर मे उठ बठती। पौ फटने से पहले ही उसे साथ लेकर दादासाहब को सैर करने के लिए घर से बाहर निकलना पडता बाहर जाने भर की देर कि सुलू खुली हवा के झकोरो से हिलमिल जाती। गरमी के दिनो मे आकाश म केवल शुक्र का तारा ही दिखाई देता। सुलू उसकी ओर एकटक देखती रहती और उसे तोड लेने की इच्छा से अपना नन्हा हाथ ऊपर उठाती मानो वह तारा न होकर किसी लता पर खिला कोई फूल ही हो। प्राची म ऊषा के रग बिखरते ही सुलू बहुत ही मचल उठती। उन रगो की मेहदी से अपने नाखून रग लेने की बेताब इच्छा उसमे जाग उठती। पहाडी चढते चढते जब उसकी सास फूलने लगती तो वह देती; 'पहाडी का और ऊची होना चाहिए था ताकि मैं एकदम उसकी चोटी पर पहुच सकती और वहा खेलने के लिए इन्द्रधनुष उठा लेती।'

केले के तने के पास ही नए पौधे का अकुर उग जाता है। यादो का मामला भी कुछ ऐसा ही होता है। एक के बाद एक प्रसग याद आते ही जाते है।

दादासाहब को और एक प्रसग याद आया। बचपन से ही सुलु की कल्पनाशक्ति बहुत प्रखर थी। कविताओ से बहुत लगाव था उसे। इसीलिए वह आठ साल की होते ही मैंने उसे सस्कृत पढाना प्रारम्भ किया। ग्यारह वष की आयु में वह रघुवश पढने लगी थी।—दिनकर नामक एक गरीब छात्र था। मेरे यही रहता था। आगे चलकर वह बहक भटक गया। वरना आज सस्कृत का प्राध्यापक बनकर नाम कमाता—उस पर कोई मुकदमा दायर किया गया है, सुनता हू। हा, वह दिनकर हमारे यहा आया उसी वष सुलू की मा चल बसी।

दादासाहब के मन पर दिवगत पत्नी की याद उसी तरह हावी हो गई

जिस तरह एक पगडण्डी से दूसरी पगडण्डी निकलती है।

सुलू के बाद पैदा हुए दोनो लडके बचे नही। अपने कोई बेटा न होने का रज पत्नी को बहुत सता रहा था। दिनकर हमारे यहा रहने आया तब मैंने उससे कहा था, "लो, तुम लडका चाहती थी न, यह लो लडका आ गया!"

उसने तुरन्त हस कर जवाब दिया, "यह लडका नही, दामाद है मेरा!"

मा का वह जवाब सुनकर सुलू शरम के मारे क्या ही गडी जा रही थी। फिर आगे चलकर कितने ही दिनो तक इसी बात को लेकर मैं सुलू को चिढाता रहा था

पुरानी स्मृतियो मे रमा मन उतार पर लगी गाडी के समान होता है। वह अपने आप रुकने का नाम ही नही लेता। सुलू के बारे मे जागती जा रही स्मृतिया एक के बाद एक उभरती जा रही थी

तभी बाबूराम नौकर दो प्याले चाय के ले आया। कमरे मे दादासाहब को अकेला देखकर बोला, 'दीदीसाब कहा गई ?'

'घूमने गई होगी!'

'बिना चाय लिए वे कभी सैर को जाती नहीं', बुदबुदाता हुआ बाबूराम एक प्याली वापस ले गया।

चाय पीते पीते दादासाहब सोचने लगे कि क्यो न मैं भी सैर करने निकल पडू ? सुलू शायद पहाडी पर जा बैठी होगी! मुझे वहा देखकर वह दग रह जाएगी। फिर मैं भी मजाक करूगा, बेटी, आखिर भागोगी भी तो जाओगी कहा ? ले देकर पीहर से ससुराल या ससुराल से पीहर!'

सैर करने जाने के इरादे से दादासाहब ने खिडकी से बाहर झाककर देखा। घटा घुमडी आ रही थी। कब बरसेगी, कोई भरोसा नहीं था। ऐसे मौसम मे सैर के लिए जाना भी—

अचानक उनकी नजर कोने मे गई। सुलू की छत्री वही रखी थी। उन्होने सोचा, जवानी भी आखिर एक लुभावनी बेवकूफी का ही तो नाम है। बारिश के इन दिना सुलू छत्री लिए बिना ही तडके सैर करने निकल गई और एक मैं हू जो

घिरी घटाओ वाला आकाश तेवर चढे नानाजी के समान डरावना लग रहा था। दादासाहब ने सोचा नानाजी के इस गुस्से का सामना करने से यही अच्छा है कि घर मे ही कही छिपकर बैठा जाए।

दादासाहब अपने कमरे की ओर मुडे। कमरे मे पहुचते ही उनकी दृष्टि पत्नी की तस्वीर पर और कोने म रखी सितार पर पडी। उन्होंने सोचा कराल काल मुझसे मेरी जीवनसगिनी छीन कर ले गया, किन्तु यह दूसरी सगिनी मुझे कभी छोड कर नही जाएगी।

उन्होंने होले से सितार उठा ली। वत्सल पिता की ममता से उन्होने सितार के तारो पर उगलिया चलाना प्रारम्भ किया। ज्वार आए सागर की लहरें जिस तरह नाचती थिरकती किनारे की बालू पर फलती जाती है उसी तरह मधुर झकार की स्वर लहरें वातावरण की शून्यता को भरने लगी। देखते ही देखते मे वीरान नदनवन म वदल गया। स्वर लहरो की की मधुरिमा हर झकार के साथ बढने लगी—

दादासाहब स्वरतद्रा मे लीन हो चुके थे। पता नही उन्हे इस बात का भी होश था या नही कि वे बचपन मे सुनी 'इस तन धन की कौन बडाई' नामक चीज छेडते जा रहे है। उन्ह कुछ भी न याद था। वे भुला चुके थे अपनी प्रोफेसरी अपनी पत्नी की मत्यु सुलू का जिद्दी स्वभाव बस शेष था एक स्वर विश्व जिसमे दादासाहब अपने आपको भी खो बैठे थे।

साढे सात बजे बाबूराम दूसरी चाय लेकर आया तब उन्होने पूछा, 'सुलू ने चाय पी?" सुलू ने चाय पी ली होती तो दादासाहब का विचार था कि उसे इतनी सितार सुनाते इतनी सुनाते कि वह स्वयम ही कहती 'दादा अब बहुत हो चुका'। छुटपन मे वह इसी तरह सितारवादन सुनने सामने आकर बैठ जाया करती थी।

किन्तु बाबूराम ने उत्तर दिया, "दीदीसाब अभी लौटी नहीं है।"

"अभी तक ?" दादासाहब के मुह से यह एक ही शब्द दुनिया का सारा आश्चर्य अपने अन्दर समाता निकला। उन्होंने सहज भाव से एक झटके के साथ सितार गोद से उतार कर नीचे रख दी। किसी घवड़ाए फड़फड़ात पछी की करुणाभरी चीख सितार से निकली।

उस करुण चीत्कार के कारण दादासाहब ने चौंककर सितारपर नजर डाली अपने मन की उलझन पर उन्हे हसी आ गई। अपन से ही कहने लगे, 'हो सकता है, सैर से लौटते समय राह मे सुलू को कोई सहेली मिल गई होगी। उसने उसे चाय का आग्रह किया होगा। इन दिनो चाय ही नौजवानो का भगवान जो बन गया है! फिर चाय के साथ बाता की महफिल भला कहा टाली जा सकती है? फिर ये रही आधुनिक लडकिया! इनकी बातूनी महफिलो मे विषयो की कमी कहा? पाकिस्तान से लेकर परिवार नियोजन तक हर विषय पर कहने सुनने को इनके पास तक होने ही हैं!'

सडक पर कोई अखबार बेचने वाला चिल्लाता हुआ जा रहा था—'को फासी!' 'फासी की सजा'

दादासाहब ने उसकी ललकार सुनी। उन्हें लगा लपककर दौडते जाए और एक अखबार खरीदा जाय। किन्तु पल भर मे ही वह विचार उन्होने छोड दिया। अखबार मे उनका मन कभी भी रमता नही था, एक ही खबर को अलग-अलग अखबारो म बडे चाव से पढने वाला को देखकर दादासाहब को हसी आती थी। वे सोचते—'विश्वसाहित्य की अभिजात कलाकृतिया छाडकर ऐसा साहित्य पढने म पता नही लोगो को क्या इतना रस आता है। फला-फला ने अपनी पत्नी की नाक काट डाली और किसी और ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। इसके अलावा इन अखबारो मे धरा ही क्या होता है? गाधीजी के किसी भाषण का समाचार हो भी, तब भी उसमे वही घिसी पिटी प्रवचनकारी बातें होगी—चरखा चलाइए, खादी पहनिए, ग्रामसफाई कीजिए, देहात चलिए। बुद्धिवाद की कसौटी पर खरी उतरने वाली बातें चालीस करोड लोगा का नेता भी जहा नही कर पाता, वहा बेचारे इन पेटू अखबारो से क्या आशा की जा सकती है।'

आज कालिज मे जो पाठ पढाना है, उसे एक बार देख लेने के विचार से दादासाहब उठे। किन्तु तब भी 'फासी की सजा' चिल्लाते गए उस अखबार बेचनेवाले की वह ललकार उनके कानो मे गूज ही रही थी।

क्षणभर के लिए उनका मन थर्रा उठा। आखिर यह फासी की सजा किसे सुनाई गई होगी? कही कोई देशभक्त तो नही था?

दादासाहब ने अखबारों को हमेशा उपहास की दृष्टि से ही देखा था। उनका मन बोल, उठा 'अरे इन अखबारो का क्या, कोई डाकू भी फासी पर चढनेवाला हो, तो भी ये उस खबर को सुखियो मे छापने से नही चूकेंगे। सुलू अब अखबारो का ढेर लेकर आती ही होगी। फिर देखेंगे माजरा क्या है!'

दादासाहब आराम से अपनी कुर्सी मे जाकर बैठ गए। मेज पर दाहिनी ओर कालिज के काम की सारी किताबें तरकीब से लगा कर रखी हुई थीं। उन्होने सबसे ऊपर वाली किताब उठाई। 'उत्तररामचरित' थी वह निशान लगा पन्ना उन्होंने खोला। वहा नाटक का दूसरा अक हाल ही में प्रारम्भ हो चुका था। आत्रेयी और वनदेवता का सवाद चल रहा था। दादासाहब की नजर आज जो श्लोक पढाना था उस पर पडी—

'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥'

उन्होंने झट से किताब बद कर ली। यह उनका अत्यत प्रिय श्लोक था। किन्तु विगत बीस पच्चीस वर्ष में वे उसे इतनी बार पढा चुके थे कि—

चूस-चूसकर बिल्कुल साफ हो चुकी आम की गुठली के समान लगा उन्हे वह श्लोक! उन्होंने सोचा—पचीस वर्ष से लगातार वे ही किताबें मैं पढाता आया हू, उन्ही श्लोको का मर्म बार-बार उसी ढग से समझाता आया हू। किताबें भी वही, श्लोक भी वे ही, मर्म भी वही और पढानेवाला मैं वही, बरसो न धोया गया एक ही रेशमी वस्त्र, उसी जीर्ण शीर्ण अवस्था मे पहन कर, नियत समय पर दस स्थानो पर पूजापाठ करते आया एक गरीब पुरोहित और बरसो से उसी तरह का जीर्ण शीर्ण काला झब्बा पहन कर उन्हीं किताबो की उन्ही शब्दों मे छात्रो के सामने तोतारटन करता आया मेरे जैसा प्राध्यापक, दोनो में क्या अन्तर है? पहले का दस रुपये मिलते हैं और दूसरे को एक सौ चालीस, यही न?

तुरन्त ही उनका अहकार जाग उठा। अपने सैकडो मेधावी छात्रो की उन्हें याद हो आई। उन्होने कालिज का नाम कैसे रोशन किया, बडे बडे ओहदे तथा मोटे मोटे वेतन कैसे प्राप्त किए, सब उन्हें याद आने

लगा। ऐसे ही एक मेधावी छात्र ने कलक्टर बनने के बाद एक समारोह मे कितने आदरपूवक पूजनीय गुरुदेव दादासाहेब दातार का नामोल्लेख किया था! अब माना कि उन्हे लकीर का फकीर बनकर बरसो वही राम रटन करनी पडती है, किन्तु यह राष्ट्रधम की सेवा है, समाज-निर्माण का महान काय है।

उन्होने फिर उत्तररामचरित नाटक खोला। मन ही मन पक्का निश्चय किया कि आज 'मा निषाद' वाला श्लोक बहुत ही बढिया ढग से पढाया जाय। अपने से ही बोले, 'बूढा गायक भी महफिल मे कैसा समा बाध देता है, आज—

उन्होने पास की बडी आलमारी खोली। सुव्यवस्थित ढग से रखी नोट्स की कापिया तथा डायरिया देखकर दादासाहब के मन मे अभिमान की उत्तुग लहर उठी। उत्तररामचरित के नोटस ढूढने मे उन्हे देर नही लगी। दूसरा अक था—क्रौंचवध!

उस श्लोक पर उन्होंने जो नोटस निकाले थे उन्हे पढते-पढते वे विभोर हो गए। वे चाहते तो उस समय उस युवती की मनोदशा की भलीभाति कल्पना कर सकते थे जिसने हाल ही मे यौवन मे पदापण किया हो और अपना निखरता रगरूप देखने जो आइने के सामने खडी हो। नोटस पढते-पढते जवानी में अपनी प्रतिभा पर उन्हे बहुत ही नाज हो आया। उन्हे विश्वास था कि इस मामूली श्लोक का अथ बताते समय कोई भी प्राध्यापक साहित्य और जीवन का सुदर दर्शन छात्रो को वसा नही पढा सकता जैसा कि वे स्वयम पढाते रहे हैं। उनके नोट्स के अत म लिखा था—'वाल्मीकी के अन्त करण का शोक इस श्लोक मे प्रकट हुआ है। यथार्थवादी काव्य का सृजन इसी तरह आतरिक उर्मी सा हुआ करता है। अभिजात काव्य तब तक निर्माण नही होता जब तक कि अतरतल को कोई बात हिला नही देती, छू नही जाती। सागरमथन से अमृत का निर्माण हुआ। प्रतिभाशील कलाकार की भावनाओ का मथन भी उसी तरह अमर काव्य को जन्म देता है।

फिर वाल्मीकी के मन को जो चोट लगी, जो दुख हुआ वह किसी राजाधिराजा की मृत्यु के कारण तो नही था, किसी प्राकृतिक प्रकोप की

बारे में पूछने ही वाले थे कि उसी ने प्रश्न किया, "दीदीसाब कब तक आने-वाली हैं ? मालूम हो तो उस समय भात पका रखूगा।"

"आती ही होगी। किसी सहेली के साथ गप्पें लडाती बैठी होगी! आजकल की इन लडकियो की घडिया केवल कलाई की शोभा बढाने के लिए होती हैं, समय पर घर लौटने के लिए उनका कोई उपयोग नही हुआ करता।"

दादासाहब ने कहा और अपने विनोद पर खुश होकर वे जोर से हस पडे। रसोइया को भी हँसी आई, किन्तु उसकी घनी मूछो मे ही वह दबकर रह गई।

दादासाहब कालिज जाने के लिए निकले तब भी सुलू के वापस आने का कोइ ठिकाना नही था। अब दादासाहब के मन मे सराहना के स्थान पर क्रोध जागने लगा। ठीक है, सुलू अब बडी हो गई है, एकदम आजाद हो गई है। वह एक बडे डाक्टर की पत्नी बन चुकी है। लेकिन इसका मतलब यह तो नही कि उसे इस तरह का स्वेच्छाचार करने की भी आजादी मिल चुकी है। यह स्वछदता उसे कतई शोभा नही देता। तडके साढे पाच बजे से लेकर सवेरे ग्यारह बजे तक लडकी घर मे नही है, इसका आखिर मतल्ब क्या है ? क्या समझ कर तसल्ली करें हम लोग ? कही मोटर की चपेट मे तो

'स्वयम् जब तक मा नही बन जाती तब तक उस पिता का दिल क्या होता है, नही पता चलेगा!' बुदबुदाते हुए दादासाहब घर से बाहर चल पडे।

कालिज म जाकर देखत हैं कि प्रागण मे छात्रो के झुड जगह जगह पर खडे हैं। इस भीड भाड का कारण दादासाहब की समझ मे नही आ पाया। 1930 और 1932 मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुआ था। उसम यदि किसी नेता को गिरफ्तार किया जाता तो य छात्र अवश्य ही कक्षाओ का बहिष्कार कर इसी तरह बाहर जमा हो जाया करते थे। उन दिनो दगा फसाद करने पर उतर आए छात्रो को सम्बोधित करते हुए स्वयम उन्होंने जो कुछ कहा था उसम से एक वाक्य दादासाहब को अब याद आ गया। उन्होंने कहा था—'कालिज सरस्वती का मदिर है, कोई साप्ताहिक बाजार

नहीं।'' इसके जवाब में दिनकर ने कहा था, साप्ताहिक बाजार लगता है तभी जाकर दो जून खाना नसीब होता है। मंदिर में केवल पुजारी को ही सारा नवेद्य प्राप्त होता है। बाकी सारे लोग भूखे ही रह जाते हैं।''

उद्दण्ड लडको ने तालियां पीटकर दिनकर की बात को सराहा था। किन्तु दादासाहब को लगा, यह दिनकर की कृतघ्नता है। उसी दिन उन्होंने दिनकर को अपने घर से निकाल बाहर किया होता, किन्तु कालिज के लडको ने बात गांव भर मे फैली दी होती। इसीलिए दादासाहब ने अपने आपको समझाया था—दिनकर आखिर एक पुलिस अफसर का लडका है। उजडडता उसे छठी के दूध मे पिलाई गई होगी। उसकी बातों पर ध्यान न देना ही अच्छा।

दस वर्ष पूर्व की वह घटना दादासाहब को याद आ गई। उसी अवस्था में वे प्रध्यापकों के कमरे में दाखिल हो गए। कोने में लगी आराम-कुर्सी मे प्रिंसिपल साहब बैठे हुए थे।

दादासाहब के आश्चर्य की सीमा न रही। प्रिंसिपल साहब प्रध्यापकों के कमरे में कभी जाते नहीं थे। निश्चय ही वैसी ही कुछ बात हुई होगी। अन्यथा

दादासाहब को देखते ही प्रिंसिपल साहब बोले 'आइए, दादासाहब, मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।'

एक कुर्सी खींचकर दादासाहब प्रिंसिपल के पास बैठ गए।

प्रिंसिपल ने कहा, ''आज प्रसंग बहुत बांका आ गया है।'

''क्यों ? क्या हो गया है ?''

''यानी, आपको कुछ भी मालूम नहीं ?''

'दादासाहब रहे संस्कृत के प्रध्यापक। उनसे कोई कालिदास के जमाने बारे में पूछे, चार घंटे व्याख्यान देते रहेंगे। किन्तु आज के जमाने में क्या हो रहा है उसके बारे में उन्हें—'

विज्ञान के प्राध्यापक द्वारा कसी गई यह फब्ती प्रिंसिपल ने सुन ली। उन्होंने तेवर चढ़ाकर ऊपर को देखा तो सबकी फुसफुसाहट एकदम शान्त हो गई। कमरे में सन्नाटा छा गया।

प्रिंसिपल ने दादासाहब से कहा, 'आज लडको ने जिद पकड ली है ?'

"किस बात की।"

"कालिज आज बद करने की !"

"सो किस किए ?"

"अजी अपने उसको फासी की सजा सुनाए जाने की खबर आज अखबारो मे आई है न ?"

"किसे हो गई फासी की सजा ?"

"उसी दिनकर सरदेसाई को—हमारे कालिज का छात्र था वह ! अजी आपके यही तो रहता था न ?"

अब जाकर दादासाहब को सवेरे अखबारवाला जो चिल्ला रहा था उसका अर्थ समझ म आया। तीन-चार हफ्ते पहले दिनकर को रामगढ़ मे गिरफ्तार किए जाने की खबर उन्होंने पढी थी। किन्तु 'आन्दोलनवालो को जेलखाने से घनी मित्रता होती है' इतना कह देने के अतिरिक्त उस समाचार की ओर उन्होने कोई विशेष ध्यान नही दिया था। उन्होने प्रिंसिपल से पूछा, "आखिर इस दिनकर के बच्चे ने किया क्या था ?"

"रामगढ रियासत मे उसने लगानबदी का बडा भारी आन्दोलन खडा किया था ! सारी रियासत आन्दोलन के चपेट मे आ गई थी। दिनकर सकडा सभाओ मे भाषण देकर किसानो को लगान न देने के लिए उकसाता था। उसकी ऐसी ही एक बडी सभा को भग करने पुलिस गई थी। दिनकर के बहकाने पर लोगो ने पुलिस के तीन-चार आदमियो की बेतहाशा पिटाई की। एक इन्स्पेक्टर तो वही ढेर हो गया, कहते हैं !"

कुछ क्षणो के लिए कमरे मे भीषण शान्ति फैल गई। किन्तु कभी-कभी ऐसी शान्ति आधी से भी भयानक प्रतीत हुआ करती है। अबका प्रसग भी वसा ही जानकर विज्ञान के प्राध्यापक बोले, "यह सरदेसाई का बच्चा कालिज मे ता एकदम भीगी बिल्ली बना रहता था ! ज्योतिषविद्या का कोई विशेषज्ञ भी यह बता नही सकता था कि आगे जाकर दिनकर किसी की हत्या भी कर सकता है।"

इतिहास के प्राध्यापक ने बीच मे ही कहा, 'दिनकर पर अभियोग हत्या के लिए उकसाने का है, हत्या करने का नही !"

'किन्तु उसी अभियोग मे उसे फासी की सजा सुनाई गई है !"

इतिहास के प्राध्यापक जरा जोश मे आकर बोले, "सत्ता सजा तो दे सकती है लेकिन सत्य सत्ता से भी बड़ा होता है भूलिए नहीं।"

इस विवाद को आगे बढने से रोकने के लिए प्रिंसिपल ने कहा, "दिनकर हमारे कालिज का भूतपूर्व छात्र है, रामगढ़ रियासत का लोकप्रिय नेता है, इसीलिए इस सजा का विरोध करने के लिए आज कालिज बद रखा जाए, ऐसी छात्रो की माग है। लेकिन दिनकर के बारे मे सचमुच मैं बहुत दुखी हू, इतना मेधावी छात्र इस तरह बरबाद हो जाए, इसका बहुत रज है मुझे। वास्तव म सब कुछ ठीक राह से जाता तो आज वह यहा कमरे म हमारा सहयोगी बनकर बैठा होता। किन्तु—"

प्रिंसिपल साहब ने अपनी भावनाओ को बरबस रोका। शून्य नजर म सामने की दीवार पर टगी लक्ष्मी की तस्वीर की ओर देखते हुए बोले, "हम यह कदापि नही भुला सकते कि रामगढ़ नरेश हमारी इस सस्था के उपाध्यक्ष हैं।"

सभी प्राध्यापको के चेहरा पर 'आप सही फरमाते हैं' के भाव उभरे थे।

प्रिंसिपल साहब उठ खड़े हुए। 'कालिज के सभी घण्टे हमेशा के अनुसार बराबर चलते रहना चाहिए, कक्षा म एक भी छात्र न रहा, तब भी।' कहकर वे चले गए।

दादासाहब सन्न हो गए। दिनू फासी पर चढ़ेगा? कितनी बडी बडी आशाए लेकर मैं उसे इस कालिज म ले आया—

बाहर के शोर के कारण वे होश मे आए, सचेत भी हो गए। लडके जोर जोर से नारे लगा रहे थे— महात्मा गाधी की जय', 'जवाहरलाल नेहरू की जय, दिनकर सरदेसाई की जय। दिनकर सरदेसाई अमर रहे।'

फासी पर चढने वाले की जय? वह अमर रहे? कसे?

दादासाहब की पडिताई बोल उठी —इससे बढकर 'वदतो व्याघात' का उदाहरण क्या हो सकता है?

अपना काला झब्बा चढ़ाते समय एक विचित्र कल्पना उन्हे छू गई। काला वेष शोकसूचक है। दिनकर को हुई सजा से कालिज का कोई सबध नही, कालिज को उससे कोई लेना-देना नही, यह दरसाना हो तो आज यह

काला झब्बा नही पहनना चाहिए।

किन्तु आदमी आदत से लाचार होता है। काला झब्बा पहने बिना कक्षा पर जाने को उनका मन तयार नही हो पाया।

नित्य की भान्ति उन्होने कक्षा म प्रवेश किया तब वे काफी गभीर थे। कक्षा म चारो ओर उदासी फैली थी इसे उन्होने अनुभव किया। प्रतिदिन वे कक्षा म आते तब पक्षियो की चहचहाहट की भान्ति छात्रो की आपस मे बातें हुआ करती थी। दादासाहब को वह भाती भी थी। किन्तु आज कक्षा मे चार पाच ही विद्यार्थी थे। वे भी दूर-दूर बठे थे, मानो मील के पत्थर हो। दादासाहब को दिनकर की जबरदस्त याद हो आई। बेटे के समान वह उनके घर रहा था। उसकी मेधा, प्रेमपूर्ण व्यवहार, सुलु के साथ उसकी मत्री—

यथासभव निर्विकार मुद्रा से उन्होने उत्तररामचरित खोला और श्लोक पढा—

'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम ॥'

श्लोक पढकर वे रुके। हमेशा की भान्ति उनकी वाणी का स्रोत नही चल पा रहा था। उन्हे लगा, रेगिस्तान म जाकर नदी की धारा अचानक लुप्त हो जाए वसी अपनी वाणी की दशा हो गई है। इस खाली क्लास मे व्याख्यान क्या दें?

तुरन्त उनकी कर्तव्यबुद्धि जाग उठी। उन्होन बोलना प्रारम्भ किया। वाल्मीकी के क्रोध का वणन उन्होने बहुत ही सरसता से किया। क्रौंच पछियो का जोडा ससार के निष्पाप जीवो का प्रतीक है। उसक आनन्द का नाश करने वाले व्याध को वाल्मीकी का शाप—

निषाद और हिटलर! दादासाहब बोलते चले गए, 'महाकवि का काय उसकी अपनी पीढी तक ही सीमित नही रहता। वह युग-युगो तक चलता रहता है। वाल्मीकी का काय आज भी समाप्त नही हुआ है। ससार मे आज भी क्रौंचवध जारी है। क्षण-क्षण प्रतिपल लाखो निरपराध जीवो की हत्या आज भी ससार मे हो रही है। आज के समाचार पत्र को पढिए—'

दादासाहब को तालियों की प्रचंड गडगडाहट सुनाई दी। उन्होंने सामने देखा। कक्षा में चार-पाच लडके बुत बने बैठे थे। तालियों की गडगडाहट बाहर हो रही थी। बाहर विद्यार्थी नारे लगा रहे थे—'सरदेसाई की जय—दिनकर सरदेसाई जिंदाबाद !'

उन्होंने आखें मूद ली। मुंदी आखो के सामने वह श्लोक नाचने लगा। आकाश मे बादल देखते ही देखते मे जिस तरह जाने-पहिचाने आकार धारण करते हैं, उसी प्रकार उस श्लोक के शब्द दृश्यो मे साकार होने लगे, पेड पर बैठा वह क्रौंच-जोडा नहीं ! पेड पर पछी हैं ही कहां ? यह यह दिनकर और वह वह सुलोचना दोनो मे कितना स्नेह था। बचपन में।

दादासाहब की समझ मे नही आ रहा था कि होश में भी है या नहीं। सुलू को पढ़ाते समय वे दोनो इसी तरह सटकर बैठा करते थे। किन्तु किसी क्रूरकर्मा ने तभी तीर मारा वह तीर दिनकर को जाकर लगा उसके शरीर से बह निकली रक्त की वह धारा

यह आभास पल भर में समाप्त हो गया। किन्तु दादासाहब का वह पल भूचाल के पल सा प्रतीत हुआ महाभयकर। उन्होंने झट से आखें खोली और कहा, 'आज का पीरियड यहीं समाप्त किया जाए, आज तबीयत कुछ ठीक नही है।

घर लौटते समय दादासाहब को रह रहकर इसी बात पर आश्चर्य हो रहा था कि संस्कृत का पाठ पढाते समय आज अपना, मन इतना भावुक कैसे हो गया था। बारह वर्ष पूर्व पत्नी का अतकाल समीप आ गया जान कर मन की शाति बनाए रखने के लिए उन्होने गीता का दूसरा अध्याय पढना प्रारम्भ किया था। और आज चार वर्ष उनके घर रह चुके एक आदोलनकारी युवक को फासी की सजा सुनाई जाने का समाचार पढकर उनका मन बौरा गया था। आखिर ऐसा क्यो ?—दादासाहब उधेडबुन में फंसे थे। सुलू इन दिनो हमेशा उनसे मजाक करते हुए कहा करती है दादा अब आप बूढ़े हो चले !' यदि उसे यह मालूम हो जाए, तो—

सवेरे की गई नटखटपन के लिए क्षमा मागने सुलू अब दरवाजे में

ही खडी होगी, दादासाहब सोच रहे थे। उसी सोच मे उन्होने घर का फाटक खोला । किन्तु भीतर का दरवाजा अभी बद ही था—

यह जानकर कि सुलू अब भी घर नही लौटी है, दादासाहब के मन म डर और क्रोध की घटाए उमड आइ।

बाबूराम द्वारा बनाई गई चाय पीकर वे तुरन्त सुलू के कमरे म गए। वहा की सारी चीजें ज्यो की त्या रखी हुई थी। सदूक, चमडे का बैग, होल्डाल, सब कुछ अपने अपने स्थान पर था। सुलू सभवत शहर म ही किसी के यहा गई होगी वहा जाने के लिए उसे बहुत आग्रह किया गया होगा, भोजन भी शायद वही करना पडा होगा, अब शाम की चाय लने के बाद '

सभावित ढग से उन्होने सुलू की मेज की दाई दराज खोली । बालो मे लगाई जानेवाली पिनें, काटे, रग-बिरगे फीते, दो-तीन सुन्दर कघे, दो एक तेल की शीशियाँ वह सारी प्रदशनी देखकर दादासाहब हसे । उन्होने सोचा, 'कब से सता रही आशका कि सुलू पागल जैसी कही भाग जाएगी, कितनी व्यथ है ! पुरुष पल म फकीर बन सकता है, किन्तु स्त्री इतनी आसानी से जोगन नही बन सकती।'

उन्होने बाई दराज खोलना चाहा। किन्तु उसमे ताला लगा था। दादासाहब सोचने लगे। सभवत बिटिया जो उपन्यास लिख रही है, इसी दराज म रखा होगा ! मानव स्वभाव भी कितना अजीब होता है ! वह ऐसी चीजें, जिनको लेकर आगे सारी दुनिया उसकी सराहना करने वाली हो, प्रारम्भ मे दुनिया से छिपाना चाहता है। फिर वह किताब हो या सतान। यह दराज खुली होती तो मैं सुलू के उपन्यास की पाण्डुलिपि तेजी से पढ डालता और उसके घर लौटते ही उसकी पीठ थपथपा कर कहता, 'भई वाह ! उपन्यास बहुत ही सुन्दर बन पडा है। किसे अपण करने का विचार है ? मुझे या अपनी मा को ?'

दादासाहब कमरे स बाहर जाने को निकले। किन्तु तभी उनका ध्यान रद्दी की उस टोकरी पर गया। उसम कागज के टुकडे अभी वसे ही पडे थे, शायद बाबूराम सवेरे टोकरी खाली करना भूल गया था।

दादासाहब ने आवाज लगाई, 'बाबूराम, ! तभी उनका ध्यान टोकरी

मे सबसे ऊपर पडे एक कागज के टुकडे पर गया। फीके पीले रग का कागज था। उन्होंने झट से उठा लिया। तार के लिफाफे का टुकडा था वह। 'सुलोचना' उस पर साफ लिखा दिखाइ देता था!

सुलू को किसका तार आया? कब आया? सवेरे से तो वह गायब है। इसका मतलब यह तार कल—

कही भगवतराव का तो नही था तार?

नही!

फिर किसका?

शका कुशकाओ ने दादासाहब को परेशानी म डाल दिया। मन तडप उठा। तीन चार हफ्ता पहले सुलू अकस्मात पीहर आई, तब उन्होंने उससे कहा था 'अरी आने की सूचना तो दे देती चिटठी भेज कर!' और सुलू ने जवाब दिया था, 'अकस्मात आ खडी होने का आनन्द कुछ और ही होता है, दादा! वर्षा की वष्टि से बेमौसम आनेवाली फुहार अधिक आनन्द देती है, न?'

ऐसी हाजिर जवाबी लडकी से उसके पीहर चली जान के कारण पूछना भी तो मुश्किल ही होता है। दो एक बार दादासाहब के मन म विचार आया कि हो न हो पति पत्नी मे झगडा होने के कारण ही सुलू चली आई है। घुमा फिरा कर अपनी आशका प्रकट करने पर दादासाहब से उसने हस कर कहा था, 'आजकल के लेखको का कहना है कि विरह प्यार बढाता है। इसीलिए हमने तय किया है कि दो एक महीने एक दूसरे मे अलग रहा जाय!'

"साबजी!' बाबूराम की इस पुकार से दादासाहब अपनी विचारतद्रा से निकल कर फिर जमीन पर उतरे। गदन उठाते ही बाबूराम ने पूछा, 'जी साब?'

'मैं एक तार लिख देता हू। तारघर जाकर उसे दे आओ।

सुलू की मेज पर ही दादासाहब ने तार लिखा—

'भगवतराव शहाणे, दरबारी सजन, रामगढ—
सुलू के सकुशल पहुचने की खबर दें
—दादासाहब।

बाबू तार लेकर चला गया। तब दादासाहब को लगा तार देना गलती है! सुलू शहर मे ही किसी के यहा रही होगी, शाम को लौट भी आएगी, ऐसी हालत मे मेरा तार पाकर भगवतराव व्यथ ही पेशोपेश मे पड जाएगे।

नहीं! ऐसा नही होना चाहिए। बाबूराम को लपककर रोका जाए, तार करने से उसे मना किया जाए, दादासाहब ने सोचा, किन्तु उनका शरीर अपनी जगह से हिला नहीं।

बाबूराम के लौट आने तक वे बठे सोचते रहे, सुबह से सुलू लापता है। किसी सहेली के यहा रह भी जाती तो कम से कम घर सन्देश तो भेजना चाहिए था? कालिज म मुझे फोन ही कर दिया होता!

सुलू के लापता होने की सूचना पुलिस मे दी जाय तो कसे?—

नही! वहा से तो बात सारी दुनिया म फल जाएगी। इसमे भगवत राव के सम्मान को ठेस पहुचेगी एक रियासत के दरबारी सजन की पत्नी लापता है, यह समाचार फिर अखबार वाले भी अपनी ओर से चटपटा बनाकर छापेंगे। हिंदुत्वाभिमानी मुसलमानो पर स देह करेंगे, सनातनी लोग सुधारवादियो को कोसेंगे और व सब लोग, जिनकी बटियो से विवाह करने से भगवतराव ने इन्कार कर दिया था, मुझे खाने को दौडेंगे।

लेकिन इस बिटिया का भी क्या भरोसा? कालिज म पढते समय एक दिन वह अपनी मौसी के यहा जाने को निकली थी। उसके प्रस्थान की सूचना देन वाला तार भी मैंने दे दिया था। दूसरे दिन उसकी मौसी के यहा से उलटा तार आया था कि सुलू वहा पहुची ही नही। मैं बहुत ही परशान रहा। शाम को मौसी का फिर तार आया कि सुलू सकुशल है सतारा म! ट्रेन मे किसी रामदासी स उसकी भेंट हो गई। रामदासी ने सज्जनगढ का बहुत ही रसीला वणन उसे सुनाया। वह सुनकर सुलोचना जी उतर गइ सातारा।

आज भी उसे कुछ ऐसी ही सनक तो नही उठी? हो सकता है कि अपने उप यास मे वह किसी पास-पडौस के स्थान का वणन करना चाहती होगी और लिखने से पहले स्वय उस स्थान को देख आना चाहती होगी। इसी विचार से यह आधुनिक विदूषी तडके ही घर से चली होगी और अब

चलते-चलत थक गई होगी—

दादा साहब ने अपने आपको समझाया कि शाम तक सुलू अवश्य ही घर लौट आएगी।

व टहलने निकले। विचार था कि पहाडी पर किसी एकात स्थान म जाकर थोडी देर बैठा जाए। नुक्कड से पहाडी की ओर जाने वाले रास्ते पर वे मुडे। एक दुकान के बाहर आज की ताजा खबरें लगी थी। उन्होंने 'फासी की सजा' वाले समाचार का एक अक खरीद लिया। पहाडी पर एक एकात स्थान म बठकर वे पढने लगे।

दिनकर पर अनेक अभियोग लगाए गए थे। रामगढ नरेश के विरुद्ध लोगो को भडकाने वाले भाषण अनेक सभाओ म कर उसने राजद्रोह किया था। कई बार उसने परोक्ष इशारो द्वारा अत्याचार और हिंसाचार का समथन किया था। अत म किसानो का एक विशाल मोर्चा निकालकर पुलिस इस्पेक्टर और उसके सहायको पर प्राणघातक हमला करने के लिए उसने लोगो को उकसाया था। पुलिस का दावा था कि इस हमले के समय भेस बदलकर दिनकर भीड म उपस्थित था। इस दावे का कारण यह दिया गया था कि उसी समय दिनकर की मा अपनी अतिम घडिया गिन रही थी और फिर भी दिनकर उसके पास मौजूद नही था। दरबारी सजन भगवत राव शहाणे उस समय दिनकर की मा का स्वास्थ्य देखने गए थे। उनकी गवाही भी इस मुकदमे म हुई थी। उस समय मैं सभा के स्थान पर नही, कही और था, यह बात दिनकर किसी भी तरह प्रमाणित करने मे असमथ रहा था।

दादासाहब ने अखबार से नजर उठाकर ऊपर की ओर देखा। पश्चिम म रक्तिम सूरज डूब रहा था।

घर पहुचते ही रसोइय ने पूछा, "दीदीसाब खाना खाएगी न ?"

दादासाहब ने शात भाव से उत्तर दिया 'वह आज अपनी सहेली के यही रहन वाली है।' अपने उत्तर पर व स्वय चकित थे। मन ही मन कह भी रह थे—'देखा आदमी अपने आपको कितना धोखा देता है।'

भोजन करते समय उनका जी खानपान म कतई नही लग रहा था।

सुलू के विवाह के बाद अकेले भोजन करने की आदत उन्हे लग गई थी। किन्तु आज—

अभी उनका भोजन आधा भी न हुआ था कि दरवाजे पर घटी बज उठी। बाबूराम जाकर तार लेकर आया। हाथ धोकर दादासाहब ने हस्ताक्षर कर दिए और कुछ कापते हाथो से लिफाफा खोला। अपने तार का सभवत उत्तर होगा, यह सोचकर उन्होने भेजने वाले का नाम नीचे देखा—भगवतराव।

सुलू रामगढ़ पहुच चुकी होगी, इसी विश्वास से दादासाहब ने तार पढा। अपनी आखो पर उन्हे विश्वास नही आ रहा था। भगवतराव ने लिखा था—"मैं बीमार हू। सुलोचना को तुरन्त भेज दीजिए।"

दादासाहब ने तार भेजने का समय देखा। तब कही उनके ध्यान मे आया कि अपना तार मिलने से पहले ही भगवतराव ने यह तार किया है।

अब उन्हे सुलू पर इतना क्रोध आया कि कोई ठिकाना ही न था। पति उधर बीमार है और इधर उसकी पत्नी पता नही कहा

रात ही की गाडी से रामगढ जाना सम्भव था। किन्तु अकेला जाऊ तो वहा आकर सुलू के बारे मे भगवतराव को क्या बता पाऊगा ?

नही ! सुलू के वापस घर आए बिना भगवतराव का स्वास्थ्य पूछने के लिए जाना भी इष्ट नही।

दादासाहब सिकते मे पड गए। मन को शात करने के लिए उन्होने अपनी प्रिय सितार उठा ली। जीवन के कतिपय दु खद प्रसगो मे उसने उन का अच्छा साथ निभाया था। पत्नी की मृत्यु के समय गीता के दूसरे अध्याय ने उन्हे धीरज बधाया था तो, किन्तु आगे चलकर जब जब उसकी याद म मन व्याकुल हुआ तब तब वे बडी ही बेचनी अनुभव करने लगे थे। गीता तथा उपनिषद के वाक्यो स भी मन की वह आहत बेचनी शात नही हो पा रही थी। ऐसे समय वे सितार उठाते और स्वरलहरो पर आरूढ होकर वियोग, विषाद, और विपत्ति स भरी इस दुनिया से दूर-दूर नाद-विश्व मे अपने आपको कुछ समय भुला देते थे। यह सिलसिला काफी देर तक चलता रहा था।

आज भी उसी भावना से उन्होंने फिर सितार को छेड़ दिया। मन में सुलू के बारे में न जाने क्या क्या भले-बुरे विचार उठ रहे थे। वह किसी दुर्घटना में आ गई होगी या किसी दूसरे से प्रेम होने के कारण उसने भगवंतराव से और मुझसे हमेशा के लिए विदा ली होगी—

वैसे मनुष्य अपने प्रिय व्यक्ति की मृत्यु शांतचित्त से देख सकता है। किन्तु उस प्रिय व्यक्ति के बारे में विपरीत कल्पनाओं का अम्बार मन में जागा तो वह उसे कदापि सहन नहीं कर पाता।

दादासाहब सितार के तारों को झंकारते जा रहे थे, किन्तु आज वह झंकार उन्हें भा नहीं रही थी। उन्हें लग रहा था बुखार में जीभ का स्वाद जाता रहता है, सुलू की चिंता के कारण नादब्रह्म के आनंद में तल्लीन होने की अपनी शक्ति भी आज उसी तरह समाप्त हो गई है।

काफी देर तक वे तरह तरह की स्वरमालिका छेड़ते रहे, किंतु हमेशा की भांति आह्लाददायी वातावरण का सृजन नहीं हो पाया। गुस्से में आकर उन्होंने सितार दूर रख दी। कुछ अस्पष्ट करुण झंकार झनझना गयी। मानो सितार कह रही थी— मैंने कौन सा अपराध किया है ? मेरे सुरों की अपेक्षा सुलू का स्वर सुनने के लिए आप इस समय अधिक अधीर हैं वह आपको बिना बताए चली गई, इसमें मेरा क्या कसूर है ? इतने वर्ष बीत गए, क्या मैं एक बार भी आपके कमरे से बाहर गई हूं ?'

दादासाहब को भी लगा कि सितार पर नाराज होना बेकार है।

शिवाजी के सेनानी तानाजी ने कोंडाणा किला जीत लिया था उस रात का प्रसंग उन्हें याद आया। वह भी अपनी यशवंती नामक गोह पर इसी तरह व्यर्थ में नाराज हो गया था। तानाजी ने हमेशा की भांति यशवंती को किले की प्राचीर पर फेंका था। किंतु नाखून गडाकर जमकर बैठने के बजाय वह प्राचीर से नीचे उतर आई थी। तानाजी ने गुस्से में आकर उससे कहा था, 'यशवंती अबकी बार दीवार पर जा चिपकी नहीं तो तेरी बोटी-बोटी काटकर रोटी के साथ मेरे इन वीर साथियों को खिलवा दूंगा !'

अपने जैसा व्यक्ति सितार पर गुस्सा उतारता है इसकी अब दादासाहब को भी हंसी आ गई। उन्होंने हौले से पूरी नजाकत के साथ सितार

को ममता से उठा लिया और कोने मे उसके स्थान पर रख दिया।

वे सोने के लिए बिस्तर पर जा लेटे, किंतु नींद आने का नाम नही ले रही थी। मन को मानो कई काटे चुभ रहे थे।

उठकर उन्होने सिरहाने के पास की खिडकी खोल दी। बाहर घना अधेरा छाया था। आकाश मे घटाए घिर आई थी। आकाश मे लाखो तारे सितारे होते है। इस पर कोई विश्वास नही कर सकता था। दादासाहब को लगा कि अपने मन मे इसी तरह काली काली घटा घिर आई हैं। उसके सारे तारे सितारे—

सुलू के बारे मे व्यर्थ सोचते बैठने के बजाय क्यो न अपनी सकल्पित किताब का लेखन आगे बढाया जाए, यह सोचकर वे मेज के साथ जा बैठे। पास की अलमारी खोल ली। भीतर से पन्द्रह-बीस डायरिया बाहर निकाली। उन्हे लगा, ये दैनदिनिया नही, बल्कि जीवन मे विकसित फूलो के खशबूदार इत्र की कुप्पियां हैं। दैनदिनी लिखने की आदत न होती तो उन फूलो की सूखी पखुडिया ही तो हाथ रह जाती। उनके मधुर सुगध की धूमिल स्मृतिया भी—

दादासाहब ने गर्व के साथ एक दैनदिनी उठा ली, खोल ली। उनके चेहरे पर स्मित की रेखाए नाचने लगी। विवाह के कुछ ही दिनो बाद का प्रसग उस पन्ने पर लिखा था। घूमने के लिए जाए तो शाम का भोजन समय पर तयार नही हो पाता, यह बहाना बनाकर उनकी पत्नी उनके साथ सर करने के लिए जाना टालती थी। किन्तु उस दिन वे उसे जबरदस्ती साथ ले गए थे। एकात और प्रणय की मैत्री बडी गहरी होती है इसलिए या उत्तररामचरित मे वर्णित सीताराम के वनविहार की बात मन म जम गई थी, इसलिए, उस दिन दादासाहब पत्नी को लेकर काफी दूर निकल गए थे। नदी किनारे पानी म पाव छोडे दोनो बैठे थे। चादनी जलतरग बजा रही थी। उस पर समय भी मोहित होकर चलना भूल सा गया था। बीच मे ही पत्नी कहती 'अब चलिएगा भी, बहुत देर हो गई।' वे तुरन्त उसका हाथ पकडकर उस नीचे बिठा देत और कहते, 'अभी तो केवल आठ ही बजे हैं।'

दोनो घर लौट तो दस बज चुके थे। पत्नी न कहा, 'सादा बेसन भात

बनाने के लिए भी कम से कम ग्यारह तो बज ही जाएगे। फिर सवेरे साढ़े पाच पर आपको उठाना भी तो है।'

किन्तु दादासाहब ने उसे रसोई म जाने ही नही दिया। उसका हाथ पकडकर वे बाल, 'यहा भूख किसे है ?'

"चादनी से पेट तो भरता नही आदमी का !"

"लेकिन अमत से ?"

इसका मतलब उसके ध्यान म आने से पहले ही उन्होने उसे अपनी वाहो मे भरकर अत्यन्त उत्कटता से चुम्बन ले लिया। इतनी उत्कटता से कि

दादासाहब की आखो के सामने से डायरी का वह पन्ना कभी का ओझल हो गया था। उन्ह अब दिखाई दे रहा था पच्चीस वर्ष पूव का अपना कमरा।

उस रात बिना भोजन किए ही दानो कसे सो गए, सवेरे पाच बजने से पहले ही उठकर पत्नी ने चाय के साथ मुझे बहुत ही प्रिय नमकीन दलिया भी कस पेश किया, परिणामस्वरूप मैं कितना खुश हुआ। विवाह मडप मे सबके सामने पति पत्नी एक दूसरे के मुह म कौर दें यह प्रथा आज भले ही वचकानी लगती हो किन्तु एकात मे पति-पत्नी एक दूसरे को अपने हाथो खिलाए ता उसमे कितना काव्य होता है इसका अनुभव उस रात कैसे किया आदि सब स्मृतिया ताजा हो आई। रग उडे सुदर चित्र मे कोई जादूगर अपने जादू से फिर ज्यो का त्यो रग भर दे उसी तरह जमाने के साथ ओझल हुआ कमरा उन स्मृतियो ने फिर साकार कर दिया।

दादासाहब ने अपने नोट्स की कापी खोली। इस मधुर स्मृति को शब्दाकित करने के लिए उन्होने हाथ उठाया भी था—

तभी उनके मन म विचार आया, इस तरह के क्षणिक और नितान्त व्यक्तिगत सुख दु खो का वणन अपनी स्मतियो म किसलिए किया जाय ?

उन्होने अपने प्रतिवेदन के प्रथम पृष्ठ पर लिखा था—

एक बुद्धिवादी की आत्मकथा।'

तो अपनी स्मृतियो म वे सारी बातें आनी चाहिए जिनसे पढने वालो को यह मालूम हो सक कि कसे बुद्धिवाद मेरे मन पर हावी हो गया था,

उस बुद्धिवाद के अनुसार आचरण करने मे मुझे किन दिक्कतो का सामना करना पडा था, और कैसे बुद्धिवाद का प्रचार प्रसार हुए बिना इस देश की दुदशा को सुधारना असम्भव है। इन्ही बातो का वणन तथा विवेचन आत्म-कथा म होना आवश्यक है। उस परिवेश मे डायरी मे लिखी इस तरह की भावुक बातो का क्या महत्त्व हो सकता है। अपने जीवन की महत्वपूण घटनाए है—

पिताजी बहुत बीमार हो चुके थे। मैंने एकदम निजला व्रत रख लिया। कथा-कीतन और पुराणा के प्रवचन सुनकर मेरे अदर आस्था जागी थी कि भगवान भक्त की सहायता करने के लिए अवश्य ही दौडे आते है। किन्तु मेरे व्रत रखने के तीसरे दिन ही पिताजी का देहान्त हो गया और वह भी भयानक ढग से। उनका वेदना से कराहना गली के कोने तक सुनाई पडता था। जीवन भर म कीडे-मकौडे तक को उन्होने कभी कोई पीडा नही दी थी। फिर भी उनका देहात चन से नही हुआ। उसी क्षण भगवान के प्रति मेरे मन की सारी आस्था समाप्त हो गई।

भगवान के समान इसान के आचरण के भी बहुत ही कटु अनुभव मुझे मिले। समाज मे भूतदया अवश्य है। किन्तु उसका अथ भरपेट भोजन करने वाला द्वारा भिखमगो को भीख मे चार बासी टुकडे दे देना मात्र है। मैं इतना मेधावी था। किन्तु मेरी सहायता करने के लिए कितने रईस आगे आए? बुद्धिमत्ता मे मेरे पासग मे भी न हो सकने वाले कितने ही छात्रो को हर माह कालिज म मनीआडर आते थे और एक मैं था जो पाच रुपये भी नसीब न हो सकने क कारण जैसे तैसे दिन गुजारता था। इटर मे सस्कृत किताबे खरीदने के पसे इकट्ठा करने के लिए मैंने दो माह केवल एक ही जून भोजन करके निकाले थे—

एम० ए० करने के बाद मैंने जब विवाह किया, तो उसने भी कितना बडा बवडर खडा किया था। एक तो वह विजातीय होने की बात को लेकर सभी रिश्तदार विवाह का विरोध करते थे। दूसरे, लडकी अच्छी चाल-चलन वाली नही है, ऐसा मानकर अन्य लोगो ने भी एक निराला ही बावला मचा रखा था। वास्तव मे एक प्राथमिक कन्या पाठशाला की शिक्षिका पर हो रहा अन्याय मुझसे सहा नही गया था। ज्येष्ठ अधिकारी ने उसे प्रेमपत्र

लिखे थे। इसमे भला उस लडकी का क्या कसूर था ? उसके पूर्वचरित की कतई पूछताछ किए बिना ही मैंने उससे विवाह कर लिया। परिणामस्वरूप रिश्तेदारो ने मेरा स्थायी बहिष्कार कर डाला।

इस बहिष्कार की मैंने कभी कोई परवाह नही की। किन्तु आगे चल कर मेरी पत्नी घर म भगवान की पूजा करने लगी, तो उसी बात का लेकर हम दोनो म काफी नाक झोक होने लगी। शिक्षिका भगतिन स भी ज्यादा पूजापाठ करने लगी। पत्थर के देवी-देवताओ को पूजने लगी। उसे पुत्र प्राप्ति की चाह थी। उसके पत्थर के देवताओ ने अत तक उसकी मना-कामना पूरी नही की।

फिर मेरी चिकल्लस के बजाय सुलू के खेल ने ही उसके तमाम देवी-देवताओ का अन्त कर डाला। सुलू एकदम मेरे जैसी निकली। मेरी बातो को सुन सुनकर वह भी देवी-देवताओ की खिल्ली उडाने लगी। एक बार तो कैरिया गिराने के लिए उसने मा की पूजा की थाली मे से आधे से अधिक देवताओ का उपयोग कर लिया। "सरफिरी कही की, यह क्या कर डाला तूने ? ' मा ने डाट फटकार पूछा तो कन्या ने शांति से उत्तर दिया, "इनसे अच्छे पत्थर भी तो नही थे, मैं क्या करती ?"

सावजनिक व्यवहार में भी बुद्धिवादी लोगो को हमेशा काफी विरोध का सामना करना पडता है। वह भी मैंने अनुभव किया। गाधी जी ने जब स्कूल कालिजो का बहिष्कार करने का आह्वान किया, तब मैंने सभ्यता का एकमात्र साधन आज की शिक्षा दीक्षा ही है, ऐसी भूमिका लेकर शिक्षा-प्रणाली को सराहा था। किन्तु मेरी इस भूमिका का गाधी के विरोधक भी ठीक से समझ नही सके। चरखानीति की जड पर प्रहार करने वाली प्रखर आलोचना करते समय मैंने कहा था, पहले बैलगाडी की सवारी करना प्रारम्भ कीजिए।' इस तीखी समीक्षा मे मैंने बहुत ही सुन्दर विवेचन के साथ दिखा दिया था कि गाधी बाहर से सुधारक और भीतर से कितने सनातनी विचारधारा वाले हैं। किसी ने इस समीक्षा का खडन भी नही किया। हा, कुछ गाधी भक्तो ने मुझे गालिया अवश्य दी। आगे चलकर नमक सत्याग्रह के समय कालिज म हुई एक आम सभा म मैंने 'दूसरे स्वामी लवणानन्द' कहकर गाधीजी का जो तीव्र उपहास किया उसका महत्व

किसी की समझ म नही आया। कि तु यह सत्य है कि गाधीजी के आदोलन का नेतृत्व अधश्रद्धा म होन के कारण ही बीसियो वष आजादी का प्रश्न सडता गया। गाधीजी यदि बुद्धिवादी होत तो वीर सावरकर और जनाब जिन्ना को वे कभी के हरा चुके होत। कि तु—

इन्सान जब आइने क सामने खडा हो जाता है तो उसे अपना प्रतिबिंब हमशा सुहावना ही लगता है। अपन पूवचरित का इस तरह सिंहावलोकन करते-करत दादासाहब की स्थिति भी कुछ एसी ही हो गई। वे अपने से ही कह रहे थे—मृत्यु अभी इसी क्षण मुझे परलोक ले जाने के लिए आ जाए तो चित्रगुप्त के सामन सीना तानकर मैं कह सकूगा, "जीवन का सारा लेखा-जोखा बिलकुल साफ है मरा, एक पाई का भी गालमाल आपको नही मिलेगा!"

असन्तोष का भी एक नशा होता है। उसी की धुन मे दादासाहब उठे और पलग पर लेट गए। आखें कब मुद गईं, उ ह पता भी न चला।

एक पक्षी की आत चीख से उनकी नीद टूटी। पक्षी का आक्रोश उनके दिल का चीरता चला गया।

उन्होने आखे खोलकर देखा—बाहर पछिया की चहचहाहट सुनाई दे रही थी। कि तु वह आक्रोश का कारण क्या था?

उ ह याद आया—वे एक सपना देख रहे थे। सपने म वे स्वय वाल्मीकी बन थे और जोर स चिल्लाकर कह रहे थे—

'मा निपाद प्रतिष्ठा त्वमगम् शाश्वती समा।
यत्क्रौचमिथुनादेकमवधी काममाहितम्॥

मुह धाकर चाय पी चुकने के बाद उनका मन ज्यादा ही बचन हाने लगा। सुलू का अब भी कोई ठिकाना न था।

अब भगवतराव को क्या लिखा जाए? उनके तार का उत्तर तो भेजना ही पडेगा।

वह रामगढ ही गई हो ता अब तक पहुच भी चुकी होगी। पहुचने की सूचना का तार वह जरूर भेजेगी। सर करके लौटू तब तक तो शायद उस का तार आ भी चुका होगा।

डूबते को तिनके का सहारा वाली कहावत की भांति सुलू का तार आने की इस कल्पना ने दादासाहब के बेचैन मन को काफी धीरज बधाया।

वे बडे उत्साह के साथ पहाडी पर जाने के लिए निकल पडे।

अखबारवाला साइकिल पर सवार हो चिल्लाता जा रहा था—'फासी की सजा माफ की जाएगी! फासी की सजा रद्द होगी!'

दादासाहब ने चिल्लाकर उसे रोका। एक अखबार उससे खरीदा और जल्दी जल्दी पहला पन्ना पढने लगे। मन म उठी आनन्द की उर्मी गायब हो गई।

उस समाचार मे दिनकर की फासी रद्द होने की बात भी नही थी। रामगढ नरेश ने उसे दी गई सजा के बारे म, उसका कहना क्या है, सुन लेने के लिए कल की तारीख दी थी। वे स्वय दिनकर की दलील सुनने वाले थे। उन्होने दिनकर से कहा था कि अपनी कफीयत फिर से पेश करे, जिसे पढकर और आवश्यकता प्रतीत हुई तो अन्य सबूत परखकर राजा साहब कल ही अपना निणय सुनाने वाले थे।

न्यायदान यद्यपि एक गभीर नाटक होता है, दादासाहब ने सुना था कि रियासतो म कभी-कभी उसका प्रहसन बन जाता है। इसलिए उस अखबारवाले को दिनकर की रिहाई की जो आशा थी, उतनी दादासाहब को कतई नही थी। अखबार लेकर वे पहाडी पर पहुच गए।

शीघ्र ही सूरज निकला। किन्तु उगते सूरज का रक्तिम बिंब देखकर दादासाहब के मन मे एक अजीब कल्पना आ गई—किसी ने सूरज का सिर धड से उतार दिया है। उसका वह रक्तरजित सिर आकाश माग से स्वग की ओर जा रहा है। इद्रजीत का कटा हुआ हाथ उसकी पत्नी के सामने आ गिरा था न? ठीक वैसे ही सूरज का वह मस्तक—

दादासाहब को अपनी इस कल्पना पर हसी आ गई। उन्हे लगा—जीवन भर सस्कृत पढाने के कारण सस्कृत साहित्य की कल्पनाओ का अपने मन पर कितना प्रभाव छा गया है। इसमे कोई सन्देह नही कि परिस्थिति ही इन्सान के मन को मोड देती रहती है, उस पर सस्कार करती रहती है, मैं यदि फुटबाल का खिलाडी होता तो इस सूरज के लिए किसी ने किक मारकर उछाले गेंद की उपमा मेरे मन म आ जाती।

उन्होंने या हा पहाडी पर इधर-उधर नजर दौडाई। कितने ही स्थानो से उनकी अनेक स्मृतिया जुडी थी। नन्ही सुलू को लेकर वे यहा एक बार बेमौसमी वारिश मे फसे थे। यौवन म पदार्पण करती सुलू की जिद्द पर एक वार अमावस की रात में उसे साथ लेकर यहा आए थे। सुलू बैंटरी जलाए विना ही जल्दी-जल्दी आगे जाने लगी तव उन्होने कहा था, 'सुलू पैरा तले क्या है, इस पर नजर रहने दा।' उसने हसकर जवाब दिया था, 'आसमान मे लाखो तारे टिमटिमा रहे हैं। उन्हें देखू या पैरो तले क्या है इसका भान रखू ?' उसका उत्तर सुनकर उमे यह जताने को जी नही चाहा कि पहाडी पर रात के समय साप बिच्छू आदि के बाहर निकल आने का खतरा होता है।

वह एकदम ऊँचाई पर जा चट्टान है, वह तो सुलू की बहुत ही प्यारी जगह है। एक बार वहा —

बरसात मे दिए की ज्योति के चहु ओर तितली पतगो की भीड-सी लग जाती है। उसी तरह पहाडी के हर स्थान को देखने के वाद उनके मन मे यादो की वारात सजने लगी। उसे देख पाना दादासाहब के लिए एक-दम असम्भव सा हो गया।

वे पहाडी उतरने लगे। उतरते समय उन्होने सोचा, अच्छा हो कि तारघर होते हुए घर जाए। सुलू के सकुशल पहुचने का भगवतराव का तार आया हो तो मन का बोझ हलका हो जाएगा।

वे जल्दी-जल्दी डाकघर पहुचे। डाक की थैलिया अभी अभी आ पहुची थी।

दादासाहब ने पोस्टमास्टर से पूछा, 'मेरा कोई तार-वार तो नही आया न ?'

मास्टरसाहब ने माथे पर रखी ऐनक नाक पर उतारते हुए ऊपर की ओर देखा और उत्तर दिया, "नही तो !"

तभी परली तरफ पत्रो पर मुहर के ठप्पे लगाते बैठे एक पोस्टमैन ने कहा, "आपकी एक चिट्ठी है साब !"

दादासाहब ने अधीरता मे खिडकी म से अदर को हाथ वढाया। पोस्टमन ने भी आगे भुककर उनके हाथ म पत्र दे दिया। इस सारे काम के

लिए आधा मिनट भी नही लगा। किन्तु दादासाहब को उतनी देरी भी असह्य हो गई। उनका हाथ कापने लगा। लाख कोशिशें करने पर भी उस कपकपी को वे रोक नही पाए।

पत्र हाथ आते ही उन्होने हाथ खिडकी से बाहर निकाल लिया। उत्सुक आखो ने सुलू की लिखावट पहिचान ली। मन हर्षित होकर कहने लगा—'हा हा, सुलू की ही चिटठी है। लगता है बिटिया ने पेन्सिल से ही लिखा है!

जल्दी मे पेन नही मिला होगा और मैं चिंता करता न फिरूँ इसीलिए पेन्सिल हाथ लग गई तो पेन्सिल मे ही लिख दिया उसने!

ये ऊपर लगे टिकट ही बता रहे हैं कि उसने ट्रेन म ही पत्र लिखकर डाला है!

किस स्टेशन पर डाला है भला?

धत तेरी! टिकट पर मुहर ठीक से उठी ही नही है।

और लिफाफे म यह भारी भारी सा क्या है? कही बालो का काटा ही अन्दर बद तो नही कर दिया? बहुत ही जल्दबाज है बिटिया!

दादासाहब ने लिफाफा खोला। अदर पत्र तो क्या एक मामूली चिटठी सी थी! उसकी तह खोलते ही उसमे से नीचे के फर्श पर कुछ चीज गिरी। उसकी आवाज खनकी। उन्होने झुककर देखा नीचे एक चाबी पडी थी।

आखिर सुलू ने यह किस चीज की चाबी भेजी होगी? उनकी समझ मे नही आया। वे उस चिटठी को पढने लगे। उसमे केवल इतना ही लिखा था—"दादा, मुझे खोजने की चेप्टा न करें। मेरी चिन्ता भी न करें। सुलू अब न तो आपकी रही है, न भगवतराव की। अपनी मेज की बाइं दराज की चाबी इसके साथ भेजी है।"

घर पहुचने तक दादासाहब के मन मे शका-कुशकाओ का कुहराम सा मच गया था। जगल की राह पर जल्दी जल्दी चलते समय धोती का कोई किनारा किन्ही कटीली झाडियो म उलझ कर छुडाए नही छूटता, वसी उनके मन की अवस्था हो गई थी। सुलू की मेज की वह बाइं दराज, उसका

अभी मिला यह पत्र, उसके साथ ही भेजी हुई वह चाबी, अवश्य ही उस दराज मे कुछ भयकर रहस्य छिपा है, दादासाहब सोचते जा रहे थ। इस कल्पना से ही उनका तन मन सिहर उठता था। उन्हे लग रहा था कि सुलू की मेज की दराज मे छिपे उस रहस्य का सम्बन्ध सुलू की आत्महत्या से है। किन्तु सुलू आखिर आत्महत्या पर क्या उतर आए यह पहेली वे किसी तरह बूझ नही पा रहे थे। वैसे देखा जाय तो सुलू को किस बात की कमी थी ? एक रियासत के नरेश के चहेते अधिकारी की वह पत्नी थी। रहने के लिए आलीशान बगला था, घूमने फिरने के लिए कार थी, पढने क लिए नित्य नूतन अग्रेजी किताबे थी। माना कि अब तक उसके कोई सतान नही थी। एक लडका हुआ किन्तु दसवें दिन ही चल बसा। उस भाग्य के प्रकोप का सदमा सुलू और भगवतराव दोनो को बहुत गहरा लगा। किन्तु अभी तो उसकी उम्र भी क्या है। पच्चीस भी तो पूरे नही हुए हैं। देर-अबेर उसके सतान अवश्य ही होगी। फिर केवल इस बात को लेकर कि जीवन मे कोई कमी है, आत्महत्या पर उतारू होने के लिए सुलू कोई अनाडी बच्ची तो नही है। बुद्धिवादी बाप की बी० ए पास लडकी है वह !

दादासाहब अपने आपको समझा रहे थे कि उस दराज म आत्महत्या का पत्र नही, बल्कि कुछ और ही होगा। किन्तु सुलू द्वारा आत्महत्या की जाने की सभावना की कल्पना किसी सूरत मे उनके मन से वसे ही नही हट रही थी, जसे बीमार आदमी के मन से मृत्यु की बात हटती नही।

सुलू की मेज की बाइ दराज मे चाबी लगा कर खोलते समय तो उनका हाथ काँपने लगा। ऐसा लग रहा था मानो यह मालूम होने पर भी कि बिल मे नाग है, उस बिल मे हाथ डालने की नौबत आ गई हो—

अत मे हिम्मत बाध कर उन्होने दराज खोली।

ऊपर ही एक मोटी सी पुडिया थी। सोचने लगे—इसम जहर वहर तो नही है ? जहर की कल्पना मात्र स वे पसीने से तर हो गए।

बडी कठिनाई से उन्होने उस पुडिया को खोला। शायद उसम नमक था। उन्होने थोडा-सा चखकर देखा। हा, नमक ही था !

उनकी जान मे जान आ गई। पुडिया के नीचे एक मोटी सी कापी

थी।

दादासाहब ने कापी खोली। पहले ही पष्ठ पर लिखा था—

"किसी ने कहा है कि हर आदमी जीवन म एक उपन्यास लिख सकता है। अभी कुछ दिन पहले तक मैं इस बात को मानती ही नही थी। लगता था कि यह सब एकदम झूठ है। किन्तु आज एक बात मैंने पूणत मान ली है कि हर आदमी का जीवन अपने म एक उपन्यास ही होता है। जी हा, मुझ जैसी सामान्य लडकी का जीवन भी!

किन्तु कथावस्तु तयार होने मात्र से उपन्यास लिखा जा सकता है, सो बात नही जब तक कला का वरदहस्त न हो—

कला की मुझे क्या आवश्यकता है?

रगमच पर आने वाले अभिनेता को रग और सजधज की आवश्यकता होती है, रगसज्जा जरूरी होती है। किन्तु अपने ही घर के एकात म आइने के सामने खडे रहने के लिए उस रगसज्जा की क्या आवश्यकता?

मेरा लेखन उसी तरह का है। वह केवल स्वान्त सुखाय है। दादा को शायद एक बार पढने के लिए देना पडेगा। क्या उतना साहस मैं बटोर सकूगी?

और क्या दादा को वह पसद आएगा? इस कहानी को पढ़कर उन्हें अपनी लाडली बिटिया पर क्रोध तो नही आएगा? या

सत्य किसी के क्रोध लोभ की परवाह नही किया करता'

वह पन्ना वही समाप्त हुआ था। अब अगला पन्ना—

दादासाहब का मन कपित हो उठा। क्या लिखा होगा सुलू ने आगे?

जिज्ञासा प्रबल हो उठी। दिल थामकर उन्होने पन्ना पलटा—

चार-पाच दिन पूव मैं रामगढ से चली आई। भगवतराव से बिना पूछे आ गई।

उनसे कहती भी क्या? सितार के तार सुर म मिलाए बिना झकारने मात्र से सगीत थोडे ही पदा होता है। मनोमीलन न हो तो पति पत्नी के जीवन मे सुख कैसे निर्माण हो सकता है?"

जो कुछ हुआ, या जो हो रहा है किसका दोष है ?

कभी-कभी लगता है—काश, भगवतराव का स्वभाव थोडा भिन्न होता ! जीभ के समान मन भी केवल मीठे से ऊब जाता है। यह सच है कि आदमी को कडवा-तीखा दिल से भाता नही है, किन्तु खट्टा मीठा उसे अवश्य ही पसद आता है !

छुटपन म अगूर की अपेक्षा मुझे आवला ही अधिक भाता था। मुझे आवला खाती देखकर मा हमेशा कहा करती थी—"हमारी सुलू दुनिया से न्यारी है।"

क्या यह सच है ? क्या वाकई म मैं दुनिया से न्यारी हू ? रामगढ मे यह सुनते सुनते कि 'भगवनराव जसा शालीन और रईस पति मिलना पूवजन्म की तपस्या का ही फल है', मरे कान पक गए थे। किन्तु मैं उनके साथ गृहस्थी सुख से नही चला सकी। काश, वे कुछ तो दिलीप जसे होते—कुछ तो बहादुर—

मेरा दिलीप—दुनिया उसे दिनकर के नाम से जानती है—

क्या होने वाला है अब उसका ? रामगढ के सभी लोग कहते थे कि उसे अवश्य ही फासी की सजा होगी। मैं पीहर आ रही थी तो ट्रेन मे यही चर्चा हो रही थी !

दिलीप को फासी की सजा !

जिसका मुख कमल निहारते निहारते बचपन मे मैं अपनी सुध बुध खो बठती थी, उस चेहरे पर काली टोपी डालकर जिसे गले म बाह डालकर फूट फूटकर रोने को हमेशा जी चाहता था उसी गले मे फासी का फदा डालकर रामगढ की जेल मे

हाय भगवान !

मैं भी कितनी डरपोक हू !

यही सब भुलाने के लिए मैं रामगढ से भाग आई। जान बचाने के लिए बिल की ओर दमतोड दौड लगाने वाले खरगोश की तरह भागी भागी चली आई मैं यहा। मुझे लगता रहा—आखिर खरगाश को उसके अपने बिल मे कोई नही मारता। पीहर म उसी तरह मैं सुरक्षित रहूगी।

किन्तु—

मैं क्यो इस तरह अचानक चली आई यह दादा को बताने की हिम्मत नही हुई। कमरा बदकर आराम कुर्सी मे पडे पडे शून्य नजर से बाहर की ओर देखती रहती हू, या फिर सिरहान के तकिए मे मुह छिपाकर रोती रहती हू। इसके अलावा कुछ भी सूझता ही नही।

यहा आ पहुची, उस दिन मै बहुत ही थकी हारी सी हो गई थी। भोजन होत ही मैं बिस्तर पर लेट गई। हो सकता है कि, शरीर बहुत ही निढाल हो गया था इसलिए मुझे तुरत ही नीद लग गई।

आधी रात जब अचानक नीद खुली तो देखा कि मेरा सारा शरीर बेहद काप रहा है। पसीना-पसीना हो गया है। आखें खोलकर चारो ओर देखा तब भी यह विश्वास ही नही हो रहा था कि मैं अपने कमरे म हू। आखो के सामने सवत्र वही भयकर दृश्य दिखाई दे रहा था।

दिलीप फासी का फदा झूल गया है—उसकी भीतर धसी आखें बाहर निकल आयी जीभ

बचपन म डर जाने पर मैं दादा के पास दौडकर जाती थी, उनसे कसकर चिपककर उनकी बाह पर सो जाया करती थी। किन्तु आज आज मैं बडी हो गई हू। आज दादा के गले से लिपटकर रो लेने मे शरम आती है। ऐसे समय बडा हो जाना एक अभिशाप-सा लगता है। अपना दुखडा दादा के पास रोने की भी आज चोरी हो गई है।

सोने पर वही भीषण सपना फिर आने के भय से मेरा रात मे सोना भी हराम हो गया है। बचपन म किसी चीज का हठ लेकर उसके न मिलने पर मैं रो रोकर सो जाया करती थी। फिर नीद मे एक सुन्दर परी आकर मुझे वह चीज दे दिया करती थी। किन्तु आज मेरे सपनो म न तो कोई परी आती है न कोई देवी-देवता और न ही वे दिलीप का रिहा करवाते हैं।

दिलीप दिलीप दिलीप

आफ! एकान्त म उसके नाम की माला म कितनी भी जपू, अब उसका क्या उपयोग है!

प्रदर्शनी म मैंने एक चित्र खरीदा था। क्रौंचवध का था वह। उसे देखकर दिलीप ने मेरी कितनी खिल्ली उडायी थी। उसने कहा था, 'कोई

क्राति आसुओ से नही हुआ करती। क्राति को एक ही नैवेद्य भाता है—अपने भक्त के रक्त का !"

दिलीप की ये बातें उस समय मुझे अटपटी सी लगी थी। किन्तु आज ? दिलीप के लिए मैं अपना रक्त बहाऊ, तो क्या उसकी रिहाई हो सकेगी ?

असभव !

कुछ भी करू, नीद नही आती है। अधेरा भाता है, प्रकाश से डर लगता है। बैठे-बठे शरीर काठ सा बन जाता है। फिर मैं कमरे मे अधेरा करती हुई बिस्तर पर छटपटाती रहती हू—

कोई नही जानता उसका अन्त क्या होगा ? बीमार अपनी बीमारी की वेदनाओ को जब सह नही पाता, तो उसे मूर्छा लाने वाली दवाइ दी जाती है न ? मैं भी अपने मन को उसी भाति किसी और माध्यम द्वारा वास्तविकता की ओर से अचेतन करने वाली हू। ऐसी अवस्था म बीती बातो की स्मतिया जैसा आनन्ददायी माध्यम और क्या हो सकता है ? नीबू का अचार जितना पुराना उतना ही अधिक रुचिकर होता है। जीवन की पुरानी बाता की याद भी उसी प्रकार

मेरा जन्म सावन म हुआ ! जन्माष्टमी के दिन प्रसूति वेदना प्रारम्भ होते ही मा ने, सुना है कि, एक ही रट लगा रखी थी, "आज जन्माष्टमी है, मेरे लडका ही होगा। उसका नाम रखूगी—मुकुद !"

इन्सान अपनी नन्ही नन्ही आशाओ की मीनारें बाधता रहता है, और नियति ?

नियति एक नटखट बालक के समान उन मीनारो को गिराने म ही आनन्द लेती है !

मा ने दाई से पछा, 'क्या हुआ ?"

दाई न उत्तर दिया, 'लडकी

मा की आशाओ का नन्हा-सा किला नियति ने ढहा दिया। उसके कमरे के बाहर दादा भी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रह थे। उन्ह जब कन्या जन्म की खबर मिली तो हर्ष से वे फूले न समाए।

आगे चलकर दादा मा से हमेशा कहते रहे, "मुझे तो लडकी ही

चाहिए थी। आजकल के लडको की अपेक्षा लडकिया ही अधिक तज होती हैं।"

मेरे हर जन्मदिन पर मा मेरी आरती उतारती और मुझ पर बलि-बलि जाती थी। उस समय उसकी आखो मे असीम उल्लास की ज्योतिया थिरका करती थी। किन्तु बाद म जब वह अकेली भोजन करने बैठती तो उसका कौर हाथ मे धरा का धरा रह जाता था।

मेरे आठवें या नवें जन्म दिन की बात है। भोजन मे मैंने खूब पापड खा लिए थे। रसोई से बाहर आकर अभी कुछ क्षण भी नही बीते थे कि मुझे बहुत जोरो की प्यास लगी। पानी पीने मैं फिर रसोई मे गई और देखा कि कौर हाथ मे धरा का धरा रह गया है और मा किसी विचार म एकदम खो गई है। शायद उसकी आखें भी भर आइ थी। मैंने उसके गले मे बाहे डालकर पूछा,

"क्या रो रही हो मा ?"

'कहा ? कुछ भी तो नही !" उसने जवाब दिया।

"तो बिना वजह कोई रोता है ?" मैंने एकदम दादी के अदाज मे पूछा।

"अरी सब्जी काटते समय उगली थोडी सी कट गई थी और उस कटे पर इस दाल का नमक मिर्च लगा तो थोडी जलन हो रही है !"

'देखू ता कहा कटा है ?

मा बताने को तयार नही थी। मुझे यकीन हो गया कि वे बात को टाल रही हैं।

मैंने गभीरता से दोहा कहना शुरू किया

साच बराबर पुन्न नहीं, झूठ बराबर पाप !"

धूप छाव मिल गए। उसकी आखो मे पानी पहले से ही था अब होठो पर मुस्कान भी खिल गई। मुझे गले लगाकर चूमती हुई वे बोली, "बहुत शैतान हो गई है तू !"

मा के जूठे होठो के स्पर्श से मेरा राम रोम पुलकित हो गया। आखिर मा ने बताया क्या उसकी आखें भर आई थी। मरी सुलू यदि लडका होती, तो !"

छोटा बच्चा घर मे रेडियो का काम करता है। इधर की खबर उधर उधर पहुचाने म उसे देर नही लगती।

यह समाचार कि मा भोजन क समय रो रही थी दादा को तुरत मालूम हो गया।

उस दिन दादा मा को बहुत देर तक समझाते रहे। उनकी सारी बातें आज मुझे याद नही आ रही हैं। किन्तु—

वर्षा की रुक रुककर जोर स आने वाली फुहारो की तरह दादा बोलते जा रहे थे। नारी और पुरुष की समानता के विषय पर उन्होन तब तक जो कुछ पढ़ा था सारा उस दिन उन्होने मा को सुना दिया। आज लगता है कि उस दिन कोई लघुलिपि मे लिखने वाला पास होता तो दादा की सारी बातें शब्दश नोट कर लेता और एक बहुत ही उत्तम लघु निबन्ध दादा के नाम पर प्रकाशित कर दिया जा सकता था। दादा इतने बुद्धिवादी, इतने वक्ता और उच्चकोटि के साहित्य के उपासक थे कि हर रोज अखबार म छपती फालतू बातो की तरफ देखते भी नही थे फिर भी सारे जीवन मे एक भी किताब वे लिख नही पाए है। इसीलिए तो और भी लगता है इन बीती बातो को याद कर कि काश, हमारे घर म कोई लघुलिपि लेखक होता।

दादा की उस दिन की बातो म से एक ही बात मुझे आज भी स्पष्ट रूप म याद है। वही बात याद रहने का कारण—

एकदम धुधली पड गई किसी पुरानी फोटो मे भी आदमी अपनी छवि को तुरन्त पहिचान लेता है।

दादा मा से कह रहे थे—लडकी होने का इतना रज करते बठने का कोई कारण नही है। लडकिया भी बडी बहादुर हुआ करती है। यह सच है कि कस का वध कृष्ण ने किया था। किन्तु कृष्ण की बडी बहन ने भी उस खासा सबक सिखाया था। पत्थर पर पटक कर मार डालने के इरादे से कस ने ज्यो ही ऊपर उठाया वह उसके हाथो से खिसककर बिजली सी ऊपर के ऊपर आकाश मे निकल गई। हमारी सुलू भी वैसी ही होगी, एक-दम बिजली।

मा को दिलासा देने के लिए दादा इस तरह कभी-कभी पुराण की

कोई कथा कह दिया करते थे, लेकिन उनका पुराण आदि म कोई विश्वास नही था। ये सब दतकथाए है, कहकर वे उनकी खिल्ली ही उडाया करते थे।

हमारी सुलू भी वैसी ही होगी, एकदम बिजली यह वाक्य कहते समय दादा की आखा मे मेर बारे म गर्व की भावना समा नही पा रही थी। गव की वह अनुभूति आज भी मैं भुला नही सकती!

लेकिन मैं बिजली नही बन सकी।

क्यो नही ?

किस बात की कमी थी ? लडको को भी शायद दुलभ होती है इतनी उच्च शिक्षा दादा ने मुझे दी थी। मुझे इतना लिखाया-पढाया था।

फिर भी ?

क्या अब भी मैं बिजली नही बन सकती ?

कृष्ण की वह बिजली जसी बहन—उसन कारा स केवल अकले अपने आपको मुक्त कर लिया। मुझे रियासती कारा से दिलीप का रिहा कराना है! केवल प्रतिशोध की भावना से ही उन सामती अधिकारियो ने उसके गले म फासी का फदा डाला है—

हे भगवान! उस दश्य की कल्पना से भी रोगटे खडे हो जाते हैं।

दिलीप, दिलीप, क्या आए तुम मेरे जीवन मे ? सारा मामला तो वैसा ही हुआ लगता है कि अधेरे को आलोकित करने के लिए आगे बढ़े दीपक को उसी अधेरे मे छिपे समीर ने लपक कर बुझा दिया!

तुम मेरे जीवन मे आए, तो मुझे लगा जसे अमत का प्याला हाथ आ गया है।

और आज ?

आज उस प्याले मे अमृत नही—विष भरा है! दिलाप, तुम्हारी सुलू निरी डरपोक है रे!

क्या कहा तुमने दिलीप ?

विष का प्याला हसते हसते होठो से लगाने वाली बहादुर देवियां भी हमारे यहा हो गई हैं। कृष्णाकुमारी मीराबाई ?

दिलीप सच कहती हू, मुझे भी लगता है कि तुम्हारे लिए यह विष

का प्याला मैं अपने होठो से लगा लू और झट से दो चार घूट गले मे उतार लू ! हाथ कापता जरूर है, किन्तु प्याला उठाने को मचलता भी है। लेकिन—

तुम्हे कैसे बताऊ कि कितने लोग मेरा बढता हुआ हाथ पीछे खीच रहे हैं ? एक भगवत्तराव है दादा हैं यह समाज

शैशव मे तो घर ही दुनिया होती है। माता पिता के अलावा कोई देवता नही हुआ करता। वह दुनिया नन्ही-सी होती है, किन्तु उसमे कितना आनन्द समाया होता है। ये देवता कभी नाराज हुए, कभी उन्होने दो चपत रसीद कर दी, तब भी उसमे कितना असीम सुख होता है।

बचपन के वे दिन याद आए तो आज भी लगता है, काश ! मैं बडी होती ही नही !

मैं भी क्या पागल हू !

कलिया खिली नही तो ससार मे सुगन्ध नही फलेगी। नदिया बही नही तो लोग भूखे रहेगे।

शैशव गुडिया के खेल सा होता है। उसके सुख और दुख दोनो झूठमूठ के हुआ करते हैं !

मेरा पहला दुख—उसकी याद आते ही आज हसी आती है !

दादा जब देखो तब मेरी पप्पी लिया करते थे। मेरी हालत ऐसी हो जाती थी जैसे कोई बच्चा हाथ लगे फूल को मसल मसल कर बना देता है। फिर तो होने यह लगा कि दादा को दूर से देखा और मैं इधर से भाग गई !

दादा के ध्यान मे यह बात आ गई तो उन्होने नयी तरकीब ढूढ निकाली। मैं उनमे कतरा कर भाग गई कि वे अपने कमरे मे जाते और सितार बजाना शुरू करते थे। सितार की झननन् झकार के मधुर सुर सुनाई देते ही मैं सुधबुध बिसार कर दादा के कमरे मे वैसी ही खिची खिची सी चली जाती जैसे लोहा चुबक के पास खिच जाता है। मैं जाकर चुपचाप दादा के सितार के पास बैठ जाती। एक गत बजाकर दादा रुकते और फिर—

उस समय तो मुझे सरगम का कोई ज्ञान नही था। किन्तु सितार को स्पश करने का अवसर मिला और अपनी नन्ही सी उगलियो से उसके तार झकार उठे कि मैं फूली नही समाती थी। मैं उस आनन्द मे विभोर हो जाती फिर दादा धीरे से मेरी पप्पी ले लेते।

उन दिनो कोई चूम ले तो मुझे वह जबरदस्ती प्रतीत होती थी।

और आज ?

आज मैं एक चुबन की प्यासी हू। उस चुबन के लिए होठ तडप रहे हैं। दिलीप का चुबन हलका-सा, छूटता सा, चुबन दिलीप अब मुझे छोडकर जानेवाला है हमेशा हमेशा के लिए जानेवाला है ! फिर—

हो सकता है कि यह पाप हो। लेकिन—

दिलीप तुम कितने निर्मम हो ! दीन-दुखियो के लिए तुम अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिए तयार हो किन्तु मेरे लिए—

पुरुष होते ही निदय हैं। अन्यथा, उस दिन उस देहात के एक कमरे मे हम दोनो के एकात मे होने पर भी

वह रात

जीवन मे दुख बरसता है तो बेमौसम की वर्षा की तरह ! और सुख छिडकता है तो गुलाबपानी की बूदो की तरह !

वह रात इसी तरह की थी ! मेरा सिर अपनी गोद मे लिए दिलीप बठा था। मैंने आखें खोली। उसकी आखा मे घिर आई घटाए गायब हो गई थी। उनके स्थान पर वहा शीतल चादनी अमत छिटका रही थी।

उस चादनी क दशन मात्र से मैं हरषायी, तन मन रोमाचित हो गया। मैंने आखें मूद ली। उसने मुलायम आवाज मे पुकारा, 'सुल । अहा हा हा ! मुझे लगा, प्रीति इन्सान के मन मे इसी तरह अमृतकलश लेकर छिपी होती है।

कितना मधुर आभास था वह—

और आज की यह कटु वास्तविकता !

दिलीप इस समय कारा म है। अधेरे के सिवा उसका साथी कोई नहीं। क्या उसकी कोठरी की खिडकी से उसे कोइ तारा दिखाई देता होगा ? उस तारे स वह क्या कहता होगा ? विरहाकुल यक्ष ने मेघ के

हाथो अपनी पत्नी के लिए स देसा भेजा था, उसी तरह दिलीप मेरे लिए कुछ

वह भला मेरे लिए कोई सन्दसा क्यो कर भेजेगा ? मैं भगवन्तराव की पत्नी जो हू !

कितनी ही देर तक मे खिडकी के पास खडी रही। लेकिन कोई तारा आकर दिलीप का स देसा मुझे नही दे रहा था। आकाश मे तारे तो ऐसे बिखरे थे मानो किसी ने हरसिंगार के कोमल फूलो की बरसात ही कर दी हो। कि तु उनम स एक भी मुझसे बात नही करता था।

दिलीप तुम्हारा वह वाक्य आज रह रहकर याद आ रहा है—'Men are not born They are made !' आदमी जनमते नही, बनाने पडते है। मैंने केवल ज म लिया है। किन्तु आगे—

बचपन से ही मैं दादा का एक वाक्य बार-बार सुनती आई हू। उनका वह बहुत प्रिय सिद्धात है—'जीवन पु पवाटिका नही, एक समरभूमि है।'

यह वाक्य बचपन से ही मुझे कण्ठस्थ हो गया था। फिर भी उसका सस्कार मेरे जीवन पर क्यो नही हो सका ? लडना मुझे क्यो नही आया ? मैने क्या नही सीखा ? आदमी बनाने पडते हैं। है न ? तो—

मुझे लडना चाहिए था दादा से, भगव तराव से। कौन कहता है कि केवल अजुन को ही आप्तजनो से लडने का पाला पडा था ? ससार के हर व्यक्ति के जीवन मे ऐसा प्रसग जरूर आता है। कि तु जब जब मेरे जीवन म ऐसा प्रसग आया मैं हिम्मत हारती गई। लडी नही, लडे बिना ही हारी। लडने की हिम्मत मुझमे नही आ सकी। दादा ने तुम्हे भुला दिया। मैंने भी तुम्ह भुलाने का नाटक रचा। मैं एक विवत की शिकार हो गई सोचती ही रही कि—दादा का मुझ पर बहुत प्यार है, ममता है। मरे सिवा दुनिया म उनका अपना कोई नही है। मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करू तो उनका दिल टूट जाएगा यह विवत मुझ पर हावी हो गया। और

जीवन एक समरभूमि है तो ! लेकिन एक ऐसी समरभूमि, जिसमे केवल अपने शत्रुओ से लडना पर्याप्त नही होता, मित्रो पर भी हथियार उठाना पडता है। यही नही, कभी-कभी तो अपने आपसे भी लडना

पडता है।

अपने आपसे लडाई अपने आपका परास्त करना ! कितनी अजीब कल्पना है यह ! हा, अजीब किन्तु सत्य ! कठोर किन्तु वास्तविक !

पौराणिक कथा म शेप को सहस्र फणा वाला वताया गया है। मुझे लगता है कि मनुष्य के भी उसी तरह सहस्र मन होते हैं !

अ यथा आज इस मेज पर लिखती बैठी पच्चीस वर्षीय सुलोचना को दस ग्यारह साल की वह सुलोचना एकदम इतनी परायी क्या लगती ? रघुवश के द्वितीय सग के एक श्लोक का अथ समझ म न आन पर उस न्ही सुलू न इसी मेज पर आसू बहाए थे।

आज जीवन का अथ समझ मे नही आ रहा, इसलिए बडी सुलोचना उसी मेज पर आसू वहा रही है !

कितना भी याद करें, बचपन के पहले आठ-दस वय की बहुत ही थोडी बातें याद रहा करती हैं। वे सारी स्मतिया अधेरे मे दूर दूर की इमारतो जसी धुधली पडती जाती हैं।

एक वार करिया गिराने के लिए पत्थर जानकर मैंने मा के पूजा के देवताओ का ही उपयोग किया था।

और शायद किसी के उपनयन मे विवाह मे गई थी। वहा एक नानाजी दक्षिणा म मिले पैसे गिन रहे थे। मैंने चुपचाप अधन्ने के एक सिक्क पर पाव रखा। गुडिया के गले मे जो हार पहिनाना था उसके लिए नकली मोती खरीदना चाहती थी मैं। इसीलिए वह अधन्ना मैंने छिपा लिया। किन्तु वे नानाजी हिसाव के पक्के निकले। गिनती मे दो पसे कम पडने की बात उनके ध्यान मे आ गई। वे बहुत ही खिसियाए। आखिर मेरी चोरी पकडी गई। घर भर मे बात फैल गई—दादासाहव दातार की लडकी ने पसे चुराए। कितने पैस चुराए, कोई बता नही रहा था। मेरे कारण मेरी मा को नीचा दखना पडा। घर लौट आने पर दादा ने मेरी वह धुनाई की कि

रो रोकर ही मैं सो गई। काफी मार पडने के कारण सारा बदन दद कर रहा था। शायद इसीलिए मैं आधी रात जाग उठी। देखा कि दादा मेरे

बिस्तर के पास बैठे हैं और छोटे बच्चे के समान फफक फफक कर रो रहे हैं। मैं तपाक से उठी और 'दादा' कहकर उनसे जा चिपकी।

उस समय मेरा दुख शरीर का दुख था। उसकी पीडा दो एक दिन ही रहने वाली थी। फिर भी उसके लिए दादा इतने दुखी हुए थे।

और आज मन को असह्य पीडा हो रही है। मन की इन वेदनाओ का हाल किसे सुनाऊ ? कैसे सुनाऊ ?

नाचते नाचते बिच्छू दश कर जाए, तब भी नर्तिका को शान के साथ नाचते रहना ही पडता है न ? उसी तरह आज मुझे भी ऊपरी हसी हसना पड रहा है। बहुत ही सुख और आनद मे हू, ऐसा दादा को बताना पड रहा है। वे सोच रहे होगे कि मेरे जीवन मे सुख की बगिया खिल गई है। किन्तु वहा जो दावानल

दावानल कैसे प्रारभ हो गया, कोई नही जानता। मन मे जल उठने वाले दावानल का भी वही हाल होता है। आसमान को छूने वाली उसकी लपलपाती लपटो को देखने के बाद हम होश मे आते हैं। हमारी आखें खुल जाती हैं, किन्तु उन आखो मे फिर आसू ही आसू रह जाते है अन्य कुछ नही !

किन्तु दावानल बुझता है वर्षा से, आसुओ से नही।

बचपन मे यदि किसी ज्योतिषी ने कहा होता कि बडी होने पर एकान्त मे आसू बहाने की नौबत मुझपर आने वाली है, तो मैं उसका मजाक उडाए बिना कभी नही छोडती !

मेरे जीवन मे किस बात की कमी थी ? माता पिता की मैं इकलौती बेटी थी। यह ठीक है कि, मा अकसर बीमार ही रहती थी, किन्तु दादा कितनी माया-ममता वाले हैं, मैं उन दिनो पल पल अनुभव कर रही थी। दादा बुद्धिवादी है। देवी देवताओ मे, धर्म कर्म मे, या यो कहिए तो किसी भी बात मे उन्हे आस्था नही है। देखने मे वे बहुत ही उग्र और कठोर प्रतीत होते हैं, किंतु भीतर से वे बहुत ही शात और प्यार दुलार से परिपूर्ण हैं। नारियल के पेड मे डालिया नही हुआ करती, फूल नही होते, घनी छाव नहीं होती, कुछ भी तो नही होता। किन्तु उसकी चोटी पर लगा वह ऊबडखाबड फल फोडते ही उसमे से अमृतमयी धारा फूटती है। मेरे दादा

भी ठीक वैसे ही हैं—

उन्होंने मुझे लडके के समान पाला-पोसा। अपने साथ सैर करा
लिए ले गए। मुझे साइकिल चलाना सिखाया। लडके जैसा पट
पहिनने की मेरी ख्वाहिश भी पूरी की। अपने बाद सुलू ही संस्कृत
प्राध्यापिका होने वाली है, ऐसा कह कर उन्होंने मेरे मन मे महत्वाक
जगायी, बढायी। दसवें वर्ष मे ही दादी अम्मा के अंदाज मे अपनी सहेि
से कहा करती थी—'भगवान मान कर पत्थर की पूजा करना मूर्खता
संसार मे भगवान एक ही है और उसे इन्सान कहते हैं ! यहा न
देवता है न कोई राक्षस !'

मेरी यह तोता-रटन सुन कर मेरी सखिया मखौल उड़ाती। त
उन्हे धडाधड संस्कृत के श्लोक सुनाती। इस पर सारी सखिया दांतो
उंगली दबा कर चुप हो जाती। उन्ह तो यह भी न मालूम था कि सं
आखिर किस चिडिया का नाम है। और एक मैं थी जो उस उम्र मे रघ
भी पढने लगी थी !

मन कितना पागल होता है ! ऐसा न होता, तो आज दादा का पु
रघुवंश निकाल कर उसका वही दूसरा सर्ग खोलकर मैं बार-बार उ
पन्ने पलटाते क्यो बैठती ? राम के मन मे दण्डकारण्य के प्रति जो अ
लगाव था उसका वर्णन भवभूति ने क्यो किया होगा,इसका मर्म आज
समझ मे आया था। इसमे पहले कितनी ही बार रघुवंश पढ़ा था, ले
बात समझ मे आज जैसी नही आई थी। राम ने सीता के सहवास मे
कई वर्ष बिताए थे। दण्डकारण्य का हर स्थान उस रमणीय सहवास
स्मृति जगाते हुए राम को

रघुवंश का यह दूसरा सर्ग—ये निर्जीव शब्द—पढते समय आज
मन कितना रोमांचित हो रहा है। 'अलम् महीपाल तव श्रमेण' यह श्ल
समझाते हुए दिलीप यही बैठा था। क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र' इस श्ल
का अर्थ समझाते हुए वह एकदम उठ खडा हो गया था। उसके चेहरे
चमक आ गई थी। काफी देर तक वह आवेशपूर्ण बातें करता रहा
अन्याय के विरुद्ध जो लडने डट जाता है उसे ही क्षत्रिय कहते हैं। उस

मे आज हमारे समाज के सभी लोगो को क्षत्रिय बनना होगा, बनाना होगा—

अचानक जोर से होने वाली वर्षा के समान उसकी वाणी बरस रही थी। और मैं ऐसी वर्षा का आनन्द लेने वाले बच्चे के समान सराबोर होती हुई उसका कथन सुन रही थी। लेकिन वर्षा मे अत्यधिक भीग जाने के बाद जिस तरह सिहरन ठिठुरन अनुभव होती है, उसी तरह मेरी हालत बन गई थी। एक अगडाई लेकर मैंने कहा था, पता भी है दिलीप क्या बजा है ?"

वह अचानक रुक गया किन्तु घडी की ओर देखकर गुस्से म बोला, 'घडिया दफ्तर के बाबू लोगो के लिए हुआ करती हैं, कवियो के लिए नही !"

रघुवश का दूसरा सर्ग समाप्त करने के बाद काफी देर तक गभीर बना बठा था। वह हसे, मुझसे बातें करे, इस हेतु मै तरह की हरकतें करती रही। मेज पर से किताब नीचे गिरा दी, स्याही-सोख पर स्याही उडेल दी, किसी गाने की धुन पर मुह से सीटी भी बजाती रही और आखिर मे हारकर साडी की पिन जानबूझ कर उगली मे चुभोकर रक्त भी निकाल लिया। किन्तु फिर भी दिलीप की तद्रा टूटने से रही। वह टस का मस न हुआ। फिर मुझसे रहा नहीं गया। मैं उसके पास गई, उसका हाथ अपने हाथ मे लिया और गीत गाना शुरू किया -

एक गधा था मोटा ताजा
बना फिरे वह वन का राजा
कही बाघ—

मेरी बात को काट कर दिलीप बोला, 'सुलूदीदी, मैं उस राजा के समान बनना चाहता हूँ। इस वाक्य पर मैं उसे गुदगुदी करने जा ही रही थी कि मेरे ध्यान मे आया, कि वह मेरे मजाकी गाने के राजा की नहीं, बल्कि रघुवश के दिलीप राजा की बात कर रहा है। मैंने मजाक छोडकर कहा, वह तो एकदम आसान है।'

वह चकित होकर मेरी ओर देखने लगा।

मैंने कहा, "उस राजा के नाम का पहला अक्षर 'दि' है न ? तुम्हारे भी नाम का पहला अक्षर वही तो है !"

हस कर उसने कहा, "धत्तेरी ! तुम तो पागल हो पागल !"

मैंने शात भाव से कहा, "आज से मैं तो तुम्हे दिलीप ही कहूगी

उस दिन से दुनिया जिसे दिनकर के नाम से पहिचानती थी दिलीप हो गया। दादा और मा उसे दिनकर के नाम से पुकारते। केवल दि कहा करती। किन्तु जब हम दानो ही एक साथ होते, दिलीप, दिलीप कह कर तग किया करती थी।

रघुवश का दिलीप राजा गाय की रक्षा मे अपने प्राण समपण क लिए तैयार हो जाता है, मेरा दिलीप दीन दुखियो के लिए वही क है।

उस दिलीप पर देवताओ ने पुष्पवष्टि की थी।

और मेरा दिलीप आज

उसे गिरफ्तार किए जाने का समाचार अखबारो मे किसी कोन चुका था एक बार। अब उस सजा दी जाएगी, तो वह समाचार भी छ दादा अखबार तो पढते ही नही, उन्ह तो इस बात की खबर भी होगी !

बाढ आयी नदी का लाल पानी फनिल लहरो से भँवर बनाता कि स टकराता रहता है। दुनियादारी का भी यही दस्तूर है। उसकी क आप पत्थर फेंकिए या सोने की ईंट, क्षण भर के लिए गुड्डम सी अ निकलेगी, दो चार बुदबुदे उठेंगे और फिर—

फिर वही सन्नाटा ! वह सोने की इट भी गहरी पठती हुई तल म जाकर बसी रह जाएगी ! मेरा दिलीप भी इसी तरह चला जाए मुझे छोडकर ?

दिलीप, दिलीप, पता नही किस अशुभ घडी मे तुमसे परिचय था !

ऐसा भी कोई लिखता है ?

सच तो यह है कि दिलीप जिस दिन हमारे घर आया उसी दि मेरा जीवन यथाथ मे प्रारम्भ हुआ। दादा रात के भोजन के समय कह रहे थे—'कालिज मे जाने के लिए कल से हमारे यहा रामगढ का

मेधावी छात्र रहने आनेवाला है, केवल दो माक कम पढने के कारण उसे मट्रिक म सस्कृत की 'जगन्नाथ शकरसेठ छात्रवृत्ति' नही मिल सकी। अब सुलू को कल से वही सस्कृत पढाया करेगा ' मैं चुपचाप सुनती रही। उसका नाम भी मैंने दादा से नही पूछा ! किन्तु बिस्तर पर लेटे लेटे मैं उसी के बारे मे सोचती रही। क्या वह लम्बू होगा ? या बौना ? सस्कृत पढते समय मुझसे कोई भूल हो जाए, तो वह मेरी मजाक किया करेगा या नाराज होगा ?

मेर कोई भाई या बहन नही थे। हो सकता है इसीलिए, इस बात को लेकर कि घर मे दादा और मा से उम्र मे बहुत ही छोटा और मेरा समवयस्क कोई लडका आ रहा है, मेरी खुशियो का ठिकाना न रहा। एक ऐसा लडका आन वाला था जिसके सग सग म दूर दूर तक सर क लिए जा सकूगी, दौड सकूगी और जिसके साथ मैं भी मजाक मसखरी कर सकूगी। मैं यदि ऊचे पर लगे पीले चपे के फूलो का हठ कर बैठू, तो वह उतनी ऊचाई पर चढकर मेरे लिए वे फूल तोडकर ला सकेगा। अब ऐसा एक हमजाया और हमसाया लडका घर मे ही आकर रहने वाला है, यह सुनते ही मेरे हृष का पारावार न रहा।

दूसर दिन मैं तडके ही उठी। बहुत ही फुर्ती से मुह हाथ धोकर और बाल चोटी सवार मैं सामने वाले दरवाजे पर तागा आने की राह देखती खडी हो गई। गाडी आने का समय बीत गया। उससे मिली सवारिया लिए तागे एक एक कर घर के सामन से गुजरते गए। हमारे घर के सामने से गुजरते गए। हमारे घर के सामने कोई तागा नही रुका। मन चाट खा गया। आखो मे अनजाने मे आसू भी आ गए। अपने कमर म जाकर आसू पोछते हुए सोचने लगी, महाशय एकदम खफ्ती प्रतीत होते हैं। जब भी आवें, मेरी बला से ! मैं तो अब उससे बोलन से रही।' तभी घर के सामने तागा रुकन की आहट आई। मैं दौडकर बाहर आ गइ। देखा कि एक मोटा ताजा गुजराती तागे से उतर रहा था।

दोपहर के भोजन मे मेरा कोई ध्यान नही देखकर दादा हसते-हसत मा से कहने लगे, 'लगता है हमारी सुलूदीदी अभी स रईस बनने लगी है ? अरे भई, वे गुजराती सेठजी मुझसे गीता पर एक किताब लिख-

चाना चाहते हैं। वह किताब मैं लिखूगा, उसक पसे मिलेंगे, और खासा दहेज देकर इसके लिए मैं कोई रईस वर तय करूगा, इस सो काफी समय लगने वाला है। अभी स भोजन म इतना नाज करने की कोई आवश्यकता नही है, सुलूजी ! क्या समझी ?'

दादा द्वारा किया गया यह मजाक मुझे अच्छा नही लगा। मु गुस्सा भी आ गया। किन्तु सच बात भी उनसे कैसे कहती ? उस द अजनबी के न आन के कारण भोजन स मेरा ध्यान उचट सा गया दादा से कसे कहा जा सकता था ? नही नही ! और मैंने कह भं होता, तो क्या कोई उसे सच मानता ? उस दिन शाम की गाडी से नही आया। अब तो मुझे पूरा यकीन हो गया कि, हो न हो, लडक ही ज्यादा चालाक है।

दूसरे दिन—

दूसरे दिन गाडी आने के समय मैं बाहर गई ही नही। अपने क ही पढते बैठी रही। कुछ देर बाद आहट स पता चला कि कोई मेरे में आया है। नौकरानी होगी मानकर मैं वैसी ही पढते बैठी। तभं आगे आकर बाला, 'सुलूदीदी—'

कितनी जानी पहचानी सी लगी वह आवाज ! जानी पहिच कसी पहिचान ? कहा की पहिचान ? मैंने सिर उठाकर देखा, दिलीप खडा था। उसकी तनी हुई गदन, हसोड आखें, बस मैं तो देर रह गई। नजरें चार होते ही खुले मन से हसा वह। मुझे गौर स नि हुए वह ऐसे देखने लगा, मानो कोई खोई चीज ढूढ रहा हो। उसक नजर का अथ मेरी तो समझ मे नही आया।

मैंने पूछा, ' लगता है तुम्हारी कोई चीज खो गई है ?"

उसने हसकर कहा, ' अब तक तो ऐसा ही लग रहा था, लेकिन है, अब वह मिल गई है।"

' क्या चीज ? ' मैंने उत्सुकता से पूछा।

उसन कोई उत्तर नही दिया। वह फिर से मुझे निहारने लग प शापेश म पडकर पर की उगलियो से खेलने लगी।

दिलीप न कहा, फिर खो गई। '

मेरे मन म सदह जागा, कही यह पागल तो नही है ? उसके 'फिर खो गई' कहते ही मैन फिर सिर उठाकर उसकी ओर देखा। उसक चेहरे पर अबाध शिशु की प्रसन्नता नाच रही थी, जो खोया खिलौना मिल जान पर बाग-बाग हो जाता है। उसने कहा, "चलो, फिर मिल तो गई।"

शायद मेरी परेशानी उसकी समझ मे आ गई। उसका स्वर बदल गया। मेरे पास आकर उसने कहा, 'सुलदीदी, मैं कल ही आने वाला था। किन्तु मा को बुखार चढ आया था। उस उसी हालत म छोडकर आने को जी नही चाहा! कल शाम ही उसका बुखार उतर गया, तो तुरन्त मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, दिनू, तुम अपनी पढाई के लिए अब जाओ। नीड म रहकर पछी का पेट नही पला करता।' रात को चलते समय मैंन उसके पाव छुए। उसने मेरी आर छलकती आखो से देखा। रात भर गाडी मे मा की वह छलकी छलकी सी आखें मेरी आखो के सामने थी। यह साच सोचकर कि वे ममता भरी आखें अब प्रतिदिन देखन को नही मिला करेंगी, मेरा मन बहुत उदास हो गया था। किन्तु तुम्हे देखत ही—'

'मुझे ?' मैंने बीच ही मे कह दिया।

'जी हा, तुम्हे! तुम्हारी आखें एकदम मेरी मा की आखो जसी हैं।'

मैंने हसकर कहा, 'सो ता ठीक है, लेकिन मुझे मा कहना मत शुरू करना भला।' कह तो गई, किन्तु अपनी इस ढिठाई पर स्वयम् हैरान थी कि

जिसके साथ कतई बात न करने का निश्चय अभी किया था, उसी के साथ पल दो पल मे इतनी घनिष्ठता कसे हो गई ?

दिलीप के सहवास म बीत वे सुख के पहले पहले दिन। आज यदि भगवान उन दिनो को मुझे वापस लौटाने को तयार हो जाता है, तो उनके बदले मैं अपना सारा जीवन देने के लिए सिद्ध हो जाऊगी। कहा जाता है कि खून का लगाव निराला ही होता है। किन्तु मुझे तो लगता है कि यह कहावत खून के बजाय उम्र पर ही अधिक लागू होती है! अन्यथा, दादा और मा से भी अधिक दिलीप मुझे अपना क्यो लगने लगता ? इस अनबूझी पहेली को

कसे भूला जा सकता है ? उसे बीसियों कविताए याद थी। उसकी आवाज पहाड़ी तो नही थी, किन्तु मधुर अवश्य थी। मैं हमेशा जिद कर उसके पास बठा करती और उसे कविताए सुनाने के लिए बाध्य किया करती थी! आज वे सारी कविताए मुझे भी याद नहीं आ रही! किन्तु कुछ पक्तिया हमेशा के लिए मन म जम गई हैं। वहा वे समय समय पर गूजा करती हैं। दिलीप को 'डका' शीर्षक कविता बहुत पसद थी। उसकी वे पक्तियां—

'उन बडे विप्लवी वीरा म
नानेश्वर सबसे पहला '

वह बडे चाव ताव से गाता था। ये ही पक्तिया बडे जोश के साथ गाकर ही उसने मुझे नानेश्वर की जीवन गाथा सुनाई थी। विप्लव हथियारो से ही होता है, इस मेरी धारणा को उस दिन पहली बार ठेस लगी। उस दिन मैं भी समझ गई कि विप्लवी बुद्धि के सहारे भी विप्लव किया करते हैं। बिना हथियार के लडने वाले भी विप्लवी हो सकते हैं।

उसकी सारी बातें होती भी थी बहुत ही रसीली! पुराण और इतिहास की सकडो कहानिया उसे मालूम थी। उसने ब्राउनिंग की एक कविता की कहानी तो मुझे न जाने कितनी बार सुनाई होगी। किन्तु जितनी भी सुनो, जी भरता ही नहीं था। एक बहादुर बच्चे के आत्मयज्ञ की कहानी थी वह। उसे सुनाते समय दिलीप उस बच्चे के साथ एकरूप हो जाता था' रेटिसबान का किला जीत लेने का समाचार नपोलियन को देने के लिए वह लडका दौड भागा करता आया था। उस शुभ समाचार को सुन कर नेपोलियन लडके की पीठ थपथपाते जा ही रहा था कि लडका उसके चरणो पर गिर गया। नेपोलियन ने झुककर देखा, उस बहादुर बच्चे के प्राणपखेरू उड चुके थे। उसके सीने मे घाव लगा था।

उसने अपने कमरे म तिलक-गाधी-श्रद्धानद के छोटे छोटे छायाचित्र लगा रखे थे। कभी कभी वह उन चित्रो की ओर देखते घटो बठा किया करता। उस समय उसके चेहरे पर घटाए घिरी आती सी दिखाई देतीं। वह आवेश के साथ बोलने लगता तो मानो बिजलिया कौंध जाती। उसके कमरे मे लगा लोकमान्य तिलक का फोटो, उस समय का था जब तिलकजी को छह वर्ष के लिए देश निकाला दे दिया गया था। यह हकीकत मुझे

बताते समय वह गव से फूला न समाता था। कहता, 'आधी तूफाना मे भी सिर तान के खडी पवत की चोटी के समान यह तिलक जी की तनी गदन देख रही हो न ? और ये दानो हाथ ? चित्र मे भले ही वे दाना तरफ केवल लटक प्रतीत होते हो, उनमे इतनी शक्ति थी कि चाट या आघात करने वाले हाथा म भी शायद नही हुआ करती। सन 1908 म तिलकजी ने देशनिकाला दिए जाने की सजा सुनी और उन्हाने न्यायाधीश और पचो से कहा, "आपम श्रेष्ठ एक और न्यायदेवता है और उसके सम्मुख मैं हमेशा निरपराधी करार दिया जाऊगा"। दिलीप नव इस तरह जोशीले ढग से बोलन लगता, तो मुझ प्रतीत हाता कि अधेरा आलोकित होता जा रहा है, बडिया चटचट टूटकर गिरती जा रही है। दिल्ली के चौराहे म खडे हाकर बदूक की गोलियो के लिए सीना तानकर श्रद्धानद खडे हो गए उस प्रसग का वर्णन तो दिलीप इतना लामहषक करता

मैं भी लिखते लिखते कहा मे कहा बह चली हू ! य तो बहुत आगे की बातें हैं। दिलीप के सहवास म विताए वप आज एक दिन से लगते हैं। लगता है वह दिन डूब चुका है और अब यह काली रात कभी समाप्त न हाने वाली रात आ गई। सृष्टिचक्र मे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आत रहते है। हे भगवान ! क्या इस भीषण रात का कोई सवेरा नही ? मेरा दिलीप कब मुझे फिर से दिखाई देगा ? उसका सहवास—मैं भी क्या पागल हू !

क्या नही अब भी मेरी समझ म आ रहा कि यह कालरात्रि है ? लकिन कालरात्रि का भी अन्त तो होता ही होगा, न ? जीवन की उस पहली कालरात्रि मे दिलीप ने मुझे कितना धीरज बधाया था। इतनी जल्दी मैं उस कालरात्रि की याद भुला बठी ?

उस रात यदि दिलीप न होता तो पता नही, शायद मैंन जान दे दी होती ? मा जब अतिम घडिया गिन रही थी। आज वह प्रसग याद आ जाए, तो रागट खडे हा जात हैं ! तब तक मृत्यु किस चीज का नाम है, मालूम नही था। किन्तु उसकी वह डरावनी विकराल सूरत—मा का शरीर ठण्डा पडता जा रहा था। घिग्घी बध चुकी थी। वाणी पस्त हो चली थी। आसू ही बोल रह थे। उसके बर्फ जैसे ठण्डे होने लगे परा पर

हाथ फेरते समय मुझे ऐसा लग रहा था मानो आग तपी लोहे की लाल लाल सलाइया मेरे दिल पर चला रहा है कोई। बिना कठघर के जगल से कोई बच्चा नीचे गिरता दिखाई दे और अगतिकता से दखत रहन के अलावा कुछ भी करना सभव न हो, कुछ एसा ही मेरा हाल मा की मृत्यु देखते समय हो रहा था। मैं रोते रोते उठी ! नही, शायद किसी ने मुझे उठाया था। दादा की गाद में मुह छिपाकर खूब रो लने को जी करता था। दादा बाहर के कमर म बठे थे। उन्होंने मेरी ओर देखा, लकिन तुरन्त गीता पठन करने लग। कपित स्वर म दादा पढ रहे थे—

वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहणति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि
अन्यानि सयाति नवानि देही ॥

यह श्लाक मुझे भी आता था। उसका अथ भी मैंने पढा था। किन्तु भावनाओ के तडातड टूटते धागे आक्रोश कर कह रह थे—यह श्लोक झूठा है। नयनो से बह निकली आसुओ की धारा कह रही थी—यह घोर वचना है। मेरी मा अब फिर न मुझे दिखाई देने वाली नही है। उसकी गाद की ममता भरी हार्दिकता अब मुझे नही मिलने वाली है। उसके सहज सहलाने से आज तक जो आनन्द मिलता रहा वह अब कभी फिर स मुझे मिलने-वाला नही है। रो रो कर मैं सो गई। मैं जागी तब काफी रात हो चुकी थी। काई मेरी पीठ पर हौले-हौल हाथ फेर रहा था।

वह मूक स्पश कितना कुछ बोलता जा रहा था !

मानव अनादि काल से शायद इसी तरह स्पश द्वारा अपना मन प्रकट करता रहा। हजारा शब्द भी जो बात कहन म असमथ होते है, वह एक छूता-सा स्पश कह जाता है ! आज भी, जबकि मानव इतना मुखर हो चुका है स्पश का जादू काम कर ही जाता है !

मेरी पीठ सहलाता वह हाथ—सितारो के तार भी इतनी नजाकत से शायद ही कोई छेडता हागा, काप रहा था। उसके कपन से हृदय के स्पदन अनुभव हो रहे थे। मा की मत्यु की वेदना दादा से ज्यादा किसे हो सकती थी? मेरे अनाथ हो जाने से अत्यधिक दुखी होकर मुझे सांत्वना दने

उनके अलावा कौन आ सकता था ? मा गई—हमेशा के लिए हमे छोड कर चली गइ, इस वेदना से मेरी आखें फिर छलकी। मेरी पीठ सहलाते दादा के गले पडने के लिए मैंने करवट बदली।

किन्तु वह हाथ दादा का नही था। न्लीप मुझे सात्वना दने मेरे पास आकर बैठा था। मेरी छलक्ती आखें देख कर उसकी आखा म भी पानी भर आया। मैंने उमे भीच लिया मैं कसकर उससे लिपट गइ। मेरे आसू उसक कधे पर गिरने लगे। उसके आसू मेरी गदन पर चूते रहे। मेरे मन मे भभकी आग आसुओ की उन धाराओ मे धीरे-धीरे भीगकर बुझती गई बुझ गई। उस कालरात्रि मे आलोक फैलने लगा। वाहर से दादा की आवाज आ रही थी—

'सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व—

मुझे दादा पर क्रोध आ गया। उनके वे सस्कृत वचन उवलते तेल की बूदो के समान मेरे कानो को जलाते रहे। मैंने दिलीप की गोद म इसलिए सिर छिपा लिया ताकि वे शब्द सुनाई न दें। वह मुझे थपकिया दे देकर सहलाता गया। मैं आखें मूदकर उसके दिल की धडकनो को सुनती रही। उन धडकनो मे मुझे केवल 'मेरी सुलू, मरी सुलोच' यही ध्वनि सुनाई देती रही। आज जी चाहता है कि फिर एक बार उसी कालरात्रि के समान दिलीप की गोद मे सिर छिपाकर जी भर रो लू। मैं जानती हू उसक मु ह से किसी भी हालत मे अब मेरी सुलोच निकलनेवाला नही है। किन्तु मुझे विश्वास है कि उसके दिल की धडकनो म आज भी वे शब्द गूजते होगे। क्या मैं इतनी भाग्यशालिनी हू कि उसके विशाल सीने पर अपना माथा टेककर उन मधुर धडकनो को कभी फिर से सुन सकूगी? फिर वह पागलपन सवार हो गया है मुझ पर। उधर सारी रामगढ रियासत उसकी धडकना को हमेशा क लिए बद करन की कोशिश म है। और इधर मैं

मानव प्राणी की इच्छा नदनवन की कल्पलता ही नही, वल्कि रेगिस्तान की हरियाली है। दिलीप की रिहाई—

दिलीप की रिहाई। जिसका सारा जीवन ही दुघटनाओ स भरपूर

हो उसकी रिहाई विधाता भी कैसे कर सकता है ! डूबते जहाज पर से दिलीप का कोई बचाकर किनारे पर ले आए, तो वह तुरन्त पूछताछ करेगा यहा से नजदीक कहीं विमान प्राप्त होगा ? मौसम यद्यपि खराब है, सोचता हू कि एकाध उडान भर ही आऊ !'

दिलीप वाकई तुम्हारे साहस की दाद देती हू मैं। तुम्हारे पराक्रम पर मुझे नाज है। तुम्हारे त्याग की पूजा करना चाहती हू मैं। किन्तु जब यह याद आता है कि इस साहसी स्वभाव के कारण ही तुम मुझस दूर-दूर चल गए हो तो

पराक्रम प्रीति के लिए कभी अभिशाप बन जाता है दिलीप ! लेकिन इसमे तुम्हारी क्या गलती है ? ताडव ज्वाला का धर्म है ! फन कसे निकालना है, नाग को सिखाना नही पडता ! तुम भी

ग्यारह-बारह वष पहल की बात है। किन्तु एकदम कल परसो हुई जसी ताजा लगती है। गाधी का नमक सत्याग्रह प्रारम्भ होने के केवल समाचार अखबारो म पढ कर तुम उत्तेजित हो गए थे। दादा यह कहकर तुम्हारा उपहास करते थे कि 'अब यह नमक-आदोलन समाप्त होने के बाद मिच-आदोलन प्रारम्भ होगा। किन्तु मुझे तुम्हारे विचार जचते थे कि गाधी नमक का सत्याग्रह करने नही, अपितु दिग्विजय करने निकले हैं, स्कूलो म, सिनेमाघरो मे, सवत्र गाधीजी के नाम का बोलबाला था। तागे वाले भी गाधीजी के भक्त बन गए। एक तागेवाल के द्वारा मुझे दिया हुआ वह उत्तर—

विश्वविद्यालय के किसी काम से दादा को बम्बई जाना था। उन्हे स्टेशन पर विदा करने के लिए मैं और दिलीप गए थे। वापसी मे हम लोग जिस ताग म बठ थे उसम गाधीजी की एक छोटी-सी फोटो लगी थी। धोतियो या कपडे के थान पर चित्र चिपकाए जाते हैं उसी तरह का वह भी चित्र था। तागेवाले ने उसे चिपकाकर रखा था। मैंने उससे पूछा, यह चित्र क्या लगा रखा है भया ?' चित्र की ओर देखत हुए तागेवाले ने कहा, 'ये हम लोग के भगवान हैं, दीदी !' बचपन स मुझपर सस्कार थे कि ससार म भगवान वगवान कुछ भी नही हैं। किन्तु उस तागेवाले का वह उत्तर सुनकर मेरे मन मे एक अद्भुत भावना जाग गई। चादनी मे टहलते

समय यकायक बिजली कौंधकर चादनी को एकदम फीका वना जाती है, कुछ वैसा ही मैंने अनुभव किया। मैं उस तांगेवाले से खुलकर बातें करने लगी। उसकी रामकहानी सुनकर—

घर मे उसकी मा बीमार थी। चार बच्चो की देखभाल करते-करते उसकी पत्नी की नाक मे दम आ गया। एकाध दिन तागा खाली ही चला तो शाम को देशी ठर्रा नसीब नही होता था। तांगे का घोडा बूढा हो चला था। बीसयो वार्ते उसने बताई। अन्त मे उसने कहा, 'दीदी, हमारा तो यही हाल रहने वाला है। सियावर रामचन्द्र से हाथ जोडकर बस एक ही मिन्नत हैगी कि गाधीबाबा जब इस शहर आवें तो एक बार हमरे इस तागे मे वठा कर उन्हे घुमैंवा।'

आज उसकी उस मानता पर मुझे हसी आती है। किन्तु उस दिन—चार दिन की दाढी बढे उस बूढे तागेवाले के झुर्रिया पडे चेहरे का मैं कितनी ही देर तक सराहना की दष्टि से अपलक देखती रही थी। फिर दिलीप जब हर रोज समाचारपत्रो म आनेवाली खबरो का चाव के साथ वणन करता, तो गाधाजी की आलोचना करनेवाले दादा पर मुझे गुस्सा आने लगा था। यहा तक कि एक बार मैं मन ही मन कह भी चुकी थी कि नुक्ताचीनी वे ही किया करते है जिन्हे करना धरना कुछ भी नही होता।

इस तरह दादा से मैं प्रतिदिन, प्रतिपल दूर दूर जा रही थी। अनजाने में दिलीप के उतने ही करीब होती जा रही थी। यह तबकी बात है जब कि उससे परिचय हुए अभी एक वष भी पूरा नही हुआ था। किन्तु सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर पहुचने मे जसे कुछ भी देर नही लगती, वसे ही अपनत्व के भी दिलीप से मुझ तक आने म कोई विलम्ब नही हुआ था।

अप्रैल समाप्त होने को था। दादा ने दिलीप को सस्कृत का अधिक अध्ययन कराने हेतु रख लिया था। 'चाहो तो मई महीने म दस पन्द्रह दिन के लिए घर हो आना' उन्होंने कहा था। दिलीप न बात मान ली थी। किन्तु पढाई मे उसका कोई ध्यान नही था। एक दिन शाम को उसने मुझसे कहा, 'सुलूदीदी, कल मैं जाने की सोच रहा हू।"

'कहा ?" मैंने आश्चय से पछा

"मा की बहुत याद आ रही है।"

उसकी मातभक्ति से मैं परिचित थी। मैट्रिक म अच्छा खासा ऊचा नबर आने पर भी मा को सुखी रखने के विचार से उसने कालिज म जाकर नौकरी करन का निश्चय किया था। दादा से उसकी भेंट न हुई होती, ता हरगिज कालिज मे नही आता। मैं स्तब्ध रह गई। मुझे मालूम था कि दस ग्यारह महिना से दिलीप अपने घर नही गया था। उसकी मा उसकी राह मे आखें बिछाए बठी होगी। मुझे दिलीप के साथ कितना भी लगाव हो गया हो, उसके जान से सूना मकान काटने को दौडेगा इसमे भी कोई शक न हो, मा से मिलने के लिए मत जाओ, ऐसा मैं उस कसे कह सकती थी ?

कल दिलीप अपने घर जाएगा, उसकी मा उस मिलेगी—

और मेरी मा ? वह अब कहा है ? अब उसस भेट कब हो सकेगी ? सिसकी रोके न रुकी।

दिलीप ने पूछा, 'क्या बात है सुलू ?

'मा की याद आ गई !" वह हसने लगा। मैंने सोचा, दिलीप क्रूर है, कठोर है ! वह हसकर कहने लगा, 'मैं रामगढ थोडे ही जा हू !"

'ता ?

"कोकण म शिरोडा जा रहा हू !"

'तुम्हारी मा वहा गई हुई हैं ?"

हा !'

'वहा कितने दिन रहने वाले हो ?"

'जब तक मा कहेगी ! शायद साल भर भी !"

एक साल दिलीप स दूर रहना होगा ? उस विचार मात्र से मेरे रोगटे खडे हो गए। मैंने कहा "मैं तुम्हे नही जाने दूगी !"

"तब तो मैं भाग जाऊगा।

मैं भी कच्ची गोलिया नही खेली थी, बोली, मैं भी तुम्हारे पीछे पीछे जाऊगी !"

कहा ?'

तुम्हारी मा के घर !'

'उ। घर मे हर किसी को प्रवेश नही मिला करता !"

"मतलब ?'

'उस घर को जेलखाना कहते हैं सुलू दीदी।'

दिलीप जून माह में फिर से कालिज के लिए वापस आया तब कहीं मेरी जान में जान आई। बीच का डेढ़ मास का समय मैंने कैसे काटा दादा प्रेमपूर्वक मुझे सितार बजाना सिखाते थे, संस्कृत पढ़ाया करते थे। किन्तु—

जेलखाना किस चिड़िया का नाम है, उस समय मैं कतई नहीं जानती थी। लेकिन रात में बिस्तर पर लेटते ही मुझे दिलीप की बहुत याद आती, लोहे की सीखचों के पीछे वह खड़ा दिखाई देता। एक बार तो मैंने बहुत ही बुरा सपना देखा। मैं एक बगीचे में खेल रही हूं, एक सुन्दर तितली उड़कर मेरे पास आती है। इसके इन्द्रधनुषी रंग देखकर मैं उसे पकड़ने भागती हूं वह दूर उड़ जाती है। मैं रुकती तो वह मेरे बिल्कुल पास आ जाती है। पकड़ने जाऊं तो झट से उड़ जाती है। मैं रुकी। वह मेरे बालों पर बैठकर मुझसे कहने लगी देखो, तुम्हारे बाल अब कितने सुन्दर दिखाई देने लगे। उसे पकड़ने के लिए मैंने हाथ उठाया तो वह उड़कर भाग गई और हंसने लगी। किसी के लम्बे हाथ, काले काले हाथ कहीं से आगे बढ़े। उन्होंने झट से उस तितली को पकड़ लिया। उसके नाजुक पंखों में धागा बांधकर उसे एक संदूक में बंद कर दिया। उस तितली का एकदम दिलीप बन गया। मैं चीख उठी—मैं वाकई में जोर से चिल्लाई थी। चिल्लाने के बाद नींद भी टूट गई थी। दादा ने आकर पूछा, "क्या सपना देखा ?" किन्तु मैं अपना सपना उन्हें बताना नहीं चाहती थी। स्पर्श मात्र से कुम्हला जानेवाले छुई-मुई के पेड़ जैसी हालत हो गई थी।

दिलीप वापस आया तो मैंने मजाक में उससे कहा, "मां ने इतनी जल्दी वापस आने की अनुमति कैसे दे दी तुम्हें ?"

वह बोला नहीं।

मैंने कहा, 'तुम इधर आने को निकले तब मां ने क्या कहा ?"

"यही कि मैं फिर पुकारूं तो फौरन चले आना, देरी मत करना।"

'आते समय कुछ चिज्जी नहीं दी तुम्हें मां ने ?"

"दी है।"

"मुझे नही दोगे थोडी ?"

"जरूर दूगा।" कहकर वह हसा।

उसी शाम उसने मेरे हाथो पर एक पुडिया रखी पुडिया बहुत छोटी-सी थी। मैंने मजाक म कहा, 'बडे कजूस लगते हो! क्या यही तुम्हारी चिज्जी है?"

"हा।"

"इतनी-सी चिज्जी खाकर सतोष कर लेने के लिए मैं कोई बच्ची हू? बारह पूरे हो चुके और अब तेरहवा चल रहा है, समझे?

"तुम कितनी भी बडी हो गई, तब भी तुम्हारे लिए काफी होगी इतनी चिज्जी यह जरूर है।"

मेरे आश्चय की अब सीमा न रही। मैंने जल्दी-जल्दी पुडिया खोली। उसमे—जी हा, नमक ही था! उस नमक का इतिहास जब दिलीप ने मुझे बताया, तो मुझे भी मानना पडा कि हा उसके द्वारा दी गई यह उपहार वस्तु वाकइ मे अनमोल है। मा की बीमारी के कारण उसे रामगढ म ज्यादा रहना पडा था। शिराडा को मा के पास वह देरी से पहुचा। वह वहा पहुचा उसी दिन वहा का नमक सत्याग्रह बन्द हो गया था। इसलिए देश काज के लिए जेल जाने की उसकी तमन्ना मन ही मे रह गई थी। किन्तु लाठियो की मार पडने क कारण घायल होने पर भी जिन्होंने अपनी नमक भरी मुट्ठी खोली नही व सत्याग्रही शिरोडा के शिविर मे बीमार पडे थे। दिलीप उसी म स कुछ नमक ले आया था। मैंने उस नमक के एक एक कण को असीम निष्ठा से निहारा। एक एक दाना हीरेमोतियो से भी कीमती था। दिलीप न नमक की उस पुडिया को हिफाजत से सभाले रखने को मुझ से उस दिन कहा था। आज भी वह पुडिया मैंने सुरक्षित अपने पास रखी हुई है। यह मेरे सामन ही तो पडी है वह। किन्तु मैंने भी उससे कहा था कि तुम भी अपने आपकी हिफाजत करो, सभल के रहो, अपन गले की कसम दिलाकर यह विनती की थी।

दिलीप उन दिनो मेरे के गले की कसम दिलाकर कही गयी बात को आसानी से टालता नहीं था!

उसी वर्ष की बात है। महात्मा जी जेल गए थे। किन्तु उनका सत्याग्रह आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था। सर्वत्र फैलता जा रहा था। सागर मे ज्वार आ जाय, तो उसकी लहरो को कौन कब थाम सका है ? जनसागर म उछाह कर ज्वार उसी तरह ठाठें मार रहा था। छोटे छोटे बच्चो तक को जेल जाने का कोई डर नही लग रहा था। दादा ऐसी सभाओ म जाने से मुझे अक्सर रोका करते थे। किन्तु घर मे बैठे-बैठे ही 'झडा ऊचा रहे हमारा' 'जालिम सरकार नही रखनी' आदि गीत मुझे कठस्थ हो गए थे। सितारवादन का पाठ सीखने के लिए मैं दादा के पास रियाज करने बैठती, तो पुरानी चीजें बजाने के बजाय 'झडा ऊचा रहे हमारा' बजाने को जी मचलता था। किन्तु दादा से डर लगता था। एक बार दादा घर मे नही है,देखकर मैं वही धुन बजाने बैठी। सितार के तारो की झकार के साथ ही मेरे दिल के तार भी झकृत हो उठे मन म विचार आने लगे कि स्कूल वूल सब छोड दू और देशकाज के वास्ते जेल जाऊ, भारतमाता का झण्डा ऊचा उठाए रखते-रखते ही दुनिया से विदा हो जाऊ। सितार के तारो की झकार और अपनी भावनाओ के इस उद्वेलन की मोहिनी म मैं इतनी खो गई थी कि दिलीप कब कमरे म आया, पता भी न चला, मेरा सितारवादन समाप्त हुआ तो ऐसे लग रहा था, माना मैं आकाश मे दूर दूर बहुत ऊचाइ पर तैरती जा रही हू ! तभी शब्द सुनायी दिए—शाबाश !'

वह दिलीप ही था। मैने कहा, "सेतमेत की शाबाशी मुझे नही चाहिए !"

"तो फिर क्या चाहिए ?'

"उपहार।"

"चलो, मान लिया ! बोलो क्या चाहिए ?"

"कुछ भी दोगे ?"

"जो मागो, वही दूगा। कुछ भी मागो।'

"कुछ भी ?"

"हा।"

"मुझे दिलीप चाहिए ! '

आज उस वाक्य की याद आते ही मन मे कुहराम-सा मच जाता है ! उस समय मैं केवल बाहर की तो थी। दिलीप के प्रति मेरी भावनाए एकदम सीधी-सादी, सामान्य थी। वह शिरोडा गया था उसी तरह कही और चला जाएगा और मुझे उसका वियोग सहना पडेगा, यही बात मेरे मन मे बार-बार आती थी, मुझे चुभती भी थी। यही कारण था कि 'मुझे दिलीप चाहिए' ये शब्द सहजता से मेरे मुह से निकल गए थे। मेरी उस चाह को सुनकर दिलीप क्षणभर के लिए अवाक् रह गया। कुछ चौंक भी गया। मैंने तुरन्त कहा "अब कैसी हो रही है जनाब की ? '

उसने हसकर कहा, ' मैं कही भाग थोडा हो रहा हू। मैं तुम्हारा ही हू।"

नियति इन्सान के साथ हमेशा 'खो-खो' का खेल खेला करती है। दिलीप ने जिस दिन "मैं कही भाग थोडा ही रहा हू' कहा था उसके दूसरे ही दिन वह हमारा घर छोडकर जाने को निकला। काफी पूछने पर भी कालिज में क्या हुआ, यह बताने से वह इन्कार ही करता रहा। मैंने जिद पकड ली, रो भी लिया, तब जाकर कही उसने सारा किस्सा सुनाया। बम्बई मे पडित मालवीय या ऐसा ही कोई बडा नेता गिरफ्तार हो चुका था। उनके साथ और नेता भी थे। उन नेताओ के जुलूस को पुलिस ने रोका था। मूसलाधार वर्षा म वे वद्ध नेता घटो भीगते खडे रह थे।

दिलीप ने उस समय और भी काफी बातें बतायी थी, किन्तु आज वे ठीक से याद नही आ रही। अन्त मे उसने कालिज के सकडो छात्रो के सामने दादा के साथ मुहजोरी की थी, उन्हे टका सा जवाब देके निरुत्तर कर दिया था। लडके कालिज म हडताल करने की माग कर रहे थे, शोर मचाते जा रहे थे। विद्यार्थी दादा को बहुत मानते थे। इसीलिए उन्हे समझाने का काम प्रिंसिपल साहब ने दादा को सौपा था। दादा को आते देखत ही छात्र एकदम शान्त हो गए। दादा ने कुछ गुस्से मे ही छात्रो को समझाया, "कालिज सरस्वती का मन्दिर है, कोई साप्ताहिक बाजार नही ! '

सारे छात्र चुप हो गए थे। किन्तु दिलीप से रहा नहीं गया। देश के जाने माने नेता गिरफ्तार कर लिए गए हैं और उनके प्रति सहानुभूति का शब्द तक मुह से न निकालकर दादा जैसे बुद्धिमान गुरुजन कोरा उपदेश

करते जाए इसका उसे क्रोध आ गया। वह कह बैठा, 'साप्ताहिक बाजार लगता है, इसलिए सबको दो जून खाना नसीब होता है, मन्दिर में केवल पुजारी को ही सारा नैवेद्य मिल जाता है और बाकी सारे लोग भूखे ही रह जाते है।"

दिलीप का वह उत्तर सुनकर लडको ने तालिया बजाई। दादा की उसके बाद किसी ने एक भी न सुनी। दिलीप को भी इस बात का बुरा लग रहा था कि आज उसने अपने आश्रयदाता का इस तरह सबके सामने अपमान किया। उसने मुझसे आकर कहा, "मेरा उत्तर बिल्कुल सही था किन्तु अच्छा होता कि वह दादा के स्थान पर किसी और प्रोफेसर को दिया जाता।"

इसी बात को लेकर हमारे घर से चले जाने की उसने ठान ली थी। उसे इस इरादे से परावृत्त करने का काफी प्रयास मैंने किया। वह मानता ही नही था। अन्त मे मैंने कहा, "मेरे गले मे इस सोने की चेन को देख रहे हो न ?"

"हू।"

"यदि कोई इसे छीन कर भाग जाए, तो उसे क्या कहोगे ?"

"चोर।"

"क्या दिलीप कभी चोरी कर सकता है ?"

वह हैरान होकर मेरी ओर देखता रह गया, बोला, "क्या मैंने चोरी की है ?"

"हा।"

"क्या चुराया है मैंने ?

"मेरा एक गहना। बहुत अनमोल है वह। दिखाऊ ?" उसके दोनों कन्धो पर हाथ रखकर मैंने कहा, "यह रहा।"

वह हसता ही गया, हसता ही गया। लेकिन इस तरह हसने के कारण ही उसने अपना इरादा छोड दिया।

उसके बाद चार पाच दिन तक दादा और दिलीप एक दूसरे से बात नही कर रहे थे।

मैं बहुत चिंतित थी। इस तरह के मौन का अर्थ था, दोनो के मन मे भीतर ही भीतर आग धधक रही है। कब भभक कर बाहर आती, कोई भरोसा न था। काफी सोचने के बाद मुझे एक उपाय सूझा। मैंने दादा से कहा, 'उस दिन जो कुछ हुआ उस पर दिलीप बहुत दुखी है" और दिलीप से कहा, "उस दिन तुमने जो कुछ किया उसमे दादा तुम्हारा कोई कसूर नही मानते।"

इस तरह झूठ बोलकर उस समय मैंने दिलीप को दादा के क्रोध का शिकार होने से बचा लिया।

किन्तु आज ? रामगढ के जेलखाने से उसे किस तरह बचा लू ? उसके लिए मैं झूठ बोलना तो क्या, कुछ भी करने को तैयार हू—

किन्तु क्या वाकई मे कुछ भी कर सकूगी मैं ?

आज झूठ बोलने की अपेक्षा सच बोलने की ज्यादा आवश्यकता है। क्या उतनी हिम्मत मैं दिखा सकूगी ? मुझमे उतनी हिम्मत है ? उस सभा के समय पर दिलीप कहा था, यह बात केवल तीन ही आदमियो को मालूम है। वह क्या कर रहा था इसका भी उन तीनो को ही पता है, मुझे भगवत राव को और स्वय उसे ! किन्तु अदालत मे यह सब कैसे कहा जा सकता है ? कौन कह सकता है ? दिलीप तो मुह खोलने से रहा। भगवतराव की जबान मे ताला पडा रहेगा। और मैं ?—मैं डरपोक हू, दुबली हू। डरपोक न होती तो क्यो व्याध के जाल से बचने के लिए जी जान से भागने वाली हिरनी की तरह यहा इस तरह भाग कर चली आती ?

दिलीप तुम्हारे वे शब्द आज भी मुझे याद हैं ! तुमने कहा था, "सुलू, कल को बडी होने पर भी अपनी आखो को इसी तरह बनाए रखना— हिरनी जैसी हैं ये, हिरनी जैसी ही रहें। किन्तु अपने मन को शेरनी जसा बनाओ !' उस समय इन शब्दो का अर्थ मेरी समझ मे नही आया था। किन्तु आज—अपने शावक को छूने की हिम्मत करने वाले का खून शेरनी पी जाती है और मैं—नही दिलीप, यह सब मुझसे नही हो सकेगा। मैं तो सोचती थी कि प्यार करना यानी फूलो के साथ खेलना मात्र है। ये फूल रातरानी के, रजनीगधा के या ज्यादा से ज्यादा गुलाब के हो सकते हैं ! गुलाब के फूलो के साथ खेलते समय कभी उसके काटे भी चुभ सकते हैं

बस, इससे आगे मेरी कल्पना की उडान पहुची ही नही थी। किन्तु आज मैं जान गई हू कि प्यार करना, आग से खेलना है! उन दिनो इसे अनुभव नही कर पाई थी। दादा चाहते थे कि वह अब की बार मन लगाकर पढ़े और सस्कृत मे पहला नम्बर प्राप्त करे। किन्तु दिलीप हमेशा समाचार-पत्रो म आनेवाली खबरो मे, सत्याग्रह आन्दोलन मे और पढाई के बजाए किन्ही दूसरी ही पुस्तको मे उलझा रहता था। ऊपर से वह शातचित्त लगता, मुझे बराबर पढाता, मेरे साथ सैर सपाटा करने भी आता और हसी मजाक भी करता था।

उस वर्ष देखते ही देखते मैं एकदम ऊची हो गई। कालक्रम से ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु हम दोनो म होते जा रहा यह फर्क दिलीप के ध्यान मे आ गया। एक दिन उसने कहा, 'सुलूदीदी, तुम इसी तरह बढती रही न, तो देखना एक दिन तुम्हारे हाथ आसमान को छू सकेंगे।'

मेरे साथ मसखरी करते समय इस तरह अतिरजित बातें करने म उसे बडा आनन्द आता था। उसकी ऐसी बातो से मेरे भी तन मन म गुदगुदी-सी होती थी। इसीलिए मैंने कहा, "काश! मेरे हाथ आसमान को छू सकते!"

"क्यो?"

"बचपन से ही शुक्र के तारे का बहुत आकर्षण रहा है मुझे। मोतिए के फूल की तरह उस तारे को अपने बालो मे उसने मेरी बात पूरी नही होने दी, बाला, "तुम बहुत ही स्वार्थी हो सुलू। आसमान छूने पर भी तुम्हे केवल अपने सुख और अपनी इच्छा पूरी करने का ही ख्याल आया!"

कल्पना की पतग को ऊची उडाने म मुझे हमेशा ही बहुत आनन्द आता रहा है। मैंने कहा, "तुम्हारे लिए भी मैं एक चीज ले आऊगी!"

"क्या चीज?"

"कल्पतरु!"

'मैं उस तरु तले न बैठूगा!'

'तुम्हारी मर्जी! लेकिन मे अवश्य बैठूगी और कहूगी --"

"क्या कहोगी?"

'कहूगी, मरे दिलीप को राजा बना दो!"

"मैं कहूंगा—"

"क्या ?"

"हमारी सुलू को भिखारन बना दो !"

इतना गुस्सा आया था उस पर ! किन्तु उसने तुरन्त कहा, "अरे, मैं राजा बन गया, तो तुम्हारे साथ मेरी मित्रता कैसे रह पाएगी ? भिखारन ही भिखारी की सखी हो सकती है, है न ?"

फिर मेरा गुस्सा रफूचक्कर हो गया। गंभीर होते हुए दिलीप ने कहा, "अच्छा, तुम बताओ मैं यदि स्वर्ग को छू सका तो वहां से क्या ले आऊंगा ?"

मुझे चुप देखकर उसी ने कहा, "अमृत ! फिर मैं उस अमृत का सिंचन चौपाटी के तिलक के पुतले पर करूंगा। उसके कारण तिलकजी का पुतला सजीव हो उठेगा और इस देश मे फिर पराक्रम की चेतना जाग उठेगी !"

इसी तरह की विलक्षण कल्पनाओं की दुनिया मे खो जाने का आदी हो चुका था वह ! उसकी इण्टर की परीक्षा के दिन पास आने लगे। मेरी नवीं की परीक्षा थी। किन्तु पढाई मे ध्यान लगाना मुश्किल होता जा रहा था। दिलीप अपने कमरे मे अवश्य ही नही शून्य मे देखता बैठा करता था। उसकी गणित की कापी मे रेखाकृतियो के साथ ही कई पन्नों पर नागरी तथा मोडी लिपियो मे भ भ भ यह एक ही अक्षर लिखा रहता था। मैं पेंसिल से उसे काटकर पास ही सु-सु-सु लिख तो दिया करती थी, लेकिन उस भ भ-भ का मतलब समझ मे नही आ रहा था।

पच्चीस मार्च ! वह तिथि आने पर आज भी उस पच्चीस मार्च की याद ताजा हो उठती है। उस दिन दिलीप ने कह दिया था कि वह भोजन नही करेगा "आज तो प्याज की पकौड़िया बनी हैं" कहकर उस भोजन के लिए खींच लाने की काफी चेष्टा मैंने की, किन्तु वह नही आया। 'तुम तो निरे पोंगापंथी बन गए हो ! पहला नम्बर लाने के लिए अब व्रत भी रखने लगे, धत्तेरे की !' कहकर मैंने उसे चिढाया भी। फिर भी उसका चेहरा खिल न सका। दोपहर की चाय तक उसने नही ली। एकदम मौनी बाबा बना वह दिन भर अपने कमरे मे ही घुसा रहा। उसके चेहरे पर भयानक उदासी फैली थी—

मुझसे यह सब देखा नही जा रहा था। कही इसकी मा की हालत ज्यादा खराब तो नही हुई ? मैंने पास बैठकर उसका हाथ अपने हाथ म लिया। बुखार ता नही था। उसकी मा की मृत्यु का समाचार—

मुझे अपनी मा की मत्यु का प्रसग याद आया। उस समय दिलीप ने ही मुझे सात्वना दी थी। आज मेरी बारी थी कि मै उसको सात्वना देती। किंतु शब्द होठो तक आकर वही रह जाते थे। आखिर जसे-तसे मैंने कहा "तुम्हारी मा "

उसने वाक्य पूरा किया, "ठीक है।"

अपने पिता के बारे मे वह कभी बोलता ही नही था। रामगढ म वे पुलिस इन्स्पेक्टर हैं, इतना ही एक बार उसने कहा था। उसकी बडी बहन वही के एक बडे महाजन से ब्याही गई थी। उसकी और भी दो बहने थी। सोचा कि शायद उनमे से काई बहुत बीमार होगी। अन्यथा—दिलीप ने मेरा हाथ कसकर पकड लिया और रुधे स्वर मे बोला, 'सुलू, सरकार ने भगतसिंह को फासी पर चढा दिया!"

तो उसकी गणित की कापी मे सर्वत्र लिखे उस 'भ' का अर्थ यह था! उसी दिन मैं समझ गई कि दिलीप परीक्षा मे कोई अच्छा नम्बर प्राप्त करन वाला नही है। हुआ भी वही। जसे-तसे उसे सैकिंड क्लास मिला। मुझे बहुत दुख हुआ। दादा ने तो गुस्से मे आकर उससे कह भी दिया, 'अब कम से कम बी० ए० म ता फस्ट क्लास मिलने की चिन्ता करो, वरना सारी जिंदगी मास्टरी करने मे ही बितानी पडेगी! प्रोफसरी की तो आशा करना ही बेकार है!"

मैं दादा की बात से सहमत थी। किन्तु कडवी दवाई वरवस पीना पडने की सी शक्ल बनाकर दिलीप दादा की ऐसी प्रताडना सुनता रहता था।

जूनियर बी० ए० मजामौज मे बिताने का वप होता है। जाली जूनियर के नाम से उसका वणन कालिज म होता रहता है। किन्तु दिलीप इसी वप बहुत ज्यादा गभीर बन गया। वह मुझे पढाता, मैं सितारवादन करू तो सुनने बैठता। सब कुछ पहले जसा ही करता था। किन्तु नदी का साफसुथरा प्रवाह पैराव मे काला दिखाई देता है, उसी भाति किसी अतल

चिन्ता से दिलीप एकदम काला पडता जा रहा था। उसका पारदर्शी मन अब अथाह होता चला था। लगता था, मानो वह मुझ से कोई बात छिपा रहा है। सुना था कि कभी-कभी नीद मे आदमी अपने अतस्तल का कोई रहस्य प्रकट कर बैठता है। हसी मजाक म भी ऐसा ही हुआ करता है। यह सोचकर एक दिन मैंने उससे कहा, "मैं बताऊ, आजकल तुम इतने गम्भीर क्या हो गए हो ? बताऊ ?"

"बताओ।"

"तुम्हारा विवाह तय हो गया।"

"बिलकुल ठीक। अरे तुम तो मन की बात जानने मे माहिर हो गई हो।" उसने हसकर कहा। फिर हसी रोककर बोला, 'मेरे कहने का मतलब है, तुम ज्योतिष बताने का धधा शुरू करो, तो सच कहता हू हजारो रुपये कमाने लग जाओगी। तुमने मेरा भविष्य बिलकुल सही बताया! इस वष मेरा विवाह होने वाला है।"

पुष्पवाटिका म टहलत-टहलते अचानक पाव मे काटा चुभ जाए, ऐसा ही मेरा हाल उसका वह अतिम वाक्य सुनकर हुआ। मैं मन ही मन दिलीप पर अपनी अकेली का ही अधिकार मानती थी और उसका इस तरह उल्लघन

मन की परेशानी छिपाने के लिए मैंने कहा, "तो क्या लडकी तुम्हे पसद नही है ?"

"नही तो! मुझे सब कुछ एकदम पसद है। किन्तु अभी चातुर्मास जो चल रहा है विवाह का मूहूत निकलता ही नही।"

उस रात उसने यदि मुझे समझाया न होता कि यह सब कुछ एक मजाक मात्र था, तो

किन्तु आगे चलकर सात आठ महीनो बाद मुझे मालूम हुआ कि यह केवल मजाक नही था, जूनियर का वष पूरा कर वह अपने घर गया। उसके लगभग एक माह बाद किसी और ही स्थान से उसका पत्र आया। जल्दी-जल्दी पेन्सिल से ही लिखा था—"मैं मा के घर जा रहा हू। साल भर वापस नही आऊगा। पूज्य दादासाहब को मेरा नमस्कार कहना।"

मा का घर !

दिलीप का शब्दकोश दुनिया से न्यारा था। उसमे मा का घर माने जेलखाना ! शायद कही सत्याग्रह कर वह जेल

मैं हर रोज बहुत ही ध्यान से अखबार पढने लगी। दो-तीन दिन बाद ही अखबार मे खबर छपी देखी, 'दिनकर सरदेसाई एक साल की कडी कद !'

मन बैरी होता है। मेरी आखो के सामने दिलीप दिखाई देता, चक्की पीसनेवाला, गाडी खीचनेवाला, झाड़ू लगानेवाला, सिर पर लादे बोझ से झुका हुआ। आखो मे आसू आ जाते, फिर भी दिलीप की ऐसी तस्वीरें उनमे धुलकर बह नही जाती थी ! दादा ने जब यह खबर सुनी तो इतना ही कहा, "राजनीति बडा का खेल है ? बच्चे तो उसमे अकारण पिस ही जाएगे !'

मैं अब मट्रिक मे थी। कसकर पढाई करनी थी। इसीलिए दिलीप को लगातार याद करना सम्भव भी नही था। किन्तु जब कभी उसकी याद आती, जी बकरार हो जाता था। फिर तो कुर्सी, जिसपर वह हमेशा बैठा किया करता था, सामने रखकर मैं उसकी ओर देखते काफी देर तक निहारा करती थी। उसकी बीसियो मधुर यादें बारात बनकर मन मे भीड मचाती थी, मानो मधुमक्खिया शहद के छत्ते पर भिनभिना रही हो !

किन्तु उस छत्ते को किसी ने हाथ लगाया तो वे मधुमक्खिया एकदम आक्रमण बोल उठती हैं न ? एकान्त मे दिलीप की यादो को उजाला देने पर वे भी उसी तरह मन को डस लेती थी। उनके दश से मन फिर काफी देर तक पीडित रहता था। दिलीप के प्रति इस अजीब लगाव से मैं स्वयम् हैरान थी। दादा कितने प्यार दुलार से मेरा ख्याल रखते थे। किन्तु मन अब दादा के प्रति पहले जैसा आकर्षण, उतना लगाव अनुभव नही कर रहा था ! साकर उठते समय हाथ के कगन खनकते तो मुझे लगता कि दिलीप की बेडिया खनकती होगी इसी तरह ! वह भी इस समय जागा होगा और—

जेल म उसे चाय कौन देने वाला है ? यहा मैं जाडे के इन दिनो मे गरम-गरम चाय पीकर सुख पा रही हू, और वहा दिलीप ठिठुर ठिठुर

कर

चाय की प्याली से उठती भाप को मैं देखत बठती । फिर दादा कहत, 'सुलू जी, परीक्षा से इतना डरना ठीक नही । लडकियो के जीवन म तो सच्ची परीक्षा एक ही हुआ करती है—वधू-परीक्षा ! विवाह ! बाकी सारी परीक्षाए झूठमूठ की ही समझो !'

चाय पीते-पीते मैं दादा से कहती, "दादा आप भी कमाल करते हैं ! जब देखो, मेरी शादी करत रहते हैं ! हटिए भी, मैं शादी करने वाली नही हू, मैं सस्कृत मे एम० ए० करने वाली हू प्रथम श्रेणी म, और फिर आपके ही कालिज मे "

ऐसे प्रसग पर दादा जोर से पीठ थपथपाते तब लगता कि हम भी कुछ कम नही । दिलीप को फिर मैं भुला देती और उत्साह के साथ चाय पीकर पढाई करने बैठ जाती । पढत पढते अचानक रुक जाती । मैं शकरशेठ छात्र वृत्ति जीतने की तैयारिया कर रही थी । दादा को पूरा विश्वास था कि मैं उस छात्रवत्ति को अवश्य जीतूगी । किन्तु मेरे मन मे बात बात पर सन्देह जागता—दिलीप कितना मेधावी था। फिर भी उसे वह छात्रवत्ति नही मिली । फिर लगभग कण्ठस्थ हो चुकी सस्कृत की किताबें मैं फिर पढने लगती, घाट घोट कर उन्ह पी जाने का इरादा होता और मैं फिर ध्यान लगाकर पढने लगती थी ।

एक बार मैं यू ही मेघदूत पढन बठी थी। बाहर चादनी अपनी श्वेत चादर फला चुकी थी । सफेद बादल आकाश म धीरे धीरे सफर कर रह थे। यकायक दिलीप की याद मन जागी ! जेल म अपनी कोठरी की खिडकी के पास वह भी इस समय मेरी याद मे खडा होगा । क्या उसके पास कोई मेरा सन्देसा पहुचाएगा ? ये पवनझकोरे ? यह चादनी ? ये श्वेत बादल, वह तारा ? असभव !

निराश होकर मैंने मेघदूत की किताब एक ओर फेंक दी और तकिए म मुह छिपा कर फूट-फूट कर रोने लगी । मन कहने लगा, काव्य एक मुलम्मा है निरा । इसान अपने दुखो को छिपाने के लिए उसका सहारा लेता है। सारे कवि धोखेबाज हैं, लुच्चे हैं, दुनिया को बरगलाने वाले दुष्ट लोग है ।

उत्तररामचरित पढते समय भी मैं इसी तरह रुक गई थी । 'मा निषाद

मैंने जरी की किनारवाली आसमानी रग की साडी ट्रक से निकाली और पहनने के लिए उसकी तह खोलने लगी। बालो म दोनो और लगे फूल क्या ही शरमा रह थे—मानो किवाड की आड म छिपकर भाकने वाले नन्हें बालक हो। उनम से एक फूल एकदम गायब हो गया। उसके स्थान पर खादी की एक सफेद टोपी दिखाई दी।

मैंने चौंककर पीछे मुडकर देखा। दरवाजे म दिलीप खडा था। 'भीतर आने की अनुमति है ?" उसने पूछा।

"यह कोई जेलखाना नही है !" मैंने कुछ गुस्से मे ही जवाब दिया।

कितना दुबला हो गया था वह ! रग भी कुछ काला पड गया था। किन्तु उसकी आखो मे एक रोशनी थी। एकदम नई, अब तक कभी न देखी गई। रात मे सवत्र अधेरा होता है, किन्तु पूजागृह के कोने मे रखा नदादीप प्रशात प्रकाश देता रहता है। दिलीप की आखो मे कुछ उसी तरह प्रशान्त रोशनी चमक रही थी। मेरे हाथ म मिठाई रखता हुआ वह बोला, 'सुलू मुझ जसे गरीब को मिठाई खरीदन के लिए तुम बाध्य करोगी, ऐसा तो मैंने कभी सोचा नही था ! '

अपने पेडो मे से दो उसके हाथ पर रखते हुए मैंने कहा,

"ये मेरे पेडे।"

' किस बात की खुशी म ?

' तुम्हारी जेल से रिहाई की खुशी मे ! मुझे तो बहुत डर लग रहा था—'

"वह किस बात का ?"

"यही कि तुम जेल के अन्दर भी कुछ ऊधम मचाते रहोगे और जसे अरबी कहानियो म एक कहानी से दूसरी कहानी निकलती है, उसी प्रकार एक सजा स तुम्हारी दूसरी सजा प्रारम्भ हो जाएगी ! '

उसने हसकर कहा, 'कुछ एसा ही होने वाला था ! किन्तु '

' किन्तु क्या ?'

'बाहर आने क लिए जी मचल रहा था। एक मा के लिए, और दूसर

दूसरे किसक लिए ?"

आइने मे पड़े मेरे प्रतिबिंब की ओर उसने उंगली से संकेत किया। मेरे तो तन-मन मे सितार की गत झनझना उठी, अत्यन्त मधुर सुरावटवाली गत ! वह आसमानी रंग की साडी मैंने फिरसे तहकर ट्रंक म रख दी और हसते-हसते ही हरी साडी निकाल ली। दिलीप पड़ोस के कमरे मे दादा स मिलने गया। मैं अभी हरी साडी पहन ही चुकी थी कि वह वापस आ गया, किन्तु दरवाजे मे ही रुक गया ! गभीरतापूर्वक उसने कहा, 'कही मैं गलत कमरे मे तो नही आ गया ?"

"क्या मतलब ?"

"अभी कुछ क्षण पहले इस कमरे मे मेरी एक सखी थी !"

"और अब ?"

"अब देख रहा हू कि यहा एक अप्सरा खडी है !"

उसके इस वाक्य का हर शब्द मुझे बहुत ही सुखद गुदगुदी करता रहा। उस आनन्द मे न जाने कितने क्षण बीत गए। मैं चायपार्टी मे गई। किन्तु सहेलियो की बातो के बजाय मेरा ध्यान दिलीप के उन शब्दो की मिठास पर ही केन्द्रित हो गया था। एक शब्द—अप्सरा ! किन्तु उसम मानो तीनो लोक की सुन्दरता समा गई थी। उस एक शब्द मे दिलीप क मन म मेरे प्रति बसने वाला प्यार मानो उमड आया था।

पार्टी मे मुझे चुप ही पाकर एक सहेली ने कहा, 'अजी, सुलोचना जी, इतना गर्व न कीजिए। दूसरी बोली, शकरसेठ स्कालर ! विद्या विनय शोभते।' तीसरी ने ताना कसा, बिचारी अब बोले भी तो क्या ? जल बिन मछली जो गई हो है। इसे लगता होगा कि कब वापस घर जाती हू और कब फिर से किताब मे सर खपाती हू।' चौथी बरसी, मैंने कहा सुलू जी, जरा सभल के ! बहुत ज्यादा होशियार लडकियो को पति नही मिलता जल्दी !' पाचवी ने चुटकी ली, 'इसे कुछ मत कहना बहनो, उसने तो अभी से फर्स्ट इयर की किताबें पढना प्रारम्भ कर दिया है !'

इस हसी मजाक के कारण सारे कमरे म जोरो से ठहाके लगते रहे। मैं भी उसमे शामिल हो गई। मैं वास्तव म हस रही थी उन लडकियो के अज्ञान पर। यहा तो मैं दिलीप के उस एक शब्द की कायल हो मरी जा रही थी, और ये लडकिया थी कि कुछ दूसरा ही मतलब निकाले चली जा रही थी।

काश उसमें से कोई मेरे दिल की धडकन को सुन लेती—

नही ! दिल के रहस्यो का पता इस तरह थोड़े ही चल जाता है ? कहते हैं कि गुप्तधन का पता गरज आदमी को ही लग पाता है। अतरतल के किसी का मधुर रहस्य पता भी इसी तरह किसी

नही। दिलीप को भी वह कभी मालूम नही हो सका।

उसकी पढाई अधूरी रह गई। दादा का कहना था कि कम से कम वह बी० ए० अवश्य कर ही ले। उसे भी बात जची थी। कम से कम और एक वर्ष के लिए दिलीप हमारे यही रहेगा और ससार का कोई भी व्यक्ति उसे मुझसे जुदा नही कर सकेगा, इसी कल्पना से मैं विभोर हो गई थी।

किन्तु शीघ्र ही एक बात मेरी समझ मे आ गई। दिलीप अब पहले जसा नही रहा था। गाधीजी के बारे मे अब वह पहली जसी आस्था से बोलता नही था। उलटे, उसकी मेज पर नित्य नई मोटी अग्रेजी किताबें अधिक दिखाई देने लगी थी। लेनिन की जीवनी, ट्रॉटस्की का आत्मचरित्र गोर्की के उपन्यास और ऐसी ही ढेर सारी किताबें—अब तो उन तमाम रूसी नामो की याद ठीक से नही रह गई है, किन्तु हसिया हथौडा चिह्नांकित बहुत सी किताबें हमेशा उसकी मेज पर देखी जा सकती थी। वे आती थी और जाती भी थी। मैं उन्हे केवल उलट पुलट कर देखा करती थी। किन्तु उनमे Dialectical Materialism आदि चार-पाच वाक्य पढते ही पहाड चढने के कारण हाफने जसी लगती थी।

मैं अपनी पढाई म तल्लीन थी।

उस वर्ष की एक घटना मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। वह एक महाविद्यालयीन वाद-विवाद था। विषय था— छात्र राजनीति में हिस्सा लें या न लें ?" हो सकता है कि सक्रेटरी ने जानबूझ कर किया हो, या सयोगवश हो, मेरा नाम दिलीप के विरुद्ध बोलने वालो में रखा गया था। विशाल सभा हुई !

राजनीति से अलिप्त रहने वाले छात्र गोबरगणेश होते हैं, किताबी पडिताई बघारने वाले रटनप्रिय तोते होते हैं', दिलीप कह गया था। शाब्दिक श्लेष निकाल कर मैंने जवाब दिया था राजनीति से लिपटने वाले छात्र किसी और के इशारे पर नाचने वाली कठपुतलिया होते हैं,

किसी न किसी दल के लिए काव-काव करने वाले कौए होते है।'

श्रोताओ ने तालिया बजा कर मेरी बात को सराहा था। मेरा हौसला बढाया था। उस प्रोत्साहन का नशा सा मुझपर सवार हो गया और उस धुन म न जाने मे क्या क्या अनाप-शनाप बकती चली गई।

घर वापस आने पर दिलीप से बोलने का मुझे डर सा लगने लगा। वह पढने बठा था। मैं उसके पास जाकर खडी हो गई, किन्तु उसने किताब मे गडी अपनी नजर उठा कर मुझे देखा भी नही। सिर भी ऊपर उठाया नही।

मुझसे रहा नही गया। मैंने कहा, "दिलीप तुम मुझपर नाराज हो गए हो, है न ?"

उसन सिर हिला कर कहा 'नही।'

तो फिर ?"

"मुझे दुख है।"

"किस बात का ?"

"इस बात का कि मैं जिसे बिजली समझता था, वह निकली एक मामूली चादनी।"

जून म दिलीप बी०ए०पास हो गया। किन्तु उसे तीसरा दर्जा मिला। एफ० वाई० मे मैंने फस्ट क्लास प्राप्त किया। मुझे अपनी बुद्धिमत्ता पर उस समय घमण्ड भी हो आया था।

दादा दिलीप की ओर से निराश हो गए थे। मैंने जब उनसे कहा कि दिलीप अब रामगढ हाई स्कूल म शिक्षक बनने जा रहा है, तो उन्होने हताश स्वर म कहा था, और वह कर भी क्या सकता है अब!'

दिलीप रात की गाडी से रामगढ जानेवाला था। शाम को हम दोनो घूमने के लिए निकले। पहाडी पर जाने के बजाय तलहटी के उद्यान मे ही बठा जाय, मैंने सुझाव दिया। लेकिन वह माना नही। हम दोनो एकदम काफी ऊँचाई पर जा बैठे। वहा की वह ऊची चट्टान, दिलीप के कारण ही, मुझे बहुत प्यारी लगने लगी थी।

उस चट्टान पर बैठने के बाद दिलीप न कहा था, 'पहाड की चोटी पर

स्थित चट्टान से मन को जो प्रेरणा मिलती है, वह तलहटी के उद्यान के फूलो से कदापि नही मिलती।

मुझे हसी आई। मजाक म कुछ जवाब मे देने वाली भी थी। किन्तु

अब वह फिर से हमारे यहा रहने के लिए आने वाला नही था, चाहिए तो यही था कि उसे भी इस बात पर उतना ही दुख होता, जितना मुझे हो रहा था। परतु इस चिर-विरह को लेकर उसने न तो कोई दुख प्रकट किया न ही कोई आह भरी। अभी पिछले वप ही उसने मुझे 'अप्सरा' कहा था। उसमे कि-नी सराहना भरी थी। पागल मन यही आस लिए बैठा था कि आज भी वह उसी भाति कुछ कहेगा। किन्तु—

रात मे तागे मे बठते तक वह एकदम निर्विकार था। तागा जब चलन को हुआ तो उसन अलबत्ता भर्राए स्वर मे कहा, "अच्छा सुलू, अब च नता हूँ।" कहकर तुरत उसने मुह फेर लिया।

मैंने पूछा, "क्या हो गया दिलीप?"

उसने हस कर कहा, "दो मोती खो गए।"

दूर जाते तागे की खडखडाहट जब तक सुनाई पडती थी, मैं उसी स्थान पर खडी रही। मन मे विचार आया—काश, दिलीप के ये आसू भी पूजाघर मे सुरक्षित रखे जाने वाले गगाजल की भाति मैं भी सजो कर रख पाती!

७

रामगढ से उसने मुझे एक पत्र भेजा। लिखा था—

'स्कूल मे नौकरी मिल गई है। प्रति मास पच्चीस रुपये वेतन मिलने वाला है! क्यो सुलूदीदी, है न हमारी पाचो उ गलिया अब घी मे? यह नौकरी भी पिताजी पुलिस इन्स्पेक्टर हैं इसीलिए उनकी सिफारिश पर ही मिली है। अब मैं 'सरदेसाई सर' हो गया हू। मेरे सामने इस समय छात्रा की कापियो का एक ढेर पडा है। उसकी लिखावट तो ऐसी है जसे कुत्ते-बिल्लियो के पावो क निशान हो। चाहता था कि तुम्हें काफी लम्बा पत्र लिखू। किन्तु क्या करू, आठवी कक्षा मे नल-दमयती आख्यान पढा रहा हू। नल का रूप धारण कर जो पाच देवता आए थे उनके नाम कण्ठस्थ

करना है, वरना कल कक्षा मे छात्र मेरी खिल्ली उडाएगे। सातवी मे दक्षिण अमरीका का भूगोल पढाना जारी है। इस प्रवास से सकुशल लौट आने के बाद अवश्य ही तुम्हे फिर लिखूगा। पूज्य दादासाहब को मेरे प्रणाम।

तुम्हारा,
दिलीप।

इस पत्र का उत्तर मैंने उसे कितना लम्बा लिखा था, किन्तु महाशय ने उसके बाद चुप्पी साध ली। पहले कुछ दिन तो मैंने उसके पत्र की काफी उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा की। किन्तु आगे चल कर कुछ तो इटर की पढाई की दौडधूप मे, कुछ सखी सहेलियो की हसीमजाक मे, और कुछ हवा के झकोरो के साथ तरते जानेवाले 'बुढ्ढी के बाल' की तरह कालिज के वातावरण मे व्याप्त कालिज की प्रणय कहानियो मे दिलीप को मन भुलाता गया।

किन्तु जब भी बिजलिया कौंधती, उसकी याद बराबर हो आती थी। उसने चाहा था कि मैं बिजली बनू।

किन्तु बिजली बन कर करना क्या था ? यही न कि ससार को चकाचौंध करती ? मैट्रिक की परीक्षा से मैं लगातार वही तो करती आ रही थी। फिर दिलीप ने क्या मुझे चादनी कहा था ?

एक बार आइने के सामने खडी होकर मैं वही हरे रग की साडी पहन रही थी। पिछली बार एसे ही समय अचानक दिलीप आया था, वैसे ही आज भी वह आ जाए और फिर कहे, 'शायद मैं गलत कमरे मे आ गया हूँ ! अभी तो इस कमरे म मेरी एक सखी थी, और अब देखता हू कि यहा एक अप्सरा खडी है !' काश ! ऐसा हो पाता।

किन्तु निर्जीव वस्तुओ म इतना आकर्षण होता ही कब है ?

उसके बाद दिलीप कभी आया ही नही। दिवाली के बाद उसकी ओर से उपहार म एक पुस्तक जरूर आई। वह था खाण्डेकर का उपन्यास—'उल्का'

उपन्यास की प्राप्ति सूचना मैंने उसे दे दी, फिर भी उसका पत्र मौन टूटा नही। मुझे विश्वास हो गया कि वह अपने परिवार मे और स्कूल मे

पूरी तरह रम गया है। मार्गशीष का महीना शुरू हुआ और दादा को मतेरे विवाह निमत्रण पत्र आने लगे। उन्हे हाथ लगाते भी मेरा कलेजा काप उठता था। कही किसी निमत्रण पत्र मे यह तो नही पढने की नौबत आएगी— चिरजीव दिनकर पत का विवाह ' कभी कभार मन को समझाने के लिए मैं अपने से ही कहती, अब दिलीप से मेरा क्या लेना देना है ? मैं उसे चाहती थी। विगत पाच वर्ष मे वही तो मेरा एकमेव प्राणप्रिय मित्र था। फिर भी आज उन बातो मे क्या धरा है ? अब मेरा उसके साथ क्या सबध है, क्या सरोकार रहा है ?

वह एक मामूली शिक्षक बन बैठा है। मैं बी०ए० फस्ट क्लास मे पास करनेवाली हूँ। उसके बाद एम० ए० मे भी फस्ट क्लास ही लूगी। मेरा भावी जीवन—

उस जीवन मे दिलीप के लिए कोई स्थान नही है। राजमहल राजाओ के लिए बनते हैं, राहचले भिखमगो के लिए नही।

दिलीप आदमी की योग्यता की परख हम क्या इसीलिए नही कर पाते कि प्यार अधा होता है ?

मैंने तुम्हे एकदम सामान्य आदमी माना। नही, नही ! तुम राजा हो। जेल मे हो, तो क्या हुआ ? हो तुम राजा ही !

किन्तु कितनी अभागन हूँ !

मैं राजा की रानी नही हो सकी।

इटर की परीक्षा समाप्त हो गई। उपन्यास पढ़कर मैं अपना समय गुजारने लगी। कभी मन मे आता कि रामगढ पहुच कर दिलीप को अचानक चकित कर दू।

किन्तु

मुझे रामगढ जाना ही नही पडा।

एक दिन शाम को दिलीप ही अचानक प्रकट हुआ।

उसका स्वास्थ्य कोई खास अच्छा नही था। किन्तु उसकी आखें अधिक तेजस्वी दिखाई देती थी।

चाय पीने के बाद उसने हसकर कहा, "अच्छा पहिचानो भला, मैं

किस काम से यहा आया हू ।"

"विवाह का निमत्रण देने ।"

"बिलकुल सही । लेकिन तुम इस विवाह मे नही आ सकोगी ।"

"क्यो नही ? अच्छी दो महीने की छुट्टिया जो पडी है ।"

"किन्तु पता है मेरी शादी होने वाली कहा है ?"

"कहा ?"

"उत्तर हिंदुस्तान मे ।"

"चलो, वही सही । किंतु हमारी भेजी विवाह भेंट तो स्वीकार करोगे न ?"

"जरूर स्वीकार करूगा । किन्तु भेंट मे क्या भेजना होगा यह अभी से सुन लो एक कफनी, गेरुए रग की । "

"कफनी ?" मै लगभग चीख उठी ।

"जी हा । मैं बरागी होने जा रहा हू ।"

पहले तो लगा कि यह सब वह मज़ाक मे कह रहा है। किन्तु वह मजाक नही था। सुना था, रामगढ मे लाट साहब की गाडी बारूद से उडा देने का एक असफल प्रयास हाल ही मे हुआ था। उसमे कुछ स्कूली बच्चे पकडे गए थे। उन बच्चो को पाशविक यातनाए दी जाने लगी। उनमे दो एक सरदेसाई सर का नाम बताया। दिलीप के पिता पुलिस इन्स्पेक्टर थे। बात का बतगड होकर अपना लडका जेल जा सकता है, सभवत अपनी नौकरी भी खतरे मे आ सकती है, यह उन्होने भाप लिया। दिलीप की मा न भी काफी मिन्नतें की। उस घटना के साथ कुछ भी सबध न होने के बावजूद बेकार मे जेल जाना दिलीप को भी पसद नही था। तीन-चार वर्ष रामगढ से कही दूर रहने के इरादे से वह बाहर निकला था।

उस रात भोजन के बाद मैंने पुरानी लोकप्रिय कविताए गाने का आग्रह किया उसे। उसके प्रिय कवियो मे दो चार नाम भी सुझाए और चद कविताओ के पहले चरण भी। किन्तु उसने कविता गाने से इन्कार कर दिया। मुझे नाराज देखकर उसने कहा, "सुलू, आज मन बहुत ही बेचन है। तुमसे मिलने फिर आऊगा तब जितनी चाहो, कविताए गाकर सुनाऊगा, और व भी एकदम नई। फिर तो बनी न बात ।"

उस रात मैं बिस्तर पर करवटें बदलती रही, छटपटाती रही। मन भावनाओं अबार लगा था। विचारों का तूफान उठा था। कभी जी करत दिलीप से कहूं—मैं भी तुम्हारे साथ आती हूं। कभी लगता—उसके ज घुमक्कड के साथ अपनी कसी निभेगी ? प्यार मुझे आगे को धकेल र था, सुख मुझे पीछे खीच रहा था।

दिलीप मुझे उस प्याले जसा लग रहा था जिसमे आधा अमृत औ आधा विष घोल कर रखा हो !

विष के भय मे अमृत का मोह क्या कभी छूटता है ? इस चिन्ता कि शायद इसके बाद दिलीप के दर्शन भी नहीं हो पाएंगे, मन ही व्याकु हो गया था।

मैं धीरे से उठी। दिया न जलाते हुए दबे पाव मेहमान के कमरे गई। गर्मियों के दिन थे। इसलिए दिलीप ने अपनी खटिया खिडकी के पा हवा के लिए खीच ली थी। चादनी मे उसका चेहरा अतीव मनमोहक लग रहा था !

भगवान की मूर्ति को एकटक निहारते रहने वाले भक्त की तरह मैं उसको निहारते कितनी ही देर तक खडी रही। हर पल लौट चलने क ख्याल आता था किन्तु पाव मानो वही जम से गए थे। चुबक के प्रभाव मे आया लोहा भला अपनी इच्छा से कही वापस जा सकता है ?

पता नहीं, मैं वहा कितनी देर खडी थी ! रोम-रोम मे बिजलिया थिरक रही थीं। नयनो से सावन भादो बरस रहे थे। मन मे एक नई कल्पना का नशा-सा सवार होता जा रहा था।

दिलीप मुझे छोडकर जानेवाला है—बहुत दूर दूर जानेवाला है— पता नहीं फिर वह कितने दिनो बाद आएगा।

इसलिए उसकी ऐसी कोई चीज अपने पास होनी चाहिए जिसे उसकी स्मृति के रूप मे चिरतन सजो कर रखा जा सके। ऐसी बात जिसकी याद आते ही अमृतधारा मे नहाने का आभास होने लगे—।

उसके कुछ शब्द ? नहीं ! शब्दो की याद से बुद्धि को सन्तोष होता है किन्तु आत्म विभोर नहीं हो पाती।

तो क्या उसका स्पर्श ? मामूली स्पर्श मे कोई अपनी भावनाओं को

भर नही सकता।

उसका चुवन ?

इस कल्पना से मेरा रोम रोम पुलकित हो उठा। उसमे कुछ-कुछ भय था, कुछ-कुछ आनन्द भी! तिल पर हौले हौले चीनी चढाने पर उसका दाना जिस प्रकार काटेदार वन जाता है। उसी तरह मेरा रोम रोम काटेदार हो गया था। ये काटे कुछ चुभते भी थे किन्तु ये बहुत ही नाजुक और मधुर!

मैं दिलीप का चुवन लेती तो क्या वह पाप हो जाता? यह शका भी उस समय मेरे मन मे उठी नही। चादनी के अलावा हम देखनेवाला कोई नही था और मेरा तो यह हाल था कि मुझे सिवा दिलीप के और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

मैं झुकी—

तभी अचानक ख्याल आया कि हो सकता है कि मैं बिलकुल सावधानी से और बहुत ही हौले मे अपने होठ उसके होठो पर रख दू, किन्तु क्या उस हल्के अधरस्पर्श से भी दिलीप की नीद नही टूट जाएगी?

क्या उसे मेरा यह साहस पसद आएगा? वह क्या कहेगा मुझे? बेहूदा वाहियात ?

लेकिन उसे मेरा चुवन पसद क्यो नही आएगा? वह पूछेगा, 'कौन है?' तो मैं झट से कह दूगी, 'तुम्हारी अप्सरा!'

इधर मैं इस तरह अपने आपको तयार कर रही थी और साथ ही कापते हाथो से अपने बालो मे लगी पिनो के साथ खेल भी रही थी। तभी एक पिन नीचे गिरी। उसकी हल्की सी आवाज भी उठी। किन्तु—

उतनी आवाज से भी मैं चौंककर पीछे हटी।

मैं चकित थी कि इस हल्की सी आवाज से भी दिलीप जाग गया। मैं दूर थी इसलिए उसे शायद एक धुधली सी आकृति दिखाई दी होगी। वह बिस्तर से बिना उठे ही बोला—

"कौन है? पुलिस?"

मैंने आवाज बदल कर कहा, "हा!"

उठते हुए उसने कहा, "चलिए, मैं तैयार हू!"

आगे बढ़कर मैंने कहा 'मैं भी तैयार हूं !'
उसने चकित होकर पूछा, 'किस बात के लिए ?"
"तुम्हारे साथ चलने के लिए !"

आज भी मैं हैरान हूं कि कैसे उस दिन वे शब्द मेरे मुंह से निकल गए। दिन भर छिपाए नक्षत्रों का भंडार खुला करने की हिम्मत आकाश को रात में ही हुआ करती है। इन्सान का भी क्या वही हाल होता है। दुनिया का ध्यान दिन और दुनियादारी के डर के साथ बमेल न होने के लिए जिन भावनाओं को वह अपने दिल के भीतर कहां गहराई में दबाए रखता है, वे आधी रात में शायद उछलकर बाहर आती होंगी ! यही कारण है कि वनवास में दिन भर एक दूसरे के सहवास में रहने के बावजूद भी राम और सीताजी रात बातें करने में गुजार देते होंगे।

उस रात मैं और दिलीप उसी तरह बातें करते सारी रात जागते रहे। वह रामगढ़ के किस्से सुनाता रहा, मैं मोहित हो गई। उसने स्त्री क्रांति के बाद वहां किए गए सुधारों का वर्णन सुनाया, मैं तन्मय हो गई। हमेशा बीमार रहने वाली अपनी माता को छोड़कर घर से निकल आना पड़ा इस बात से उसका गला रुंध आया, तो मैं भी आह भर गई। बातों बातों में उसने पूछा, 'उल्का उपन्यास पढ़ लिया ?'

'हां !'

'कैसा लगा ?'

'नायिका उल्का कुछ दुर्बल प्रतीत होती है। आजकल की लड़कियां उसकी अपेक्षा—'

मैं उल्का का वर्णन करने के लिए सही शब्द खोज रही थी कि घड़ी ने साढ़े पांच का घंटा बजाया। दादा के जागने का समय हो चुका था। मैं तुरन्त चाय बनाने के लिए रसोईघर में चली गई।

क्या आदमी को यह अभिशाप मिला है कि उसे अपने दोष दिखाई न दें ?

मेरी राय में उपन्यास की नायिका उल्का दुर्बल थी। और स्वयं मैं ? कल रात के अपने आचरण पर प्रातः मैं स्वयं हैरान थी। मैं दिलीप के

कमरे म गई थी उसका छूटता सा चुबन लेने के लिए झुकी थी, क्या यह सब सपना मात्र था ? या वाकई म एक हकीकत थी। प्राध्यापक दादासाहब दातार की वेटी, इटर की स्कालर, सत्रह साल की सुलोचना क्या कभी ऐसा पागलपन कर सकती है ? असम्भव !

निश्चय ही वह एक आभास होगा।

दिलीप वम्बई चला गया। ऐसा लगा मानो कोई मधुर तान सुनाई दी और तुरन्त हवा म विलीन हो गई। उस तान की सुरावट को बार बार याद करन, गुनगुनात रहने का जी करता रहा। दिन भर ठीक उसी तरह दिलीप की याद सताती रही।

मन की यह बेचैनी धीरे धीरे शीघ्र ही दूर हो गई।

इटर की परीक्षा म मुझे फस्ट क्लास मिला, सारा कालिज मेरी जय जयकार से गूज उठा। दादा को तो स्वग हाथ आने का आनन्द हुआ।

जूनियर का पूरा साल हवा म उडते बीत गया। सवत्र मेरी प्रशसा के पुल बाधे जा रह थे। बडे-बडे स्कालरो पर मेरी धाक जमी थी। मेरा लोहा माना जाने लगा था। हर लडकी मुझसे दोस्ती करने मे भूषण मानने लगी थी। वह साल तो वनभोजन, नाटक, सिनेमा, चायपार्टियो म बीत गया। कब बीत गया, इसका हर्षोल्लास म पता ही नही चला।

उसके अगले वर्ष यद्यपि पढाई का बोझ काफी रहा, मेरे स्वास्थ्य पर उसका कोई परिणाम नही हुआ, उल्टे, मैं बहुत ही सुदर दिखाई देने लगी। मेरी सहेलिया हमेशा छेडा करती थी, 'भगवान देता है तो छप्पर फाडकर देने लगता है। सुलू का ही देखो न। इसे बुद्धि देकर भगवान रुक नही गए। इसका रूप निखारने म भी उन्होने कोई कोताही नही की ! देखो सुलू, तुम आईना कभी न देखा करना !

मैं पूछती, 'आखिर क्या ?'

उत्तर मिलता, 'अरे, कही उसकी ही नजर न लग जाय तुझे !'

बी ए भी मैंने फस्ट क्लास मे पास किया। मुझे विश्वविद्यालय का सभासद नियुक्त किया गया। ये दो साल तो ऐसे बीते मानो आए ही न थे। किन्तु दादा अब बूढे दिखाई देने लगे थे। उनका स्वास्थ्य भी अब ठीक नही चल रहा था।

इन दो वर्षों म दिलीप की याद कभी कभार ही आती रही। बिजली की तेज रोशनी म टिमटिमाते नीरांजन पर किसी का ध्यान भी नहा जाता। दिलीप के बारे म कुछ ऐसा ही हो रहा था। पढ़ाई की चिन्ता, ख्याति की अभिलाषा, सहेलिया द्वारा की जाने वाली सराहना और प्रशसा, दाना द्वारा दी जाने वाली शाबाशी, व माहौल म मैं इस तरह खो गई थी, माना अपने म ही समा नहीं पाऊ। मेरे चारा ओर हरियाली ही हरियाली थी, फूल खिले थे, खुशिया के फव्वारे नाच रहे थ।

फैलो होने के बाद यह उन्माद उतरने लगा। मैं सोचती रही—आज बी ए कर लिया, कल एम ए भी कर लूगी। उसके बाद क्या होगा? हरियाली चाहे कितनी लुभावनी हो, उसका हरा भरा कालीन छोटे-मोटे गड्ढा को छिपाता रहता है। आज की शिक्षा का यही हाल है। जीवन के साथ आखमिचौनी खेलने म तो वह सहायक होती है, किन्तु वह खेल बच्चा का है, न कि बडा का।

किसी छात्र ने अपने निबन्ध म ऊषा और अनिरुद्ध के प्रेम का उल्लेख किया था। वह निबन्ध पढ़ने के बाद दिन भर यही आख्यान मन पर छाया रहा। मुझे लगा, ऊषा का यह आख्यान मात्र एक अद्भुतरम्य कहानी नहीं, बल्कि हर युवती के जीवन का एक रूपक है। वह अपने प्रीतम का सपना म देखती है। किन्तु जागते म सिवा मन ही मन कुढ़ती रहने के वह बिचारी कर भी क्या सकती है? वह तो चित्रलेखा ऊषा के जीवन म आ गई और उसे अपना प्रीतम आखिर मिल ही गया। चित्रलेखा की सहायता स ही सही, अपने प्रीतम को ढूढ निकालने का सौभाग्य हर नारी को नहा मिलता।

किन्तु किसी और की बात क्यो करू? अब तो मुझे स्वय भी इस बात मे बहुत आनन्द आने लगा कि अपने जीवनसाथी के बारे म सोचती बठू, उसके रग रूप की कल्पनाओ म खो जाऊ।

दिलीप?

नही! वह तो बरागी बना कही भटक रहा होगा। उसकी पत्नी बनने के लिए मैं क्या कोई बरागन हू?

दिलीप जीवनसाथी नही हो सकता। तो कौन हो सकता है?

अब कही मुझे अनुभव होने लगा कि हम आखिर ज्योतिष का भरोसा क्या करने लगते है। अलीबाबा और चालीस चोर की कहानी मे हीरे-मोतियो से भरी गुफा होती है। जवानी की देहली पर खडे आदमी को जीवन भी उसी गुफा की तरह प्रतीत होता है—रहस्यमय किन्तु रम्य भी! 'खुल जा सिमसिम' कहते ही उस कहानी की गुफा का पाषाण द्वार खुलता था और उसमे प्रवेश करना सम्भव होता था। काश! भविष्य का महा-द्वार भी इसी तरह खुलवाने का कोई मन्त्र मानव का ज्ञात होता!—

नही!

ऐसा मन्त्र मानव के लिए अभिशाप सिद्ध होता। सर्दियो मे कोहरे के कारण दूरस्थ वीरान भूभाग भी धुधला किन्तु रम्य प्रतीत होता है। जीवन का भी वही हाल है।

युवा मन म पैदा होने वाला निराकार प्रेम उन्मादक होता है! कवि शायद उसकी तुलना चादनी के साथ करेगे। किन्तु मेरी राय मे वह कोहरे के समान होता है। उसके कारण अपनी चारो ओर की दुनिया का रगरूप बदल जाता है। प्रेम के कोहरे के कारण दुनिया कितनी रगरगीली और लुभावनी प्रतीत होने लगती है। धरती और आकाश एक हो गए लगते है और प्रतीत होता है मानो एक नया महासागर पदा हो गया है।

इस कुहासे का नशा मुझ पर पूरी तरह सवार हो गया था कि एक दिन रामगढ नरेश की अध्यक्षता मे हमारे कालिज मे पुरस्कार वितरण का आयोजन हुआ। नरेश हमारे कालिज के उपाध्यक्ष थे। स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी वे समारोह का निमन्त्रण स्वीकार कर पधारने वाले थे। प्रिन्सिपल साहब का सुझाव था कि समारोह मे राजासाहब का धन्यवाद मैं करू।

कारखानदार को अपने माल का विज्ञापन नित्य नूतन और आकर्षक ढग से करना पडता है। कालिजो का हाल भी वसा ही है। उन्हे भी कोई न कोई नई जुगत लडानी पडती है। मेरे द्वारा धन्यवाद भाषण करवाना एक ऐसी ही जुगत थी।

किन्तु!

हिरनी का पीछा करने वाले दुष्यत को कब पता होता है कि आज उस

के जीवन मे कोई अदभुन घटना होन वाली है ? वह तो बस हिरनी का शिकार करना चाहता है और नियति मुस्कराकर उसकी भागदौड देखा करती है।

मेरे बारे मे कुछ एसी ही वात हुई। धन्यवाद भाषण समाप्त कर मैंने अपना स्थान ग्रहण किया। करतल ध्वनि से वातावरण गूज उठा। इसमे सन्देह नही कि मेरा भाषण वाकइ मे बहुत सुन्दर हुआ था। अपने स्थान पर बैठते समय मने राजासाहब की ओर देखा। वे भी प्रसन्न दिखाइ दिए। लगा कि उन्ह मेरा भाषण बहुत ही पसन्द आया था।

अभी मैं अपनी कुर्सी मे बैठी ही थी कि किसी ने बधाई देने के लिए अपना हाथ आगे बढाया। मैंने मुडकर देखा। राजासाहब का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण रियासत के दरबार सजन भगवतराव शहाणे उनके साथ आए थे। मेरी कुर्सी से लगकर ही उनकी कुर्सी थी। और अभिनदन के लिए उन्होने ही हाथ आगे बढाया था।

मैंने अपना हाथ बढाया। उन्होंने उसे हाथ मे लेकर 'कांग्रेच्युलेशस' कहकर जोर से दबाया।

यह सब बस एक ही क्षण म हुआ।

मैंने तुरन्त अपना हाथ पीछे खीच लिया। किन्तु मेरे पीछे खडी अदश्य नियति अवश्य ही इस पर मजाक मे हसी होगी।

वही हाथ शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण करनेवाला था।

हवाखोरी के लिए राजासाहब कुछ दिन हमारे शहर म रहे। शहाणे भी उनके साथ थे। किसी न किसी बहाने हमारी मुलाकातें होने लगी।

दादा काफी दिनो से बीमार ही चले आ रहे थे। किन्तु वे किसी डाक्टर को अपना स्वास्थ्य दिखाने की बात को टालते ही जा रहे थे। उस समारोह के बाद भगवतराव शहाणे एक दिन अपनी मोटर लिए यहां आए। उन्होने दादा के स्वास्थ्य की परीक्षा की। उन्हें आशका थी दादा का रक्तचाप सभवत बढ गया है। वे गए और रक्तचाप नापने का यत्र लेकर फिर वापस आए। जाच पूरी करने के बाद उन्होने दादा स कहा, "चिंता करने का कोई कारण नही है।" किन्तु मुझे लगा कि, हो न हो, वे दादा स कोई बात छिपा रहे हैं। चाय पीने के बाद उन्होने मुझ से कहा,

'आपके घर का बगीचा है तो छोटा, किन्तु बहुत ही सुन्दर है। हमें दिखाइएगा नहीं ?'

हम दोनों बाहर आए। दादा अपनी जगह से उठे नहीं, किन्तु वे गहरे आशय से मुस्करा जरूर रहे थे। उनकी आंखों में वत्सलता जागी थी और मानो कह रही थी—आप दोनों के एकान्त में भला मैं किसलिए आऊं ? क्रौंचवध के उस श्लोक का सच्चा अर्थ क्या है मैं भलीभांति जानता हूं।

भगवतराव बगीचे के एक कोने में रुक गए। मैं भी रुकी। हमारे चारों ओर अधखिली कलियां मुस्करा रही थीं।

भगवतराव गंभीर होकर बोले, 'दादासाहब के स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखना होगा। यह रक्तचाप '

वे स्तब्ध रह गए। किन्तु उन अधखिली कलियों की मुस्कान अब मुझे यकायक अत्यंत भयानक और क्रूर लगने लगी।

मेरे दादा शायद मृत्यु और मैं अकेली ?

मैं चुप थी। किन्तु मेरे चेहरे पर उठे इन भावों को भगवतराव अच्छी तरह पढ़ गए। उन्होंने बहुत ही मधुरता से कहा, 'आप इतनी विचलित न हों, मैं अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ूंगा इलाज में।'

मां चल बसी, वह दिन मुझे याद आया। उस दिन सान्त्वना देने के लिए दिलीप मेरे पास था। किन्तु आज वह—

पता नहीं आज वह कहां भटकता फिर रहा होगा ! शायद उसने मुझे भुलाया भी होगा। अंधेरे में राह चलते समय आकाश की चांदनी का कोई उपयोग नहीं होता, उस समय आवश्यकता होती है टार्च की—

मैंने भगवतराव की ओर कृतज्ञता से देखा। वे मुझे एकटक निहार रहे थे। उस नजर में कुछ नई बात थी। मैंने तुरन्त सिर झुका लिया।

दादा के इलाज के लिए भगवतराव हमारे यहां प्रतिदिन कम से कम एक बार अवश्य आने लगे। उनके इलाज से दादा को स्वास्थ्य लाभ भी होने लगा। शीघ्र ही दादा अच्छे भी हो गए। परिणाम यह हुआ कि कभी एकाध दिन भगवतराव का आना न हो पाता, तो मुझे अटपटा-सा लगने लगता। वर्षा ऋतु में प्रातः सूर्यदर्शन न होने पर छाने वाली

उदासी की तरह मन मे एक प्रकार की उदासी छा जाती।

एक दिन हम तीनो चाय ले रहे थे। भगवतराव अपने कालिज दिनो के मजेदार किस्से-कहानिया सुना रहे थे। आपरेशन करते समय बरती जानेवाली सावधानता का वणन उन्होने सहज सु दरता से किया। तब दादा ने कहा, 'भई, आपरेशन के नाम से ही मेरे तो रोगटे खड़े हो जाते हैं!'

भगवतराव ने हसते हसत कहा, 'और अपना तो यह हाल है कि आप रेशन का नाम लिया और हम फूले नही समाए! केवल दवाइया देकर जिनका इलाज किया जा सके, उन बीमारियो मे कोई खासियत नही हुआ करती। रोगी के मर जाने का खतरा भी बहुत कम होता है और परिणाम स्वरूप उसके रोगमुक्त हो जाने का आन द भी थोडा! किन्तु आपरेशन के समय रोगी मौत के मुह म फसा होता है। मौत को परास्त कर उसे सकुशल वापस निकाल लाना अपने मे ही एक पराक्रम है। उस विजय का उ माद—'

मै विस्मित हाकर भगवतराव की बातो का आन द लेती हुई उ हे एकटक निहार रही थी। बीच ही म रुककर उन्होने मेरी ओर देखा, तो शरम के मारे मैं गडी जा रही थी।

दादा ने पूछा, 'किन्तु जब कोई ऑपरेशन विफल हो जाए, तो मन को बहुत क्लेश भी तो होत ही होगे है न?'

'ऐसी नौबत मुझ पर कभी आई ही नही। एक बार अवश्य—'

पता नही क्यो, वे अकस्मात चौंक गए और रुके! तुरन्त हसकर मरी ओर मुडकर बाल, 'अपने का तो एक प्याली चाय और चाहिए! क्या मिल सकती है?'

इन चक्लियो का तो आपने अभी हाथ भी नही लगाया?' मैंने पूछा।

दादा ने बीच ही मे कहा, सुलू ने ये स्वयम् बनाई हैं!'

'तब ता उनका स्वाद लेने की आवश्यकता ही नही!'

उनका वह वाक्य सुनकर मेरी हालत तो उस आदमी जैसी हो गई जो यू ही मजाक म बरफ का टुकडा मुह मे डाल लेता है और उसकी ठडक से दातो म भयकर पीडा हाने के कारण परेशान हो जाता है। दादा भी कुछ

चौंके। मैंने ऐसे सहज भाव से, कि जैसे कुछ हुआ ही नही कहा, 'आम धारणा है कि आजकल की पढी लिखी लडकियो को भोजन पदार्थ ठीक से बनाना आता ही नही ! इसीलिए मैंने ये चकलिया[1] जानबूझकर बनाइ है। आपको कम से कम एकाध तो खाकर देखनी ही चाहिए !'

मैं सोचती थी कि इतना कहने पर वे तुरत ही एक चकली उठा लेंगे, किन्तु उन्होने हसकर कहा, 'क्षमा कीजिए, किन्तु चकली म तो मिर्च इतनी तेज होनी चाहिए कि—'

मैंने कहा, 'अजी, आप खाकर तो देखिए, आख-नाक से धारा बहने न लगी तो फिर कहिएगा।'

उन्होने कहा, 'ये इतनी तेज मिर्च वाली हो ही नही सकती !'

'यह आप कैसे कह सकते हैं ?'

'इसलिए कि ये आपने बनाई हैं, ये अवश्य ही मीठी होगी !'

अब जाकर कही उनके द्वारा किया गया विनोद मेरी समझ म आया।

मैंने हसकर कहा, 'इग्लड जाकर आप बेकार ही मे बडे डाक्टर बन आए !'

'क्या मतलब ?'

'आपको तो कहानी लेखक बनना चाहिए था ! कथावस्तु को काफी रोचक बना जाते आप !'

इस बात पर सारे बदन मे सिहरन पैदा होने का अभिनय करते हुए उन्होंने कहा, 'लगता है, मेरे बारे मे आपने बहुत ही बुरी धारणा बना ली है !'

यह सब मजाक मात्र है, मैं भी जानती थी। फिर भी छोटे बच्चे सेत-मेत् के रोते है न, वसे ही मैंने गुस्सा जताया।

भगवतराव ने हसकर कहा, 'कहानी लेखक पर लिखी गई एक अति लघुतम कथा आपने अभी शायद पढी नही है।'

---

1 चकली महाराष्ट्र मे विशेषत दिवाली के त्योहार पर घर म ही बनाया जानेवाला ऐसा नमकीन पदार्थ है जो आकार मे जलेबी जैसा और काटेदार होता है।

मैंने सिर हिला कर 'ना' कहा।

भगवतराव कहने लगे, 'तीन सौ कहानिया और पचास उपन्यास लिख चुकने के बाद भी उसके लेखक के पास फूटी कौडी भी नही होती। भगवान को इस अन्याय का हिसाब मागने के लिए वह एक मदिर म जाता है। वहा भगवान प्रसन्न होकर उससे कहते हैं—जो चाहो वर मागो! लेखक तुरत कह देता है—हे भगवान कुछ ऐसा वर दो कि मेरी जेब की बीडिया तथा माचिस की तिल्लिया कभी समाप्त नही होगी!'

इतना कह कर भगवतराव हसने लगे। वे हसे इसीलिए शायद मैं भी हसी। अन्यथा—

मैंने आगे बढाया चकली का टुकडा उन्होंने खा लिया।

मैंने जान बूझ कर पूछा, "कैसी बनी है चकली ?"

उन्होने हसते-हसते कहा, 'यह कोई चकली है ? इसे चकली कहते हैं ?'

'क्या मतलब ?'

'अजी, यह तो जलेबी है जलेबी!'

तेज प्रवाह के साथ बहते जाने वाली नाव की तरह मैं भगवतराव के सग चली जा रही थी। वे कही भी चलने को कहते—सिनेमा, सभा, दूर की सैर—मैं इन्कार कर ही नही पाती थी। चिलचिलाती धूप मे आकर वे मुझसे बातें करते बैठ जाते तो मुझे लगता बाहर चिलचिलाती धूप नही, शीतल चादनी फैली है। सिनेमा के अधेरे मे वे धीरे से मेरा हाथ अपने हाथ मे लेते, तो आभास होता कि रेडियो चालू करते ही मधुर सगीत लहरिया काना को मोहित कर रही हैं। दो एक बार मैंने अपना हाथ हौले से छुडा लेना चाहा, तो उन्होने उसे जोर से दबा रखा, और मेरा रोम रोम बाग-बाग हो उठा। नसो म रक्त नया विन्यास करता-सा प्रतीत हुआ। उसकी अति लुभावनी छमछम—

दादा का स्वास्थ्य अब काफी कुछ ठीक हो गया था। वे चाहते थे कि इसके लिए भगवतराव को कुछ पत्रपुष्पम् भेंट किया जाए। किन्तु किस तरह यह बात छेडे, उनकी समझ मे नही आ रहा था। अन्त मे एक दिन

मैंने ही—

शाम को हम दोना मेरे कमरे मे बातें करते बैठे थे। काफी साहस सजाकर मैंने उनसे कहा, 'आपने दादा को रोगमुक्त कर दिया। किन्तु अभी तक आपने अपनी फीस नही बताई ?'

मन म कितने ही अच्छे अच्छे सुन्दर वाक्य मैंने तयार कर लिए थे, किन्तु ठीक मौके पर एक भी याद नही आया।

मुझे कुछ पेशोपेश म पडी पाकर भगवतराव ने हसकर कहा, 'मैं रामगढ़ रियासत का दरबार सजन हू। विदेश म शिक्षा पाया हू। स्पष्ट है कि मेरी फीस बहुत ही जबरदस्त होगी।'

मैंने उनकी ओर देखा। उनकी नजर तेजस्वी किन्तु निर्विकार थी, मानो सगमरमर हो। समझ म नही आ रहा था कि भगवतराय अब कितनी फीस मागेंगे, एक हजार, दो हजार ? उन्होने पूछा, 'फीस कब देंगी ?'

मैंने ढीठ होकर कहा, 'आप जब भी माग लें।'

'अभी, इसी वक्त ?'

'जी हा, इसी वक्त।'

'सोच लीजिए भला, वरना बाद म आप मुकर जाएगी।'

मैं उनकी ओर देखते ही रह गई।

'मुझे तो कोरा चक चाहिए।'

'यानी ?'

'उसम रकम का आकडा मे अपनी मर्जी से भर लूगा।'

'किन्तु—'

'किन्तु परन्तु कुछ नही चलेगा। एक लाख एक करोड एक अरब कुछ भी लिखू, कम ही होगा।'

वे मसखरी पर उतर आए हैं, जानकर मैंने कहा, 'चलिए, दे दिया कोरा चक, अब तो आकडा बताइएगा ?'

उन्होने फुर्ती से आगे बढ कर मेरा चुबन ले लिया। मुझे लगा—जूही, चमेली, हर्रसिगार के फूलो की वर्षा मुझ पर हो रही है। रोम रोम मे बिजली दौड रही है। मन की गहरी तह मे कही सितार की मधुर झकार झनझना उठी है।

'फीस मिल गई। क्या रसीद दे दू ?' भगवतराय ने पूछा, तब जाकर कही मैं होश मे आई। खिडकी से पूनम का चाद बहुत ही मनभावन दीखता था। मुझे लगा, वह अपने बिलकुल पास आ गया है, इतना कि शायद हाथ बढाऊ तो हाथ मे भी आ जाए!

दुख मे आदमी को नीद नही आती यह तो मैंने अनुभव किया था। किन्तु उस रात खुशी के मारे मैं सो नही सकी, बार-बार भगवतराव का वह अधरस्पश याद आता था। उसके स्मरण मात्र से रोम रोम पुलकित होता था। बाहर फली चादनी स भी अधिक मोहक कुछ बात अन्तरतल पर छा गई सी लगती थी।

सत तुलसीदास ने कहा है न ?—गौतम नारी श्राप बस, उपल देह धरि धीर। चरण प्रसाद चाहती, करहु कृपा रघुबीर राम के चरणस्पश से शिला बनी अहल्या फिर से मानव देहधारिणी बन गई थी। मुझे लगा कि अधरस्पश मे भी वही शक्ति है। उस स्पश से प्रीति के पावो मे पडी जजीरें चटचट टूट जाती हैं!

पिंजडे का पछी आसमान मे उडानें भरने लगा।

उस रात मन म उठी कल्पनाओ का और उभरी उफनी भावनाओ का वणन कर पाना असभव है। यदि कहू कि आकाश मे सवत्र इद्रधनुष फल गए थे ? नही! सागरतल के सारे रत्न सतह पर आकर तैर रहे थे ? ना ना, फिर भी उस उल्लास की और उन्माद की सही सही कल्पना कोई नही कर पाता।

आधी रात बीत जाने पर आख लगी। एक सपना आना आरम्भ हुआ। सपने मे देख रही थी मैं कि भगवतराव मेरा चुबन ले रहे हैं। मैं शरमा कर कह रही हू, अजी, कोई देख ले तो ?'

यकायक भगवतराव गायब हो गए। उनके स्थान पर दिलीप प्रगट हुआ।

मैं जाग गई। वह रात याद आ गई जब दिलीप उत्तर भारत मे कही चला गया था। मैं अपने पाव चलकर उसके कमरे मे गई थी, उसका चुबन लेने के लिए उस पर झुकी थी। उस समय वह अचानक जाग न जाता

तो—

मैं उलझन मे पड गई। सच्चा प्रेम मैं किससे करती हूँ ? दिलीप से या भगवतराव से ? भोर होते तक अपने आपको समझाती रही दिलीप ने अपने जीवन मे एक सुन्दर सपना देखा था। किन्तु ऐसे सपने एक ही बार आते हैं।

इतने वर्ष बीत गए उसने आज तक एक चिट्ठी तक नही लिखी है। भलेमानस न अब तक तो किसी उत्तर हिंदुस्थानी लडकी से शादी भी कर ली होगी शायद !

मैं मन को बार बार बुझाती रही, अब दिलीप को भुलाना होगा। उसके साथ रहे सारे सम्बन्ध अब समाप्त हो चुके है। दो पछी पल भर के लिए एक डाल पर आकर बैठ जाए, साथ साथ चहचहे लगा जाए, तो उतने मात्र से दोनो का घरौंदा एक नही हो जाया करता।

दिलीप को भुलाने के सारे प्रयास लकडी को कुछ समय पानी के अदर डुबोए रखने के समान थे, हाथ छोडा और फिर उछल कर सतह पर आ गई।

उस रात दिलीप जहा सोया था, वहा मैं गई। वह खाली पलग, उस पर लपट कर रखा हुआ मेहमान का बिस्तर, पता नही मैं क्या खोजने गई थी। बाहर फैली चादनी अब मुझे डरावनी लगने लगी। मैं अपने कमरे मे वापस आ गई और सिर पर चादर ओढ कर सो गई।

जागी तब दिन काफी चढ आया था। घोडे बेच कर सोने की अपनी इस आदत पर काफी झुझलाहट अनुभव की। भगवनराव आठ बजे आने वाले थे। चाय के समय वे दादा के सामने मेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखने वाले थे। और इधर मैं थी कि यह सब मालूम होते हुए भी सात बजे बाद तक सोयी पडी थी—

बडी जल्दी-जल्दी मैंने बालो मे कघी की, केशभूषा वेषभूषा झटपट पूरी कर आइने के सामने खडी हो गई। आइने मे अपनी सूरत निहारते हुए मन ही मन कहा, इस रूप को देख कर भगवतराव क्या कहेगे ? मानो अप्सरा—

अप्सरा !

यही वह स्थान है यही वह आइना है, इसी के सामने मैं खडी हो गइ थी तो दिलीप ने यही कहा था न ?

दिलीप दिलीप—

स्मृति क्या दुखाई जाने के कारण प्रतिशोध मे तडपती नागिन होती है ?

बाहर मोटर का हार्न सुनाई दिया। मैं साडी की पिन खोजने लगी। किन्तु—किसीने कहा है न कि नौकर और वस्तु समय पर काम आए तो धरती पर स्वर्ग उतर आएगा ?

मैं हडबडा कर पिन खोज निकालने के लिए तरतीब से रखी अपनी चीजो को इधर-उधर फेंकने लगी। अपनी अभ्यासिका मे जाकर मेज की दराजें भी मैंने खोल कर देख मारी। एक दराज म वह नमक की पुडिया थी—शिरोडा के नमक सत्याग्रह से दिलीप मेरे लिए लाया था वह नमक! मैंने उसे वचन दिया था कि जीवन भर उस नमक को सभाल कर रखूगी! मैंने उस नमक की पुडिया को दराज म और उस स्मृति को मन के अधेरे कोने म फेंक दिया। किन्तु—

'चाय के समय भगवतराव ने कहा, आज की चाय ता नमकीन बन पडी है!'

'क्या मतलब ?' दादा ने पूछा।

'अजी आज किसी का चित्त ठिकाने पर हो, तब न ? चीनी के बजाय नमक ही घोला है चाय मे!'

ट्रे उठा कर ले जाने के बहाने मैं उठकर रसोईघर म आ तो गई, किन्तु इसका होश ही न था कि एक प्याला लडखडा कर गिर रहा है। देहली पर मैंने ठोकर खाई और वह प्याला गिर कर टूट गया।

मन म विचार आया—मन मे बसी दिलीप की मूरत को मैं दूर दूर फेंक रही हू! यह आवाज कही उस मूरत के टूटे टुकडो की तो नही ?

दिलीप का दिया हुआ वह नमक आजादी का वह प्रतीक देश भक्ति की वह निशानी किस विचार से उसन मुझे सौंपा था ?

मा के देहान्त की उस रात—दिलीप का वह ममता भरा स्पश—

दिलीप मुझसे विदा लेकर चला गया वह रात—यह सोच कर कि

उसकी दूसरी काई भी याद चिरतन अपने पास नही रहेगी, उसका चुबन लेने की मन म जागी प्रबल इच्छा—दबे पाव उसके कमरे म मेरा प्रवेश—चुबन लेने के लिए उस पर मेरा झुक जाना—वह रात—

ओफ! मन तो इतनी बुरी तरह बेहाल था, मानो दो डोरियो से बधी पतग हो, क्षण म फरफर करती आकाश म चढ़े और दूसरे ही क्षण सरसर करती नीचे को खिची चली आए। कमरे म जाकर तकिए म मुह छिपाकर जी भर रो लेने की सोच ही रही थी कि—

आज भी दादा का उस समय चेहरा आखो के सामने आ जाता है, सूखे फूल पर गिरी ओस की बूदा की तरह उनकी आखो मे आनद के आसू चमक रहे थ।

मुझे छोटे बच्चे की तरह सहलाते से दादा ने कहा, 'बेटा सुलू! बहुत भाग्यशाली हो तुम! काश, तुम्हारा यह परम सौभाग्य देखने के लिए आज तुम्हारी मा भी होती—!'

मा की याद मे मेरी भी आँखो मे आसू आ गए। मेरे आसू पोछते हुए दादा ने कहा, 'बीच मे तो मुझे भी लगने लगा था कि जीते जी तुम्हारा ब्याह मे नही देख सकूगा। किन्तु—'

उनका गला भर आया। आगे उनसे कुछ भी कहा नही गया। मेरा हाथ पकडकर वे मुझे बाहर ले आए। अपनी शरमाहट पर मैं हैरान रह गई—किसी सनातनी विचार की लडकी के समान मैं कही और ही देख रही थी।

दादा ने भगवतराव से कहा, 'शाकुतल नाटक का चौथा अक मैंने छात्रो को कई बार पढाया है। किन्तु आज मन मे जो उथलपुथल अनुभव कर रहा हूँ, पहले कभी नही की थी।

तुरत मेरी ओर मुडकर उन्हाने कहा, 'सुलू, जरा इधर तो देखो!'

बडी-बडी सभाओ मे बिना घबडाए धडल्ले से बोलने वाली मै! उस क्षण भगवतराव से आँखें चार नही कर सकी।

भगवतराव न दादा से कहा, सुलू के ससुराल चले जाने पर कुछ दिन तो आपको अकेले अच्छा नही लगेगा!'

दादा हसते हुए बोले, 'मेरी एक और लडकी है न?'

'कौन सी ?' उन्होंने भी हसते हुए पूछा।

दादा चुपचाप उठे, अपना सितार उठा लाए और उनके अब तब रोक रखे आसुओ ने ही मानो करुण मधुर स्वरो का रूप धारण कर लिया।

उस शाम मैं और भगवतराव पदल ही सर करने के लिए चले। वे चाहते थे कि पहाडी की तलहटी मे बनी पुष्पवाटिका मे ही बठ कर बातें करें। किन्तु आज तो मेरे हप का पारावार नही था। मैंने पहाडी की चोटी पर चढ जाने की जिद् कर ली। पत्नी के नाते उन पर अपना अधिकार जताने का वह पहला अवसर था! मैं भला उसे हाथो से कसे जाने देती? वे आहिस्ता आहिस्ता पहाडी चढ आए। हमेशा कार म घूमने की आदत होने के कारण वे उकता से गए। बीच ही मे वे रुकते, तो मैं कहती, 'आप पहाडी पर मेरा बठने का स्थान देखेंगे न, तो इतने खुश हो जाएगे कि—'

एकदम चोटी पर खडी वह विशाल चट्टान—उसकी चारो ओर बिखरे खडे छोटे-छोटे पाषाण और पत्थर-कंकड—

उस स्थान की ओर सकेत करते ही भगवतराव ने हस कर मसखरी की, 'पत्थरो को फूलो से प्यार है इसलिए मदिर देवालय बनाए जाते हैं और फूलो को पत्थरो से लगाव है इसलिए इस तरह की पहाडिया खडी हो जाती हैं!'

उनके इस मजेदार वाक्य के कारण मुझे हसी आनी चाहिए थी। किन्तु पहाडी पर इसी स्थान पर दिलीप ने जो कहा था। मुझे याद आ गया और मेरी मुस्कान होठो म ही कुम्हला गई। दिलीप ने कहा था, 'पहाडी पर खडी प्रचण्ड चट्टानो से मन को जो प्रेरणा मिला करती है, वह पुष्पवाटिका के नन्हे-नन्हे फूलो से कदापि नही मिल सकती?"

दिलीप को चट्टानो से प्यार था और भगवतराव को फूलों से! भगवतराव एक ख्यातनाम सर्जन थे। देखते ही देखते मे शरीर पर चाकू कैंची चलाने का कौशल उन्होंने प्राप्त किया था! फिर भी क्या उन्हे फूलो के प्रति इतना लगाव था?

और दिलीप—कितना भावुक था! उसका मन हरसिंगार के फूलो जैसा कोमल था। हथेली की सामान्य गरमाहट से भी हरसिंगार का फूल

कुम्हला जाता है। दिलीप का हाल भी क्या वैसा ही नहीं था ? राह चले आदमी के दुख से भी वह दुखी हो जाता था। मा के प्रति उसकी ममता, देश के प्रति उसकी असाधारण भक्ति, भगतसिंह फासी पर चढ गया, उस दिन दिलीप ने रखा व्रत

फिर दिलीप को चट्टाना पाषाणो से इतना लगाव क्या ?

इसस तो लगता है कि मानव जीवन अपने मे ही एक पहेली है, दिलीप के सहवास मे मैंने चार साल विताए थे। फिर भी मैं उसके मन की थाह नही पा सकी।

भगवतराव मरे पास ही बैठे थे। कल वे मेरे पति होनेवाले थे। उनके मन की थाह भी—

यह कस सभव है कि वह नारी जिसे चार वष के सहवास म भी एक पुरुष का मन जानने म सफलता नहा मिली, दो महीने म दूसरे पुरुष के मन की थाह पालेगी ?

फिर भी मैं भगवतराव की पत्नी बनने निकली थी ! यही सच है कि विवाह जीवन की एक दुघटना होती है !

भगवतराव का प्यार भरा स्पश, मुझ पर टिकी उनकी मनमोहक नजर, होठो पर खेलती लुभावनी मुस्कान, ये सारी बातें मुझसे कह रही थी — भगवतराव तेरे हैं, केवल तेरे ही हैं ! किन्तु मेरा मन कह रहा था—नहीं! मानव मन प्राचीन प्रासाद के समान होता है। बाहर से कोई नही कल्पना कर सकता कि भीतर कितने दालान होंगे और कितने आगन प्रागण। आज मैं पहले दालान के प्रागण मे खडी हूँ। उसमे प्यार की रोशनी की गई है इसलिए सवत्र जगमग प्रकाश फैला है। किन्तु अगले दालान म—

अगले प्रागण म भी क्या इसी तरह प्रकाश फला होगा ?

धुन धुनकर कपास साफ होता जाता है। किन्तु मन ? कदापि नहीं ! रेशम को कौन धुनता है ? रशम की धुनाई करें तो उसके सारे धागे टूट जाएगे।

भगवतराव न धीरे से मुझे अपनी बाहो मे न भीच लिया होता तो—

तो सारी रात आशकाओ और सन्देहो के शूल चुभते रहते और मैं बेहाल हो गई होती। किन्तु मेरी वह रात मधुर सपनो की बारात बन

गई।

तय किया गया कि हमारा विवाह रजिस्टर-प्रथा के अनुसार ही हो। यह भी कि दूसरे ही दिन विवाह का नोटिस दे दिया जाय—

किन्तु दूसरे दिन राजासाहब ने हरद्वार जाने की योजना अकस्मात् ही बना ली। वैसे उनके स्वास्थ्य म कोई सुधार नही हो पाया था। तिस पर अब तक उनके कोई पुत्र भी नहीं हुआ था। किसी ज्योतिषी ने उनसे कहा था कि कुछ दिन तक विशेष धम-कम करें। उसने डके की चोट यह भी कहा था कि वह धम कम राजासाहब यदि गगातट पर करें तो साठ साल की उम्र मे भी उनके पुत्र हो सकता है! उन्होंने इसीलिए तत्काल हरद्वार जाने की योजना बना ली थी।

भगवतराव का उनके साथ जाना अपरिहाय था। उ होने मुझे भी साथ ले चलने की इच्छा व्यक्त की। दादा ने अनुमति दे दी। और स्वप्न म भी असम्भव प्रतीत होनेवाली बात यथाथ म हो गई, मैं उत्तुग हिमालय की छाया म जा खडी हो गई।

हरद्वार के म दिरो और व रागियो के मेलो मे मेरा मन रमना असम्भव ही था। किन्तु हिमालय की उत्तुग चोटिया दूर से देखने पर भी अपार हष होता था। लगता था, काश, उसमे से एक शिखर पर जाकर वहा से चारो ओर का दश्य देखने को मिलता! शकर और पावती कलास पवत पर जाकर रहते हैं, सो क्या बिना वजह? कितना आन द आता होगा! लेकिन मनकी यह बात भगवतराव से मैं नही कह सकी। कह सकती तो शायद वे मेरा मजाक उडाते, मुझे पागल कह देते!

दिलीप होता, तो वह अवश्य ही—

हिमालय की उन ऊची चोटियो को देखते समय प्राय दिलीप की याद हो आती। ऊचे, ऊचे ही उठते जाने का उसमे कूट-कूटकर समाया उछाह, और पत्थरा के प्रति उसका आकषक बार-बार आता और मैं सोचने लगती—कितने वष बीत गए! हिमालय की ये चट्टानें गगा को पालपोस रही है। बरफ मे गडी जाने पर भी वे कभी शिकवा नही करती!

हिमालय की हिमाच्छादित चाटियो और गगा का साफ-सुथरा प्रवाह

देखते देखते हरद्वार मे समय कसे बीत गया, पता ही न चला।

राजासाहब का धर्म-कम पूरा होने के तुरन्त बाद हम वापस लौटे। हम जिस गाडी से प्रवास कर रहे थे, उसीम एक स्टेशन पर पचासेक वैरागी भी चढे।

इण्टर दर्जे के डिब्बे मे अपने बर्थ पर बठी मैं सोच रही थी, इन वैरागियो का जीवन भी कोई जीवन है ? कैसे काटत हागे ये लोग अपनी जिन्दगी ? हम लोग जिसे सुख कहते हैं, ऐसी एक भी चीज इन्हे कभी नसीब नही होती, न घर है, न द्वार है। न गहस्थी है न बालबच्चे ! हर रोज नई धरमशाला मे रहना, नए द्वार पर जाकर अलख जगाना ! छि छी ! यह भी कोई जिन्दगी है ? यह तो—

सोचते सोचते मेरी आख लग गई। जागी तो काफी रात हो चुकी थी।

एक स्टेशन पर गाडी रुकी थी। कौन सा स्टेशन है यह देखने के लिए मैंने खिडकी से भाक कर देखा। वैरगियो का वह काफिला उसी स्टेशन पर उतरा था। कतार बाधकर वे लोग बाहर जा रहे थे। कभी स्टेशन की बत्ती की रोशनी किसी के चेहरे पर पडती थी, एक युवा वरागी एक बूढे बरागी को अपनी पीठ पर लादकर जाता दिखाई दिया। वह बत्ती के नीचे आते ही पीठ पर लदा बूढा वैरागी जोर से चिल्लाया। उसका डण्डा नीचे गिर गया था।

बूढे की चिल्लाहट सुनकर उस युवा वैरागी ने अचानक पीछे मुडकर देखा। बत्ती का प्रकाश उसके चेहरे पर पडा।

अपनी आखो पर विश्वास मैं नही कर पा रही थी ! वह दिलीप था।

एक बार जी ने चाहा कि लपककर किवाड खोलकर उसके पास दौडती चली जाऊ।

तभी इजन ने कणकटु सीटी मारी।

'दिलीप' कहकर मैंने उसे जोर मे आवाज देने का प्रयास किया किन्तु मेरी पुकार गले म ही जम गई। सर्दी मे पानी जम जाता है। आश्चय के सद सदमे ने मेरी आवाज को भी जमा दिया था। गाडी अधेरे म भकभक भुक भुक करती चालू हो गई। दिलीप से दूर-दूर जाने लगी। केवल

रात के इस एकात मे मेरा साथ दे रहे हैं केवल मेरे आसू !

लेकिन पता नही, ये आसू तब कहा खो गए थे, जब मैं विवाह के बाद पीहर छोडकर ससुराल रामगढ जाने निकली थी। शायद उस समय मेरी आखो के सामने दादा के अकेलेपन की अपेक्षा रामगढ का वभव ही नाच रहा था। भगवन्तराव ने अपने बगले का वणन इतना रसीला किया था कि —बगले के पोर्च म गाडी खडी होते ही मुझे लगा कि उनके द्वारा प्रशसा म कहा गया हर शब्द सही है। सारा बगला ऐसे दमक रहा था, मानो अगूठी मे जडा नीलम हो ! चारो ओर फला विशाल बाग, सामने ही बनाया गया तालाब—

क्षण भर तो ऐसे लगा कि कही मैं किसी स्वप्न मे तो नही ? पास ही म राजा साहब का बडा बगला था। तालाब के किनारे-किनारे बडे अधिकारियो के और भी छह सात बगले थे। गाव यहा से कोई दो मील पर था। बस, फिर क्या था ! मैं तो तरह-तरह के ख्याली पुलाव उडाने लगी —जीवन भर अब इतने सुदर और प्रशात स्थान मे रहने को मिलेगा राजा रानी-सी घर गहस्थी बसेगी भगवन्तराव राजा, मैं रानी ठाटबाट से रहा करेंगे यहा के बडे-बडे अधिकारियो की पत्निया मेरी सहेलिया बनेंगी आदि-आदि।

कभी कभी फूलो के हार भी बोझ बन जाते हैं ! इन मधुर ख्याली पुलावो के कारण मेरा मन भी बोझिल हो गया।

नौकर ने आकर फाटक खोला। मैं भीतर गई। भगवन्तराव किसी अधिकारी से बातें करते वही खडे रहे। अधीरता से मैंने सारा बगला छान डाला ! फर्नीचर, चित्र, अलमारिया आदि सभी वस्तुए अति सुदर थी। पाव पडते थे तो कालीनो पर, नजर रुकती थी सौंदय पर।

दूसरी मजिल के कमरो को देखने के बाद मैं तीसरी मजिल पर जाने लगी। साथ आ रहे नौकर ने कहा, 'ऊपर कुछ भी नही है, मालकिन !'

मैंने हसते हुए पूछा, "तो फिर ये सीढिया किस लिए बना रखी हैं ?"

उसका उत्तर सुनाई देने से पहले ही मैं सीढिया चढकर ऊपर गई। छत पर विशाल गच्च बना था कितु कमरा केवल एक ही था। बाहर से

ही वह कमरा मुझे इतना पसद आया की उसे भीतर से देखने की इच्छा से मैं आगे बढी। किन्तु—

कमरे मे ताला लगा था।

मैंने नौकर से पूछा, "इसकी चाबी किसके पास होती है रे ?"

"मालिक अपने पास ही रखते हैं इसकी चाबी !"

मैं कुछ हैरान रह गई, सारा बगला नौकरो के हवाले और इसी एक कमरे की चाबी उनके पास ! तभी ख्याल आया कि वे इतने बडे बगले म अकेले रहते आए है। उन्हे शायद इस कमरे की आवश्यकता भी नही प्रतीत होती होगी और इसीलिए उन्होने यह कमरा बन्द कर रखा हो। यह भी तो हो सकता है ?

मन-ही मन मुस्कराते मैंने तय कर लिया कि इसी कमरे को अपना शयनगह बनाया जाय। और अब भगवन्तराव के ऊपर आते ही उनसे इस कमरे की चाबी माग ली जाए—

मैं गच्च के छज्जे से झुक कर देखने लगी कि भगवन्तराय अभी भीतर आ भी गए है या नही।

वे अब भी फाटक पर ही खडे थे। कोई बैरागी उनसे 'एक पस का सवाल' कर रहा था और वे उसे गुस्सा होकर चले जाने को कह रहे थे।

उस बरागी को देखत ही मुझे दिलीप की याद आ गई। क्या वह भी इसी तरह दर-दर की ठोकरें खाता हुआ भीख मागता फिर रहा होगा ?

सयोग से कल वह इसी बगले के फाटक पर आ गया ता ? मुझे यहा देखकर वह क्या सोचेगा !

अहकार न होता तो इसान इन्सान न रहकर भगवान हो जाता ! है न ?

अपने वैभव का अहकार मेरे मन मे जाग उठा। उसी की धुन मे मैं यह सोचने लगी कि दिलीप की झोली म कौन-सी भीख डाली जाए ?

किन्तु—

दिलीप कभी भिखारी नही था। वह तो बिना पसे का रईस था।

सच्ची भिखारन तो मैं हू !

किन्तु मुझ म इतनी हिम्मत नही थी कि दामन फैलाकर मन की

मुराद दिलीप से मागती यह हिम्मत मे कभी दिखा न सकी।

और आज—अब मैं इसीलिए पागल हुई जा रही हू कि वह भीख मुझे मिली नही।

भगवतराव ने उस जोगडे को निकाल बाहर किया और वे ऊपर आ गए। अतीव प्रसन्नता और हर्ष मेरे चेहरे पर शायद व्यक्त हो रहे थे। उन्होने हसते हसते पूछा, "रानी साहिबा को यह गरीबखाना पसद आया या नही ?"

मैंने कहा, "एक बार मैंने कहा था न कि आप अच्छे कहानीकार बन सकते थे ? म अपने शब्द वापस लेती हू !"

"भला क्या ?'

"आपको तो कहानीकार के बजाए इजीनियर होना चाहिए था !"

'मतलब ? यह बगला कोई मैंने थोडे ही बनाया है !"

"तो किसने ?"

' राजा साहब ने विशेष रूप से इसका निर्माण करवाया था !"

"वह किसलिए ? उनका अपना विशाल प्रासाद तो पास ही मे है !"

भगवतराव दो पल स्तब्ध रहे। किन्तु जिज्ञासा चुप नही बठने दे रही थी। मन म बार-बार सवाल उठता था कि राजा साहब ने अपने लिए बनवाया यह बगला आखिर अपने सिविल सजन को क्यो दे दिया होगा ? जिज्ञासु मन बालक के समान होता है। बीसियो प्रश्न स्वय ही करता जाता है और उत्तर मिलते तक सन्तोष ही नही करता।

भगवतराव को चुप देखकर मैंने कहा, ' यहा क्या कोई रहता ही नही था ?"

' था तो !" कहकर भगवतराव फिर चुप हो गए। उनके माथे पर पडा बल मेरी नजर से बच नही सका। मानो सडक पर लगा फलक हो—'रास्ता बन्द'। फिर भी जिज्ञासा ने पूछ ही लिया, 'कौन ?"

"दीदी साहिबा रहती थी यहा !"

"दीदीसाहिबा ? यानी राजासाहब की कन्या ?"

"जी हा !"

"प्रथम पत्नी से ?"

"हा !"

"शायद अव वह ब्याही जा चुकी हैं न ?

जी ? जी नही !',

'क्या मतलब ?"

"उनका देहान्त हो चुका है !'

दहान्त हो चुका ! दो ही शब्द ! किन्तु मुझे लगा, उनका उच्चारण करते समय भगवनराव का स्वर कुछ वदल गया था। सूरज की किरण अकस्मात् आखो पर आते ही नजर म एक अजीव बेचनी आ जाती है, कुछ ऐसा ही अजीवपन भगवतराव के स्वर म—

कही दीदीसाहिवा से भगवतराव प्यार तो नही करते थे ? मन म अचानक सन्देह खडा हो गया। तुरन्त ही मुझे अपने इस सन्देह पर हसी भी आ गई। शायद मानव-मन उपन्यास की सष्टि रचने म माहिर होता है। मामूली वातो मे भी वह चाव के साथ किसी न किसी रहस्य को खोजने लगता है। वरना, दीदीसाहिवा की मत्यु की वात कहते समय भगवतराव का स्वर क्यो वदल गया था इसका अन्दाज करना कोई मुश्किल काम नही था। विवाह से पहले कभी उन्होने अभिमान के साथ मुझ स कहा था 'व्यवसाय म कभी असफलता का प्रसग नही आया है। आज रामगढ म पाव रखते ही, यहा की राजकन्या का व बचाने मे असफल रहे थे यह उन्ह स्वीकार करना पडा था। किसी ने ठीक ही तो कहा है कि पुरुष का आनन्द भी अहकार पर निभर किया करता है। मैंने अनजाने म भगवतराव के उस अहकार पर आघात किया था।

इस आघात की वदनाए उन्हे बहुत अधिक अनुभव न हो इस हेतु मैंने कहा, 'तीसरी मजिल का यह कमरा है बहुत ही सुन्दर। हार्डी के डू आन अ टावर उपन्यास की याद हो जाती है इसे दखकर।

भगवतराव ने मेरे कहन की काइ दाद नही दी। किसी न ठीक ही कहा है कि शायद पुरुष का आहत अभिमान और नारी की आहत प्रीत अपने जख्मो को जल्दी भुला नही पाती।

मैंने हाथ आगे बढाकर कहा, "इस कमरे की चावी दीजिए।'

"किसलिए ?"

"किसलिए क्या पूछ रहे हैं जनाब ? यह आपकी महारानी का कमरा होगा अब से !"

'दूसरी मजिल पर इससे भी एक अच्छा कमरा जो है !"

मैं किसी तरह उन्ह हसाना चाहती थी। मैंने कहा, "अप्सराए धरती पर नही, स्वग मे निवास किया करती हैं !"

व हसे। मुझे कितना अच्छा लगा !

हसते हसते उन्होने कहा, "शायद मायके भाग जाने का इरादा है रानीसरकार का !"

"क्या मतलब ?"

"यहा तीसरी मजिल पर तेज हवाए भन्नाती रहती हैं। सर्दी लगकर कही तुम्हें जुकाम हुआ, और तुम मायके चल दी—"

मैंने उन्हें बीच ही म रोककर कहा, "इस तरह तेज हवाओ के कारण जुकाम हो जाए इतनी नन्ही मुन्नी तो नही हू न मैं ? भली चगी पूरे इक्कीस साल की हू और मेरे पति एक बडे डॉक्टर भी तो हैं !"

पलभर उन्होने मेरी ओर देखा, जेब मे हाथ डाला और वह चाबी निकालकर मुझे दे दी। मुझे तो मानो तिजोरी की चाबी हाथ लगने जसा आनन्द हुआ ! उन्होने स्त्रीहठ पूरा किया था।

दोपहर भोजन के बाद मैंने बायजा नौकरानी को बुलवा कर उससे वह कमरा झाडबुहार कर साफ करवाने की सोची। बायजा के साथ मैं ऊपर गई और अभी ताला खोलने ही वाली थी कि बायजा ने पुकारा, "मालकीन—"

उसका स्वर भय से कपित था। चौंककर मैंने पीछे पलट कर देखा, शायद कही साप बिच्छू किन्तु कही कुछ भी नही था।

मैंने गुस्से मे कहा, "क्या बात है, बायजा ?"

"क्या आप इस कमरे म सोने जा रही हैं ?"

"हा !"

'ऐसा न करना मालकीन—आप तो नीचे ही—"

वह आगे कुछ कहने जा रही थी कि तभी मकडी-जाला आदि साफ

करने के लिए एक लम्बे बास पर बुहारी बाधे नौकर किसन ऊपर आ गया और उसने आखो से ही वायजा को चुप रहने का सकेत किया। वायजा चुप हो गई।

कमरा धीरे धीरे साफ होने लगा। किन्तु मेरे मन म बार-बार यही विचार उठ रहा था कि आखिर वायजा मुझसे क्या कहने जा रही थी ? कही इस कमरे मे कोई भूत तो नही ?

धत ! मेरी जसी इतनी पढी लिखी युवती को इस तरह की बकवास का कभी विश्वास नही करना चाहिए। विश्वास तो क्या, विचार तक नही करना चाहिए।

किन्तु क्यो भगवतराव भी इस कमरे को खुलवाना नही चाहते थे ? शायद वायजा भूतप्रेत मानती होगी, किन्तु भगवतराव तो ऐसे अनाडी नही !

जो भी हो, मैं हू दादासाहब दातार जसे प्रखर बुद्धिवादी सुधारक की बेटी। मैं किसी भूत प्रेत के झासे म नही आने वाली हू।

किन्तु ऐसा सोचते समय एक बात मुझे मालूम नही थी कि भूत भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ यादो के भूत सिर पर ऐसे सवार हो जाते हैं कि प्रतिशोध लिए बिना उतरते ही नही।

रामगढ म पहले छह मास तो ऐसे बीते, मानो एक दिन ही बीता हो।

जीवन उन दिनो सुख से भरपूर था, लबालब था। एकदम उस सामने वाले तालाब जसा। तालाब म बडी-बडी चट्टानें डूब गई थी। मैंने भी कल के दुखो और आने वाले कल की चिताओ को भुला दिया था, वतमान मे डुबो दिया था। तालाब के किनारे रगबिरगे फूल-पौधे थे। अपने जीवन म प्रणय भी उसी तरह विविध रूप धारण कर खिल रहा था।

प्रणय—नारी और पुरुष का प्यार। हलाहल की दाहकता और अमृत की मधुरता घोलकर ही प्रकृति ने प्रणय का निर्माण किया होगा।

कहते हैं समुद्र म भाटे का खिचाव बहुत जबरदस्त होता है। अत्यन्त कुशल तराक भी उसका उलटा खिचाव काट कर किनारे नही लग पाता।

यौवन म प्रणय का आकपण भी ऐसे ही प्रबल होता है।

नागन काटती है तो, कहते है तीन चूसो मे ही काटे का प्राण ले लेती है। यौवन म प्रणय का दश भी इसी तरह जबरदस्त होता है। परिचय का आकपण, सहवास की आतुरता और मिलन के बाद भी पूण सुख के अभाव मे होने वाली तडपन—

आज तो उन सारी बातो पर आश्चय होता है! क्या वह सब सच था? या केवल एक सपना? क्या भगवतराव से मुझे वाकई मे इतना प्यार था?

मेरे ना कह देने मात्र से थोडे ही कोइ मान लेगा कि प्यार नही था! अनन्त आखा से युग-युग से चली आ रही प्रणय क्रीडाओ को देखते आई इस रजनी की गवाही को ही दुनिया सच मानेगी!

सच ही कहा है कि प्रणय और मदिरा दोना का असर प्रारम्भ में तो एकसा ही होता है! शराब का नशा चढते ही पीने वाला अनापशनाप बकने लगता है। प्रणय की धुन मे मेरे मन मे भी अजीबोगरीब विचार आने लगते।

भगवतराव को प्रति दिन प्रात सात बजे राजमहल मे राजासाहब की स्वास्थ्यपरीक्षा के लिए जाना पडता। इसीलिए व साढे पाच बजे ही उठ जाते। प्रात घडी जब साढे पाच का घण्टा बजाती तो मुझे राजासाहब पर बडा क्रोध आता। मैं भगवतराव से कहती, आपके राजासाहब की यह तीसरी रानी होगी, किन्तु—' मुझे समझाने के लिए वे अपना ब्लकिट मुझे ओढा देते और कहते "अब ता जाडा नही लगता न? तुम आराम से सोई रहो! ऐसे समय मुझे लगता, काश! उत्तरी ध्रुव प्रदेश के समान अपने यहा भी रात चौबीस घण्टा की होती!

कहा जा सकता है कि ये तो बचकाने विचार हैं। जी हा, मुझे भी इससे इन्कार नही।

प्रणय के पहले उन्माद मे मतवाला बनकर मनुष्य बच्चो जसा ही आचरण करने लगता है। यदि ऐसा न होता, तो दादा के अकेले रह जाने की याद क्या मुझे कम-से-कम दिन मे एक बार भी नही आती? और दिलीप की—उसकी विपन्नता की—दरिद्रता की—

एक सु दर आलीशान बगले मे परो की शैय्या पर मै सुख की नीद सो
ी थी। वह किमी धरमशाला के खण्डहर म थका मादा धरती पर ही सो
ता होगा। सिरहाने के लिए मेरे पास मखमल के नरम तकिये थे, उसे
सी पत्थर स ही काम चलाना सभव होता होगा। मैं कीमती ऊनी आव-
णो मे लिपटी रामगढ म करवट वदलती थी। मेरा दिलीप उत्तर भारत
किमी दहात म जाडे म ठिठुरता करवटें बदलता होगा!

किन्तु उन दिनो इनमे स कोई दश्य आखो के सामने आता ही नही
ा। मानो मेरी सारी दुनिया भगवतराव म ही सिमिट कर रह गई थी।
उनके परे मुझे न तो कुछ दिखाई देता था, न कुछ सुनाई पडता था। वस
े और मैं—मैं और वे—

प्यार की दुनिया होती ही है केवल दो व्यक्ति की!

रात को सहज नीद खुलने पर भगवतराव को पास ही मे सोया पाकर
मैं सोचती, जीवन अनन्त चमत्कारो से भरा पडा है। देखो न, साल भर
पहले जिससे परिचय तक नही था, ऐसे पुरुष को नारी अपना सर्वस्व दान
कर देती है यह चमत्कार नही तो क्या है? कल दूसरा भी चमत्कार—

मैं आख खोल कर देखूगी तो पास ही म एक न्हीं सी जान मुटिठया
भीचे मेरी गोद मे लिपटी खेल रही होगी उसके न्हे नन्हे हाठ, छोटी-
छोटी आखें—वह भी एक चमत्कार—

कल्पना मात्र से तन-मन मधुर गुदगुदियो से सिहर उठता, बाग बाग
हो जाता। मैट्रिक की परीक्षा मे जगन्नाथ शकर सेठ छात्रवत्ति जीतन का
आनन्द—आगे चलकर पहली श्रेणी मे बी० ए० पास करने का आनन्द—
उस शाम भगवतराव द्वारा अचानक मेरा चुबन लिए जाने का आनन्द—
जीवन के आज तक अनुभव किए तमाम आनन्द एक पलडे मे और इस
नवकल्पना का आनन्द दूसरे मे रखकर मैं तालने लगती तो

दूसरा पलडा ही ज्यादा भारी प्रतीत होता।

इसी तरह एक दिन मैं अचानक जाग कर अपनी ही कल्पनाओ से
ी थी। सोकर अभी दो घण्टे भी नही बीते थे। किन्तु
। सपने मे एक न्हा सा प्यारा-प्यारा शिशु देखा—
मैं आग वढी, तभी वह बच्चा अदृश्य हो गया।

चौंककर मैं जाग गई ।

तभी घडी ने बारह के घण्टे बजाए। भगवतराव भी अचानक जाग पडे। मैं कुछ बोलने ही वाली थी कि वे झट से बिस्तर पर उठ बठे। उन्होंने फुर्ती के साथ सिरहाने के पास बिजली का बटन दबाया। तभी कमरे म बडी बत्ती जल गई। उन्ह पता नही था कि मैं भी जाग गई हू, किन्तु उनका चेहरा देखकर मैं चकित रह गई। लगता था व किसी चीज से डर गए हैं।

बौराई नजर से उन्होने कमरे मे चारो ओर देख लिया। फिर वे आहिस्ता उठकर दरवाजे के पास गए। कुछ आहट पाने की कोशिश की और फिर वापस आ गए। काफी देर तक वे बिस्तर पर छटपटाते रहे। मैं सोच रही थी—आखिर इन्हे किस बात से इतना डर लगता है ? चोरो स ?

उन्हें इसी तरह रात-ब-रात अचानक जाग उठते मैंने दो-तीन बार देखा। किन्तु माजरा क्या है, उन्ह पूछ न सकी। फिर भी इस कमरे म लगा ताला—उन्होने अपने ही पास रखी उसकी चाबी—चाबी दने की कुछ अनिच्छा—आपद बातें मन मे मडराती और मन बार-बार आशकित हो उठता—इस कमरे मे कोई भूत प्रेत तो नही ?

शीघ्र ही मैंने इन बातो को भुला दिया।

हमारा विवाह हुए छह मास बीत गए थे। एक दिन के लिए भी हम दोनो एक दूसरे से दूर नही गए थे। लगता था मानो एक दूसरे के सहवास म हमने बरसो बिता दिए हैं।

किन्तु—

राजासाहब का दिल्ली मे कुछ काम निकल आया। सभवत किसी को गोद लेने से सबधित था। उनके स्वास्थ्य की देखभाल के लिए भगवतराव को भी उनके साथ जाना था, महीना पद्रह दिन का वह विरह मुझे युगो लम्बा लगने लगा। उसकी कल्पना मात्र स आखें छलछलाने लगी। भगवतराव ने सुझाव रखा कि जब तक वे दिल्ली से लौट नही आते, मैं दादा स मिलकर आ जाऊ। बात मुझे भी जची। किन्तु—

उस रात नीद हराम हो गई। भगवतराव को गहरी नीद सोते देखकर मुझे बडा गुस्सा आ गया। पुरुष का दिल पत्थर समान होता है। विरह

की धूप की उन पर कोई आच नही आती। नारी का मन फूलो जसा होता है। विरह की आच लगते ही भुलस-सा जाता है।

शायद दो बजे के आसपास मेरी आख लग गई। मैं जागी तब पता नही क्या समय हो रहा था! किन्तु मन मे एक ही विचार उठा कि अब महीना भर भगवतराव के दशन होने वाले नही हैं। मैने उन्हे आखो म भर लेना चाहा, जब तक कि वे सो रहे थे।

धीरे से उठकर मैं उनको निहारने लगी। खिडकी से चादनी भीतर आ रही थी। उस चादनी मे उनका चेहरा—

मुझे भगवतराव का चेहरा दिखाई दिया ही नही। वहा दिलीप दिखाई देने लगा।

वह रात—दिलीप इसी तरह शाति के साथ सोया हुआ था। चादनी उसके चेहरे पर बरस रही थी। मैं उसके पास गई थी और झुक कर—

दिलीप का चुबन लेने के लिए उसके कमरे मे आधी रात पहुची सुलू मैं ही थी या कोई दूसरी? कहते है, आदमी के शरीर का प्रत्येक कण हर सात साल बाद आमूल चूल बदल जाता है। किन्तु उसका मन—वह तो प्रति क्षण प्रति पल बदलता रहता है! यही देखो न, दिलीप को मैंने कितनी जल्दी भुला दिया। उसको दी हुई वह नमक की पुडिया मैंने रामगढ़ आते समय कही फेंकफाक ता नही दी?

मन का चन जाता रहा।

सदूक खोलकर देखे बिना अब फिर से नीद आना असभव था। सिरहान की बडी बत्ती जलाती तो भगवतराव की नीद टूट जाती!

बिना बत्ती जलाए ही मैं उठी, दबे पाव अपनी सदूक के पास पहुच गइ और बिना कोई आवाज किए उस खोला। भीतर की वस्तुओ को टटोलकर देखने लगी। वह छोटी-सी तस्वीर—मा की तस्वीर स्मरणपूवक मैं ले आई थी अपने साथ। दूसरी कुछ बडी तस्वीर मा और दादा की थी। सुन्दर नक्काशीवाली फ्रेम म लगाकर अपनी मज पर रखन का इरादा था मेरा!

टटोलते-टटोलते कुछ पत्रो पर हाथ पडा। जेल जात समय दिलीप ने मुझे एक पत्र लिखा था न? सभवत वह भी हिफाजत स रखे इन पत्रो म

कही अवश्य होगा ! उस पत्र को निकालकर पढने का प्रबल मोह हुआ। किन्तु बत्ती कैसे जलाती ? भगवतराव को तडके ही दिल्ली के लिए रवाना होना था। यात्रा लम्बी थी और कष्टदायक भी। उनकी नीद तोडने से—

पत्र पढने का मोह सवरण कर मैं नमक की उस पुडिया को खोजने लगी।

तभी—

सदूक का खोल रखा ढकना अचानक नीचे आ गिरा। शायद मेरा हाथ उसे लग गया था। मेरी दाइ कलाइ मे जोरा का दद उठा—

फिर भी मैं चीखी नही ! मेरी चिल्लाहट सुनकर भगवतराव जा जाग जाते !

यद्यपि मैं चिल्लायी नही, पर वही हुआ जो होना था।

सिरहाने की बत्ती तुरन्त जल उठी। भर्राए स्वर मे भगवतराव न पूछा, "कौन है ?"

कमरे मे सवत्र फैली रोशनी म भगवतराव का चेहरा बहुत ही डरावना लग रहा था। पता नही उनका हमेशा का हसोड चेहरा कहा गायब हो गया था ? लेकिन किस बात का डर उनके मन म जमकर बठा है ? चोरो का ?

नही !

मेरे तरफ दखते ही उनका चेहरा सामान्य हो गया। उन्होने हसकर कहा, "अच्छा तो देवी जी, आप है ! इतनी बेरात क्या पडयत्र रचा जा रहा है ?"

इसम सन्देह नही कि झूठ बोलने की होड लगे, तो पहला नबर नारी का ही आएगा !

जरा भी सकपकाए बिना मैंने तुरत उनके पास जाकर कहा, 'बटन खोज रही थी !"

'क्या मतलब ? यानी कल मेरे दिल्ली जाने के बाद आप कही शर्ट पहनना तो शुरू नही करने जा रही हैं ?'

'चलिए भी ! अजी जनाब, खास आपके लिए बटन ल आयी हू मैं

परसा ! '

' तो क्या शट म उन्हे लगाने का यही मुहूरत था—आधी रात बीते सात घडी पच्चीस पल—"

"मजाक करना कोई आपसे सीखे ! लगता है पुरुषो को मजाक छठी के दूध म ही पिलाया जाता है, है न ?'

"और नारी को छठी के दूध मे क्या पिलाया जाता है बताऊँ ?'

"जी !"

"सनक !"

मुह फुलाकर मैंने गुस्से का नाटक किया। किन्तु उनके लिए यह कोई नई बात नही थी।

उन्होन हसकर कहा, ' नाराज क्यो होती हो ? एक सनक मात्र से किसी पर अपनी जान न्योछावर करना केवल नारी ही जानती है। वरना यही देखो न, पति का शट क्या चीज है, उसके बटनो का भी क्या महत्त्व है। आधी रात बीते तुम उन्हें खोजती हो, यह सब सनक नही तो और क्या है ? नारी कितनी ही पढी लिखी हो जाए फिर भी—"

'उनकी नारी सुलभ भावनाएँ जलकर खाक नही हो जाती !" मैंने हसकर उनका वाक्य पूरा किया। "दिल्ली मे भी आपको मेरी याद बराबर आती रहे इसी हेतु मैं वे बटन—'

देखो भई, हम तो दिल्ली मे आपके इन जादुई बटनो का उपयोग करने स रहे !"

"क्यो ?"

"देखो बात यो है। बटन को हाथ लगते ही हम आपकी याद आएगी। और हम लगातार इस तरह आपको याद करने लग तो इधर आप हिचकिया ले लेकर हैरान हो जाएगी ! इसलिए —"

आगे कुछ भी न बोलकर उन्होने झट स बत्ती बुझा दी।

मैं वापस अपने बिस्तर पर आ लेट गइ। भगवतराव मुझस लगातार कई बाते करते रहे। मैं केवल 'हु', 'उहू' करती रही। मन बेचन था। तड़प तड़प उठता था—दिलीप की दी हुई वह नमक की पुडिया सदूक मे है भी ?

दूसरे दिन प्रात भगवतराव दिल्ली चले गए।

मेरी अवस्था कुछ ऐसी हो गई जसी मा की उगली पकड कर भीड-भाड मे चल रहे बालक की उगली अचानक छूट जाने से होती है। क्षण-भर तो बगला एकदम वीरान सा लगा।

तभी नमक की उस पुडिया कि फिर याद आ गयी। मैं लगभग दौडती हुई फिर ऊपर वाले कमरे म आ गई। बालक जसी उत्सुकता लिए सदूक खोला। एकदम नीचे तह के पास वह पुडिया सुरक्षित थी। इतनी खुशियां हुई उसे देखकर! मैं दिलीप के बारे मे ही सोचती बठी।

यकायक याद आया, दिलीप के पिताजी इसी रामगढ म पुलिस इस्पेक्टर हैं। हो सकता है दरोगा साहब को अपने बेटे का पता होगा। उनसे पूछताछ की जाय, तो इस समय दिलीप कहा है, इसका भी पता मिल सकता है।

नौकर से मैंने पूछा तो मालूम हुआ कि सरदेसाई दरोगा साहब छह माह पूव सिधार गए।

दिलीप अपनी मा के प्रति कितने अभिमान और भक्ति भाव से बोला करता था। वेचारी अब कहा होगी?

पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वे अपने बडे दामाद के साथ रहती हैं, जो यहा के रईस महाजन हैं।

मैं उनसे मिलने गई। एकदम अस्थिपजर हो चुकी थी। उन्होंने जब कहा कि 'एक बार मेरे दिनू से भेंट हो जाए, तो सुख से प्राण तज दूगी" मेरी भी आखें भर आई। फिर उन्होने ही स्वयम् कहा, दिनू को लगी शनि की साढेसाती अब समाप्त होने ही वाली है! अब वह लौटे बिना नही रहेगा।' उनके इस भोलेपन पर मुझे मन ही मन हसी आ गई। किन्तु उनके सतोष के लिए मैंने भी कहा, मेरा भी यही ख्याल है!"

दिनू के लिए उन्होने सकट मोचन सोमवार का व्रत रखना शुरू किया था। अपने गाव के दवता की मानता भी कबूल की थी। मैं चाय ले रही थी तो वे सामने टगी भगवान की तस्वीर की ओर हाथ जोडकर आखें मूद कर समथ रामदास स्वामी का श्लोक कहन लगी—

छिन छिन पछतावे म जलता किश्ती पार उतारो
दीनदयाला परम कृपाला माया मोह उबारो
अतिचचल मन पुनि पुनि भागै वारि वारि मैं हारो
हो शरण तिहारी दौरि दौरि प्रभु ! लीजै दास उधारो

शाम को महिलाओ के हमारे क्लब मे जाते तक दिलीप की मा की वह मूर्ति रह रहकर आखा के सामने आती थी। तपो साधना म लीन ऋषि का शरीर शायद सुदर नही होता, फिर भी उसके चेहरे पर जो तेज की आभा दमकती है उसे देख कर देखने वाला चौंधे बिना नही पाता। मेरा हाल वसा ही हुआ था।

क्लब मे पहुचने के बाद मे वहा की हर नारी की तुलना दिलीप की मा से करके देखने लगी। रग बिरगी बिजली की रोशनी मे दमकते किसी थिएटर की अपेक्षा एक ही नदा दीप की प्रशात रोशनी मे आलोकित मामूली देवालय भी अपनी विशेषता से मन को प्रभावित करता है, वसा ही इस तुलना के बाद प्रतीत हुआ।

हमारे क्लब म बडे अफसरा, व्यापारियो, इजीनियरो, महाजनो, जमीदारो प्रख्यात वकीलो और डाक्टरो की पत्निया ही आया करती थी। मैं भी पिछले छह महिनो म कभी कभार वहा जाने लगी थी। और इस तरह कभी भूली भटकी वहा चली भी जाती तो भी दिया बत्ती के समय के बाद रमी खेलने मे मेरा मन नही रमता था। फिर कोई मजाक छेडकर कहती, "ताश का बादशाह नही, सुलोचनाजी को तो सच्चा बादशाह पसद है—'

प्रौढ इजीनियररानी कहती, "नई नवेली का नयापन है यह। कुछ समय बाद दखना, यही सुलोचना जी क्लब से लौटने का नाम नही लेंगी !'

यह सुनकर मै मन ही मन सोचती, "गहस्थी क्या वाकइ म ऐसी है ? नए खिलौने के प्रति बच्चे को जितना लगाव होता है, क्या उतना ही गहस्थी के प्रति हम हाता है ?"

नही !

तो ये प्रौढाए, पद्रह बीस साल गहस्थी चला लेने के बाद ऐसा क्यो बोलती हैं ? किस बात से इनका मन उचट गया है ? यू देखा जाए, तो

उन्‍हें किस बात की कमी है ? साक्षात् अन्नपूर्णा हाथ जोड़ सामने खड़ी है। लक्ष्मी चौबीसों घंटे पंखा झलती है। फिर भी ये महिलाएं असंतुष्ट क्यों हैं ? संतापी क्यों नहीं हैं ?

भगवतराव के दिल्ली से लौटने तक शाम को जल्दी घर लौटने की मुझे कोई जल्दी नहीं थी। मैं देर तक क्लब में बैठने लगी। पहले कुछ दिन भगवतराव का नाम ले लेकर ये महिलाएं मुझसे मसखरी करती थीं। उस मजाक मसखरी में भगवतराव का गुणगान होता था इसलिए सुनने में बड़ा सुख मिलता था। इस गुणगान में सुनने को मिलता कि कैसे जमाने भर दरिद्रता में पैदा होने पर भी भगवतराव ने अपनी शिक्षा पूरी की, राजासाहब के कृपापात्र बनकर कैसे वे उच्च शिक्षा के लिए विदेश हो आए शल्यचिकित्सा में इनका सानी रखने वाले डाक्टर स्वयं बंबई जैसे महानगर में भी कितने कम हैं, गरीब छात्रों की सहायता करने में भी वे कितनी उदारता बरतते हैं, आदि आदि। ये सब बातें सुनकर मुझे सुख की गुदगुदी-सी होती। लगता और सुनूं, सुनती ही जाऊं। रिमझिम बरखा की फुहारों में बस नहाते ही रहने में जो मजा आता है, वही मजा सहेलियों से पति के नाम को लेकर की जाने वाली ऐसी मधुर मसखरी सुनने में मुझे आता। किसी साथ समारोह में हाथों में मले गए खुशबूदार इत्र की खुशबू रात में बिस्तर पर लेट जाने पर भी आती रहती है। क्लब की सखियों द्वारा छेड़छाड़ की मजाक में कही गई इन बातों की याद रात में उसी तरह मुझे आ जाती। मन कहता, सच कितनी भाग्यशालिनी हूं मैं !

रामगढ़ में सबसे बड़ी विदुषी मैं थी ! मेरे पास काफी फुरसत भी थी इन दिनों ! काफी दिनों से लड़कियों के हाई स्कूल की स्कूल के किसी समारोह में मुख्याध्यापिका एक बार स्कूल में आने के लिए मुझसे अनुरोध कर रही थी। इसी एक दिन मैं हाई स्कूल गई। बहुत दिनों बाद छोटी छोटी बच्चियों को स्कूल में पढ़ते देखकर बड़ा संतोष पाया।

शायद अपने अहंकार के कारण हो, मैंने मैट्रिक की कक्षा की पढ़ाई की परीक्षा लेने का निश्चय किया ! क्यों न हो ! विवाह के समय मैं कालिज में फेलो जो थी ! तो चौथी पांचवीं कक्षाओं की छात्राओं की परीक्षा लेने में क्या धरा था ?—

मैं मैट्रिक की कक्षा मे गई। सस्कृत पढाया जा रहा था। किताब उठा कर मैंन एक लडकी से आगे का वाक्य पढने के लिए कहा।

वह पढने लगी—"अल महीपाल तव श्रमेण"

उम लडकी की आवाज कुछ दिलीप जसी थी।

रघुवश के दूसरे सर्ग के एक श्लोक का वह प्रारभ उसके स्वर मे सुनते ही—

विगत दस वप का सारा घटनाचक्र आखो के सामने एक बार फिर घूम गया। बरसात म दीपक के पास पतगो की भीड जमा हो जाती है, मन की अवस्था कुछ वसी ही हो गई। यही सर्ग पढते समय ही तो मैंने उसे दिलीप नाम द दिया था! आखिर क्यो?

मैं भली भाति जानती थी कि वह एक गरीब घर का लडका है। फिर क्यो मैंन उसे एक राजा का नाम दे दिया था?

इसीलिए न कि उस राजा की रानी का नाम सुलोचना था? अतएव—

नही! *यह भी कोई बात हुइ? उस रानी का नाम सुलोचना कहा था?* उमका नाम तो सुदक्षिणा था! शायद मरे नामकरण के समय दादा ने भी मेरा नाम सुदक्षिणा ही रखना चाहा होगा। रघुवश का वह दूसरा सग उन्ह अत्यत प्रिय ह।

किन्तु तभी मा न कहा होगा, "य कहा का तिकडम नाम लाए हो! ठीक स बिटिया को पुकारा भी तो नही जा पाएगा इससे! और फिर हमारा बिटिया कोइ दक्षिणा थोडे ही है! और हम उस किसी पुरोहित के घर व्याहन वाल भी तो नही!"

इसीलिए दादा ने रघुवश के उस सग की रानी के नाम जसा लगने वाला यह सुलाचना नाम रख दिया होगा मेरा।

नही! मरा सच्चा नाम सलोचना नही, सुदक्षिणा ही है।

रानी का नाम, वही मेरा नाम और राजा का नाम, वही दिलीप का नाम!

उस कक्षा म फिर अधिक देर रुकना मेरे लिए असभव हो गया। मैं घर चली आइ।

और शाम को क्लब के बजाय मैं दिलीप की मा के पास गई।

उसकी बूढ़ी मा बेचारी पूजा घर म भगवान के सामने नीराजन जला कर गद्गद स्वर म कह रही थी—

छिन छिन पछतावे म जलता किश्ती पार उतारो
दीनदयाला परम कृपाला माया मोह उबारो
अतिचचल मन पुनि पुनि भागे वारि वारि मैं हारो
हौं शरण तिहारी दौरि दौरि प्रभु लीजै दास उधारो

मा के मुह स अत्यत अ र्त स्वर म गाया गया वह भजन सुनकर मन पानी पानी हो गया। दादा की कठोर बुद्धिनिष्ठा के सस्कार मुझ पर हुए थे। उसी तर्कनिष्ठ वातावरण म मैं पली थी। "ईश्वर की सकल्पना मात्र एक भ्रम है' इस विषय पर घण्टा भर व्याख्यान भी दे सकती था। किन्तु दिलीप की वह माताजी! मानो दुखिया ससार की सजीव प्रतिमा बनी थी। उसके कण्ठ से निकला वह भजन एक करुण गभीर अथ लिए था—प्राणि मात्र का आक्रोश था वह।

"अतिचचल मन पुनि-पुनि भागे वारि वारि मैं हारो!" इस एक पक्ति म जीवन का कितना कठोर, कटु सत्य समाया है?

करुणाष्टक समाप्त होने पर माताजी मुझसे बोलने लगी। इस बात का यकीन कर लने के बाद कि आसपास कोई नही है, उन्होने धीरे स मेरे कान मे कहा, 'दिनू आने वाला है!"

"कब?" मैं जोर से पूछ बैठी।

बुढिया ने मेरे मुह पर हाथ रखा। फिर बहुत ही हल्की आवाज म बोली 'दीवारा के भी कान होते हैं बेटी!'

मैं हैरान थी, दिलीप के आने की सूचना उसकी बहन के घर म उसकी मा खुले आम नही दे सकती थी? क्या?

मैंने भी दबी आवाज म पूछा, 'चिट्ठी आई है?

'नही!'

तो?"

किसी के हाथ स देसा आया है' कहता है काशी मे उससे भेट हुई थी!'

"कव आ रहा है ?"

"कव ? राम जाने !" कहते हुए माताजी न सामने वाली तस्वीर को हाथ जोडे।

मैं अपने आचरण पर उस रात आश्चय कर रही थी। भगवतराव क बजाय मैं दिलीप के बारे मे ही अधिक विचार कर रही थी। वह कब आएगा ? अब कैसा लगता होगा ? कैसा दीखता होगा ? मेरे विवाह की वात सुनकर उसे बुरा लगेगा या—

मन ही मन कुछ ऐसी इच्छा भी कर रही थी कि उसे बुरा तो लग किन्तु बहुत ज्यादा नही ! मैंने तय कर लिया कि अब रोज उसकी मा स मिलने जाऊगी।

किन्तु—

'मेरे मन कुछ और है, विधना के कछु और' इस दोहे को मैंने अनुभव किया।

दूसरे ही दिन दादा का पत्र आया। उनका स्वास्थ्य फिर खराव हा गया था। मैं तुरत रामगढ से निकली।

मर आने पर दादा का स्वास्थ्य धीरे धीरे सुधरने लगा। वस उनकी बीमारी कुछ मानसिक भी थी। मा के चल बसने के वाद मैं यद्यपि छोटी थी, घर म वोलने चालन के लिए मैं तो थी। किन्तु मेरे विवाह के बाद गत छह्-सात महीनो मे घर सूना हो गया था, मानो काट खाने को दौडता हो ! मैं पहुची उस दिन तो वे हसते हसत इतनी बातें करन लगे कि वस बालते ही गए—

सुलू, एक बार मैंने एक लेख पढा था ! लेखक ने प्रश्न किया था कि आपको यदि किसी सुनसान और वीराने द्वीप पर छह मास रहना पड जाए, तो आप अपने साथ कौन सी किताबें ले जाना पसद करेंग ? उस प्रश्न के उत्तर म मैंन अपने मन मे किताबो की एक सूची भी तैयार कर ली थी। उस सूची मे उत्तररामचरित था, तुकाराम की अभग-गाया थी, आगरकरजी के निवध थे, मेरी पसद की सारी किताबें थी। अभी कल-परसो तक मुझे लगता रहा कि मेरी वह सूची और लेखक के उस प्रश्न का मेरा उत्तर एकदम सही है। किन्तु बटी, तुम ससुराल गई और तुम्ह

क्या बताऊ ? उस रात लाख कोशिशें करने पर भी मुझे नींद नहीं आई। मन बचन हो उठा। मैंने तुकाराम की गाथा खोलकर अभग पढ़ना शुरू किया। 'क्या चली ससुराल' वाला अभग पढते ही मुझे तुकाराम पर बडा क्रोध आ गया। लडकी के दुख की कल्पना तुकाराम कर सके। किन्तु लडकी के माता पिता का दुख उससे भी बढा होता है, इसका व अनुभव नही कर सके।

तुकाराम गाथा एक ओर रख कर मैंने उत्तररामचरित उठाया। किन्तु उसे खोलते ही मन का दुख बढा। लगातार मन म एक ही एक विचार मडराता रहा, 'काश ! ममता को वियोग का अभिशाप ही न मिला होता !'

फिर तो किसी किताब को हाथ लगाने को भी मन नही करता था। रात भर मैं किसी नरपिशाच की भाँति घर म सवत्र घूमता रहा ! यह सुलू की मनचाही कुर्सी, यह उसकी मनपसद खिडकी, कहते-कहते मैं उस स्थान पर कही देर तक खडा रहता फिर भी मन का चैन नही आता। अत म सितार लेकर मैं तुम्हार कमरे म गया और तुम्हारी वह प्रिय कविता—'पहली यह क्या कोई बूझेगा ?' बजाता रहा। तब जाकर कही मन का अच्छा लगा ! तुम्हारी मा पुत्र के लिए ईश्वर की मानता करती थी तो मैं उसकी खिल्ली उडाया करता था, बेटी ! किन्तु आज वाकई म मुझे लगता है—अवश्य ही मेरे एक पुत्र होना चाहिए था। कम से कम तू ही लडका बन जाती तो अच्छा होता !"

हटिए भी !" कहकर मैंने दादा की बात नारी सुलभ भावभगिमा से काट तो दी। किन्तु उनके एकाकीपन का दुख देखकर मुझे भी लगा कि—अपना एक भाई अवश्य होना चाहिए था।

शायद यह जानकर कि मैं बहुत थोडे दिन वहा रहने वाली हू, दादा लगातार मुझसे बातें करते। तबीयत फिर खराब हो जाए, तो फौरन रामगढ चले आइएगा !' ऐसा जब मैंने एक बार उनसे कहा, तो उन्होंने कहा, भई, इतने म तो हम आ नही सकते !"

क्यो ?"

"रामगढ मे मेरे ठहरने का प्रबन्ध कहा है ?"

मैं समझी नहीं ? मैं क्या वहां किसी सराय म रहती हू ? एक अच्छा खासा बगला है वहा मेरा।"

सो तो ठीक ! किन्तु मैं तुम्हारे यहा अन्नग्रहण कस कर सकती हू ?

मैं तमतमा कर उनकी ओर देखने लगी। मुझे लगा अपनी धमभ्रष्ट कन्या से एक सनातन कमकाण्डी पिता जिस तरह बातें करता है वस ही दादा मुझस कर रहे हैं ! उनके प्रश्न म वही भनक थी।

दादा ने हस कर कहा, "हमारे धमशास्त्रों म लिखा है, जब तक धेवते का जन्म नहीं होता, लडकी के घर पिता का जाना भी नहीं चाहिए।"

दादा अपने आपको बुद्धिवादी कहलाते थे। अतएव उनके द्वारा धम शास्त्रों का इस तरह आधार लिया जाने पर वास्तव म मुझे हसी आनी चाहिए थी। किन्तु मैं हसी नहीं। उनकी ऐसी बातों से मेरा तन मन रोमाचित हो गया।

घर म अकेली रहने पर पुरानी यादों म खो जाने म मुझे बडा आनद आता। मा इस कमरे म बीमार थी—अतिम दिन उसने मुझे सीने से लगा कर मेरे चेहरे पर ममता का हाथ फेरा था—मा की मत्यु हो जाने पर मैं उस परले कमरे म रोते-रोते सो गई थी। फिर दिलीप मेरे पास आया, उसने मुझे सात्वना दी, मेरी आँखें पोछी—

दिलीप की याद इस तरह हो आते ही मैं फिर न जाने कितनी देर उसी के बारे मे सोचती रहती। इस घर म उसने मेरे साथ चार साल गुजारे थे। उन चार वर्षों म हम कितनी ही बार रूठे-हसे थे, गाए-नाचे थे, लिखते-पढते थे, यही तो दिनू ने व्रत रखा था आदि घटनाए आँखों के सामने खडी हो जातीं। *भगत सिंह को जिस दिन फासी दिया गया उस दिन की* दिलीप की शक्ल सूरत—

रूमाल म रखा केवडे का पत्ता निकाल लेने पर भी रूमाल मे केवडे की मधुर खुशबू आती ही रहती है। दिलीप की स्मतिया मेरे मन म ठीक वैसी ही सुगध फलाती थी।

मैं सोचती, क्या पता, दिलीप इतने मे रामगढ आकर अपनी मा से मिलकर चला भी गया होगा। शायद विधि का लिखा यही है कि उमसे मेरी भेंट होते-होते चूक जाय। वरना उत्तर भारत मे जिस स्टेशन पर वह मुझे

अचानक दिखाई दिया वहा हमारी गाडी थोडी देर और न रुकती ?

किन्तु भगवतराव के दिल्ली से वापस रामगढ लौट आने का समाचार मिलते ही मैंने दिलीप को भुला भी दिया। मेरी आखो के सामने विगत छह सात महीनो का सुखी जीवन खडा हो गया। बगले की तीसरी मजिल का मेरा — नही, हमारा — वह कमरा, उसमे एकान्त म की हुई हम दोनो की मीठी मीठी बातें —

मैंन तुरत रामगढ जाने की तैयारी शुरू कर दी और किस गाडी से आ रही हू इसकी सूचना भी तार द्वारा भगवतराव को दे दी।

मेरी इस जल्दबाजी का दादा मजाक उडाए जा रहे थे। जवाबी मसखरी मे मैंने कहा, ' दादा, आपको अपनी सितार अब बदलनी चाहिए। दूसरी क्यो नही ले लेते ?"

दादा ने कहा, "वही तो मैं भी कह रहा हू !"

' मैं भेज दू तो कैसा रहे ?"

' अभी मत भेजना !'

' क्यो ? '

"अरी, धैवते की शरारतो मे उसके तार टूट जाए तो ?" दादा की आगे की बात सुनने को मैं वहा ठहरी ही नही।

मैं सोच रही थी कि भगवतराव मेरी अगवानी के लिए स्टेशन पर अवश्य उपस्थित रहगे। किन्तु उन्होने केवल शोफर को गाडी लेकर भेज दिया था।

मेरा कलेजा धक से रह गया ! कही वे बीमार तो नही ?

"साहब कहा हैं ?" मैंने शोफर से पूछा।

"जेल का मुलाहिजा करने गए हैं।" उसने उत्तर दिया।

मुझे मालूम था कि जेल पर देख रेख का काम भी उन्ही के जिम्मे है। किन्तु इतने दिनो बाद मैं घर लौट रही थी। ऐसे समय उनका जेल की ओर जाना अपशकुन-सा लगा। काश ! मेरी भेंट की खुशी मे वे अपना काम जरा तो भुलाते ! शायद मर्दों को प्यार करना आता ही नही।

बगले पर आने के बाद मैंने चाय ली। यह भी देख लिया कि नौकर ने तीसरी मजिल का मेरा कमरा ठीक से साफ किया है या नही। वह ट्रक

जिम व दिल्ली ले गए थे, कमरे म एककोने मे पडा था। उसम ताला-वाला कुछ भी नहीं था। मैंने यू ही खोलकर देखा। ऊपर ही कुछ नई अंग्रेजी किताबें थी। ताजा खिले फूला को देखकर कौन युवती है जो चुप बैठी रहगी ? उनमे से एकाध को तोड कर जूडे म लगाने का मोह उसे होता ही है। नई किताबो को देखते ही आदमी की अवस्था वैसी ही होती है। मै उन किताबा को उलट-पलटकर देखन लगी।

खुफिया पुलिस की कहानिया, जासूसी उपन्यास, अजीब दास्तानें भगवतराव को शायद इसी तरह की पुस्तको से लगाव था, यह तो मैं जानती थी। कि तु उस तरह की एकदम दस बीस किताबें देखकर अच्छा नही लगा। ढेर सारा सबजा सूघने पर उसकी तेज खुशबू से कुछ नफरत सी हो जाया करती है। कुछ वैसा ही—

अतिम पुस्तक थी—भूतो की कहानिया। अपनी हसी को मैं रोक न सकी। इतने देश विदेश घूम आए भगवतराव बच्चा की भाति भूतप्रेत की कहानियो मे रुचि रखते हैं ? उस किताब मे कई स्थानो पर उ होने जो निशान लगाए थे उ ह देखने पर तो मैं हसते-हसते लोटपोट हो गई।

बाहर साफ सुहानी धूप फल गई थी। भगवतराव के उन भूता का ट्रक म फेंक कर मैं बाहर बगीचे म गई। वसत बहार खिली थी। मेरा मन भी खिल उठा। फूल देखकर लगता, जीवन की बगिया भी इसी तरह खिली है। सामने के जलाशय पर सूरज की थिरकती किरणा का देखकर लगता जलाशय मेरे मन का प्रतिबिंब है। मेरा मन भी उसी तरह आनन्दमग्न था और उस पर प्यार उसी तरह थिरक रहा था।

एक घण्टा बीत चुका था। भगवतराव अब भी वापस नहीं आए थे। अब तो उन पर बडा गुस्सा आ रहा था। पीहर म [illegible] उनकी प्रतीक्षा मे बगले के द्वार पर खडी है, और इधर [illegible] को जन का मुलाहिजा करन से फुरसत नही मिल पा रही है। है न [illegible]? कुछ भी कहिए, भगवतराव मे और [illegible], [illegible] पास कहीं भी फटकता नही।

बताबी से मैं बार-बार [illegible] रही थी। किन्तु [illegible] नही आए।

यकायक एक कल्पना मन मे आई, स्वय ही जेल चली चलती जेलर ने तीन चार बार तो मुझे देखा है, मना नही करेगा। जेल की जाते-जाते भगवतराव स क्या कुछ कहना है, मैं मन ही मन सोचनी र "यहा जेल मे आप क्यो आइ ?" पूछेगे तो कह दूगी, यह देखन हू कि आप एक डाक्टर की हैसियत से जेल आए थे या देशभक्त की।

किन्तु ऐसा कुछ कहने सुनने का मौका ही नही आया।

जेलर तुरन्त ही मुझे उस कमरे की ओर ल गया जहा भगवत बठे थे। वाहर खडे खडे ही मैं सुनने लगी। शायद वे किसी कदी म र कर रहे थे। भगवतराव कह रहे थे।

'इस भख-हडताल मे चोर भी शामिल हो गए हैं।"

'चोर भी आदमी ही तो होते है, अच्छे भरपेट खाने की उन्ह आ श्यकता होती है।" कदी उत्तर दे रहा था। आवाज जानी पहिचानी लगी।

'किन्तु चोर अपराधी होता है।"

"इन्सान शौकिया अपराधी नही बना करता। एक जून रोटी भी ज नसीब नही होती तभी अधिकतर लोग चोरी किया करते हैं।"

यह आवाज—

मैंने लपककर आगे बढकर देखा।

वह दिलीप ही था!,

सूखकर काटा हो गया था, दाढी कुछ बढी हुई थी, पाँवो म बेडिया थी—किन्तु मैंने उसे तुरन्त पहिचान लिया।

उसने मेरी ओर देखा। वह मुस्कराया।

मुझे लगा, मैं जिस दीवार के सहारे खडी हू, वह अचानक गोल गोल चकराती जा रही है। मैं धम्म से नीचे बठ गई।

मेरी चूडियो की खनक सुनकर शायद भगवतराव ने मेरी आर दखा। 'सुलू' यह उनका आश्चर्योदगार मुझ सुनाई दिया। कुछ देर बाद मैंने आखें खोली। बेड़ियो की खनखनाहट सुनाइ दे र ही थी।

किन्तु दिलीप ?

वह जा चुका था।

उपन्यास लिखने के लिए बैठी। जो प्रसग उल्टे सीधे, जैसे याद आए, लिख डाले हैं। किन्तु तैलचित्र की सुन्दरता दूर से ही अधिक अच्छी दिखाई देती है। स्मृतियो का भी हाल कुछ वैसा ही है। दिलीप को जेल म देखने के बाद की सारी घटनाए यू तो घटी है पिछले दो तीन वष मे, किन्तु लगता है जमे अभी कल परसो की ही बातें है। उन सभी स्मृतियो को शब्दबद्ध करने का साहस जुटा नही पाती।

कलम इस तरह अटक अटक कर चलने लगी है, जसे छोटा बच्चा बोलना प्रारम्भ करते समय एक एक शब्द बोलता है।

कहने को तो उस दिन जेल म उसे केवल देखा था।

किन्तु अब लगता है, वह मात्र नजरें मिलाना नही था, परस्पर क प्रति आस लगाए बैठी दो आत्माओ का मिलन था।

लौटत समय मेरा हाथ भगवतराव के हाथ मे था। किन्तु मन ? वह तो कारा की पथरीली दीवारो को तोड फोड कर एक कोठरी म दिलीप के पास पहुच कर उससे कह रहा था, "पगले, बैरागी बनकर ही क्यो न हो, बाहर तुम स्वतन्त्र थे ! इस जेल मे सडने के लिए क्यो आ गए हो ? कसे आ पहुचे हो यहा ? और इस भख हडताल के झमेले मे क्यो पडे हो ?"

दोपहर हम दोनो भोजन करने बठे। मैंने कौर उठाया। शुद्ध घी की खुशबू नाक मे अनुभव तो हुई, किन्तु कौर वसा-का वसा धरा रह गया।

कौर हाथ ही मे रुका देखकर भगवतराव न पूछा, "लगता है, शायद दादासाहब की याद आ गयी। है न ?"

मैंने सिर हिलाकर हा कह दिया। किन्तु मेरी आखो के सामने जेल मे बद दिलीप खडा था। भूख हडताल का तीसरा दिन चल रहा था। इन दो-तीन दिनो म दिलीप ने अन्न के कण को स्पश भी नही किया होगा। और इधर मैं सुग्रास भाजन करने बैठी थी !

दोपहर तक आहिस्ता आहिस्ता मैंने भगवतराव से सारी हकीकत जान ली। दिलीप के नाम रियासत का पहले का वारट था, किन्तु उस पर अमल इसलिए नही हो पाया था क्योकि दिलीप उत्तर भारत म कही भटकता फिर रहा था। काशी गए किसी आदमी से उसे मालूम हुआ कि उसके

पिता का देहान्त हो चुका है। इसीलिए मा से मिलने वह यहा आया। दो-तीन दिन रहकर फिर चले जाने वाला था, किन्तु उसके बहन की लडकी गाव भर कहती फिरती थी 'मेरा मामा आया है, मामा आया है'। पुलिस ने उसके बहनोई के घर पर निगाह रखी और एक दिन मा से मिलने आया दिलीप जेल मे दाखिल हो गया।

जेल म कदम रखते ही उसने वहा दिए जाने वाले भोजन के बारे मे शिकायत करना प्रारम्भ किया। अन्य कैदी भी शिकायत म शामिल हो गए। सबने मिलकर भूख हडताल शुरू कर दी।

मैंने सुझाव दिया कि कैदियो की चन्द मागें मानकर भूख हडताल समाप्त करवाई जाए। भगवतराव ने हसकर कहा, 'किसी ने ठीक ही कहा है कि महिलाए राजकाज नही चला सकती।"

मैंने कहा, 'लेकिन आप भी तो मानते हैं न कि कैदियो को दिया जाने वाला भोजन बहुत ही खराब होता है ?"

"अरे भई, कैदी हमारे राजासाहब के मेहमान नही हैं! उन्ह कौन देगा अच्छा भोजन ?"

'किन्तु कैदी हुए तो क्या हुआ, वे आदमी तो हैं ?"

"वाह वाह! आप तो ठीक उस दिनकर की भाषा मे बोलने लगी! सुलू तुम एकदम पागल हो! जेल मे गरीब आदमी नही आया करते, आदमखोर जानवर आते हैं!"

उस भूख हडताल मे दिलीप शामिल न होता, तो शायद मैं ज्यादा बातें न बढाती, किन्तु रह रहकर दिलीप की याद सताने लगी। उसके जिद्दी स्वभाव से मैं भलीभाति परिचित थी।

उस रात मैंने जाना कि प्यार का उपयोग मदिरा जैसा भी करवाया जा सकता है। शराब के नशे म शराबी, जो मागो वह आश्वासन दे बैठता है। पुरुष भी प्यार मोहब्बत के नशे मे—

आखिर जेल की भूख हडताल समाप्त होने वाली है, जानकर मुझे खुशी हुई। अब दिलीप के प्राण सकट मे नही, यह जानकर मुझे अपार हर्ष हुआ। फिर भी उस हर्ष मे एक खामी रह गई थी। भगवतराव ने बात मेरे खातिर कबूल की थी, और वह भी दिन मे नहीं ?—इसलिए भी नही कि

मेरा तक उन्होंने स्वीकार कर लिया ! बल्कि इसलिए कि—

मेरी अवस्था ठीक वैसी हुई जैसी कि आंधी-तूफान से बचने के लिए सहारा जानकर घर में घुसा जाए और बिजली की कौंध के प्रकाश में यह मालूम हो कि वह विषैले जीवजन्तुओं के बिलों से भरा पड़ा है, तब होती है। कभी मैंने पढ़ा था कि—'वेश्या अपने सौंदर्य की परचून बिक्री किया करती है। कुलीन स्त्री उसकी थोक बिक्री कर चुकी होती है। इसके अतिरिक्त दोनों में कोई अन्तर नहीं होता।" तब यह वर्णन मुझे विकृत प्रतीत हुआ था।

उस रात मैंने जाना—पुरुष स्त्री के मन की कद्र नहीं करता। उसका प्रेम उसकी आत्मा से कभी नहीं होता। वह होता है उसके शरीर से।

वह हलाहल भी शायद मैं पचा जाती। किन्तु—

दिलीप, संसार में अमृत न होता तो विष विष भी नहीं होता !

भगवतराव ने बड़ी उदारता दिखाकर जेल में चल रही भूख हड़ताल समाप्त करवाई, इस बात को लेकर अखबारों ने उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। घर में प्रति दिन आने वाले 'टाइम्स' के अतिरिक्त अन्य अखबार मैं नहीं पढ़ा करती थी। किन्तु उन दिनों जब यह मालूम होता कि अमुक-अमुक अखबार में भगवतराव की प्रशंसा आई है, तो मैं उस अखबार को मंगवाकर पढ़ती।

दिन बीतते जा रहे थे। सामने वाले जलाशय में लहरें प्रति दिन नाचा करती थीं। फूल हर रोज खिला करते थे। मैं प्रति दिन कार में बैठकर सैर करने जाया करती थी। शाम को भगवतराव के घर लौटने पर उनसे प्यार की बातें किया करती थी।

बहुत नाज था मुझे उन पर। विदेशी शिक्षा दीक्षा में पले होने पर भी वे राजासाहब द्वारा अपने यूरोपीय मेहमानों के सम्मान में दिए भोज के अवसर पर पानी ही पीते थे। किसी का मन रखने के लिए कभी कभार सिगरेट पी लेने पर घर आते ही कहते, "भई आज [illegible] भुगतनी है।"

मैं पूछती, "किस बात की ?"

"आज सिगरेट जो पी है। पत्नी से लाख बातें छिपायी जा सकती हैं, किन्तु तमाखू की गध—"

उनके ऐसा कहने पर मैं जानबूझ कर—

जाने भी दीजिए। उन सुखद स्मृतियो के कारण ही आज वडा दुख होता है। प्रकृति युवक-युवतियो को प्यार के खिलौने देती है। उनके लुभावने रगबिरगे देखकर युवाजन मोहित हो जाते हैं और उन खिलौनो से खेलने लगते हैं। खेलते खेलते खिलौने टूट जाते हैं और तब उनका असली रूप प्रकट होता है, उन सुदर रगबिरगे खिलौनो के अदर मले-कुचले चीथडे भरे होते हैं!

वह समय हमारी प्रीति मे वसतबहार का था! तन मन पर एक मस्ती छाई हुई थी। उल्लास मतवाला हो रहा था। उस उमाद म मैं तो यह भुला वठती कि दिलीप जेल मे है। लेकिन—

मैंने ब्लाउज सिलाने दिए थे। लेने के लिए म दर्जी की दूकान मे गई। मेरे सुदर ब्लाउजो का वडल लिए दूकानदार पीछे-पीछे मोटर तक आया। उसने कार का दरवाजा भी खोल दिया। तभी 'खन-खन खन खन खन' आवाज सुनाई दी। मैंने सडक की ओर देखा। कदी लोग काम समाप्त कर जेल को लौट रहे थे। उन कदिया म—व—वह—

जी हा, वह दिलीप ही था!

उसके तन पर वहुत ही मोटे दो ही कपडे थे!

तीन चार दिन तक तो मैं उन ब्लाउजो को हाथ लगा न सकी।

कुछ दिन वाद हमारे महिला क्लब का वार्षिक सम्मेलन हुआ। एक सरकारी उद्यान मे समारोह का आयोजन किया गया। रानीसाहिवा भी कुछ समय के लिए समारोह मे आकर चली गइ। उस दिन तीसरे पहर हम चार-पाच सहेलिया यू ही उद्यान मे चहलकदमी कर रही थी। परली ओर कुछ कैदी काम कर रहे थे। और आगे जाने को जी नही चाहता था। किन्तु सहेलियो को कसे समझाए? उनके साथ मैं भी आगे को बढ गई।

कदियो के झुण्ड को पीछे छोडकर हम आगे बढ़ी। अनजाने मे ही मेरी चाल धीमी हो गई। झुण्ड के बीच वाले एक कदी की ओर आखें वरबस गई और उसी पर टिकी रह गइ। उसने सहज गदन उठाई और मुझ देखकर

मुस्करा दिया। तुरत सिर झुका कर फिर काम मे लग गया। हम लोग जब आगे निकल गई तब एक सहेली ने कहा, "देखा न कितने लोफर होते हैं ये लोग! देखा वह मुआ कितनी ढिठाई से हस रहा था हम देखकर ?"

मुझे उस सहेली पर वडा क्रोध हो आया!

और स्वय अपने पर भी। आखिर क्या किया था मैंने दिलीप के लिए? क्या करने वाली थी मैं? दिलीप के बारे म मन मे उठा विचारो का वह तूफान उसी तरह बरकरार जारी रहता तो—

किन्तु प्रकृति कुछ और ही चाहती थी। प्रात उठते ही मुझे मिचलिया आने लगी—हफ्ते मे ही मैं जान गई—मं मा बनने जा रही हू!

उस कल्पना मात्र के कारण मै बहुत हर्पायी! मानो एक निराली ही सुलू पदा हो गइ थी! मैं कई क्षण आखे मूदे पडी रहती। लोग साचते —इसे दोहदे लगी हैं। किन्तु अपने गभस्थ जीव के साथ मैं जो बातें किया करती थी उसकी कल्पना कोई कसे कर सकता था?

अपने, केवल अपने ही उस नन्ह मुन्ने से मैं पूछती—"अब तक कहा छिपे बठे थे मेरे राजा? वहा, जहा दिन मे सितारे छिपा करते हैं? या वहा, जहा लतिका पर खिलने से पहले फूल छिपे रहते है?

तुम दीखोगे किसके समान? मेरे समान? है न? कब दशन दोगे? कबसे आस लगाए बठी हू मैं। लेकिन अभी तो बहुत दिन—

तुम्हारा नाम क्या रखा जाए? दिलीप? लेकिन तुम लडका हो या लडकी यह जाने बिना नाम रखने का विचार कोई करे भी, तो कसे?

नौ महीनो की वह लुकाछिपी कितनी मधुर थी! एक तरफ से जान लेवा और साथ ही जानलुभाया भी, क्या और कोई खेल दुनिया म हो सकता है? प्रकृति न नारी को कई अभिशाप दिए हैं किन्तु उन अभिशापो को भुलाने के लिए उसे माता बनने का वरदान भी दिया है शायद!

उन नौ महीना म मैंने जिस काव्य को अनुभव किया उसकी सानी तो ससार के किसी भी महाकवि की रचना भी नही हो सकती। आखो के सामने अरुणोदय हस रहा था, काना में झरनो का कलकल सगीत गूज रहा था। लोह को सोने में बदलने वाला पारस मुझे मिला था जिस लिए मैं मन-ही-मन सोने को द्वारिका रचती जा रही थी।

बीच में एक बार दादा आए थे और मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछ कर लौट गए थे। मैं इतनी ढीठ—इतनी हाजिर जवाब ! 'अब अपनी सितार सभालिएगा !' ऐसा दादा से कहने को होठ कितनी ही बार मचले। किन्तु शब्द होठो पर ही सूख जाते। मानो मेरे गर्भस्थ शिशु की हिदायत मिलती हो कि—'नही, मां, अभी से उन्हे सचेत मत करना !'

दादा ने जाते समय जब कहा, "आज तुम्हारी मा होती, तो मैं तुम्हे साधिकार मायके ले गया होता !" तो मुझे भी बडा दुख हुआ, किन्तु बस क्षणभर के लिए ही !

मुझे पिछला कुछ याद नही था। फिलहाल का कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। मेरी नजर भविष्य की ओर लगी थी। वह सोने का दिन कब आएगा ? उन नाजुक नम गालो पर अपने होठ मैं कब रख पाऊगी ?

मेरी दोहदें कष्टकर नही थी। किन्तु भगवतराव मेरी बहुत ही ज्यादा हिफाजत किया करते थे। जरा मुझे कही थोडी भी तकलीफ हुई और उन्होंने मुझे कई तरह की दवाइया पिलायी, ऐसा सिलसिला आरम्भ हो गया था। मैं उनसे कहती, "अज्ञान मे ही बडा सुख होता है। न तो आप डाक्टर हुए होते और न मुझे इतनी सारी दवाइया खाने की सजा भुगतनी पडती !"

मेरी दोहदें खानपान की नही थीं। मेरा जी तो बस नन्हेमुन्ने बच्चो को देखते रहने को करता था। एकदम नवजात अर्भक से लेकर पाच साल के बच्चे तक कोई भी बच्चा हो, उसके साथ खेलने बैठने को जी किया करता था।

एक बार एक दूकान मे बुनाई का सामान लेने मैं गई थी। मुझ से कुछ ही दूर एक साल डेढ साल का श्यामसलोना बच्चा खेल रहा था। साबुन के चूरे की एक थली उसके सामने पडी थी। थली पर हस का चित्र बनाया हुआ था। किन्तु वह बालक लगातार उसे 'कावा-कावा' कहते जा रहा था। अपनी बचकानी समझ मे हस भी उसे कौआ लग रहा था। घर लौट आने पर भी उसके वे 'कावा-कावा' शब्द मेरे कान मे गूजते रहे।

रात भोजन के समय यह किस्सा मैंने भगवतराव को सुनाया, तो उन्होने कहा, 'मारे गए अब तो !'

मैंने चकित होकर पूछा, "क्यो, क्या हुआ ?"

'नही, अब इस उम्र मे नई भाषा सीखना टेढी खीर नही तो और क्या है ।'

"मैं समझी नही ?"

"नही समझी ? अजी, तो अब हमे भी भाषा सीखना पडेगी जिसमे कौए को कावा कहा जाता है।"

एक बार मैं इजीनीयर साहब की पत्नी के यहा चाय पर गई थी, वहा उनकी तीन-चार साल की बहुत ही प्यारी बच्ची थी। उसे चूम लेने को जी करता था। वह मोह प्रबल हो गया।

मैंने उससे कहा, "आओ, एक पपी दे दो हम !"

उसने मना करने के अन्दाज मे सिर हिलाया। उस झटके से उसके घुघराले बालो मे उठी लहरे बस देखते ही बनती थी।

मैंने उससे फिर पूछा, "पपी क्या नही दोगी ?"

उसने जवाब भी बडा मार्के का दिया, "अब मैं बडी हो गई हू ! बडो की भी पपी क्या कोई लेता है ?" वे बालसुलभ विचार कितने मीठे लगे। श्रीकृष्ण की मुरली सारे गोकुल को अपनी मोहिनी मे बाध देती थी। मुझे लगा साक्षात वही मुरली बालरूप बनकर सामने खडी है।

और बडी हो चुकी इस नन्ही मेमसाहबा ने दूध पीते समय ऐसी जिद की कि उसे बुझाते उसकी मा तो क्या सभी की नाक म दम आ गया। उसकी शिकायत बस एक ही थी—दूध म चीनी नही है। उसकी मा ने चीनी मिलायी थी। बच्चो को दूध मीठा भी लग रहा था। किन्तु शिकायत यही थी कि चीनी दिखाई क्यो नही देती। डाली है तो दिखाइए कहा है।

वह प्रसग बार बार याद आता रहा। मन कहता, तुम्हारा शिशु भी तुम्हे कहा दिखाई दे रहा है ! किन्तु उसका अस्तित्व तुम अनुभव कर रही हो। दूध म मिली चीनी के अस्तित्व का भी यही हाल होता होगा !'

उन पाच छह महीनो की सारी बातें कहने लगू तो एक ग्रन्थ ही अलग से लिखना पडेगा। हर बात मे कितना आनन्द भरा लगता था उन दिनो ! किन्तु आज—

पतझड म पत्ते गिर जाने के बाद वक्ष की ओर देखन की इच्छा किसी

को नही होती ।

कुछ ही दिनो बाद खुशी के लिए रानी साहिबा ने एक दावत का आयोजन किया । उस दिन भगवतराव की पत्नी होने का कितना नाज था मुझे ! उस भोज म सभी सभ्रात परिवार की महिलाओ को निमन्त्रित किया गया था। भोजनापरान्त बाता का सिलसिला चला। सुरुचि विनोद होने लगे । राजासाहब का पष्ठयब्दपूर्ति शीघ्र ही होने वाली थी। तदथ आयोजित किए जाने वाले समारोह मे भाग लेने का निणय महिला क्लब ने किया ।

समारोह का दिन आने तक तो यही तय था कि हमारे क्लब की ओर से भाषण दीवानजी की पत्नी दे । किन्तु उस दिन चार पाच सदस्याए मेरे पास आईं और कहने लगी, 'आज भाषण तो आपको ही देना चाहिए !'

"सो क्या ?"

"दीवान जी की पत्नी को अभी तक भाषण कण्ठस्थ नही हुआ है, फिर भाषण मे नई नई बातें भी तो आनी चाहिए !"

"नई बातें ? कसी नई बातें ?"

"आज प्रात ही राजासाहब ने सभी राजबदियो की रिहाई का आदेश दे दिया है। उस बात के लिए उनका अभिनन्दन, और—

उनकी ओर बातो की ओर ध्यान कहा था। एक ही बात मुझ पर हावी सी हो गई थी—राजबन्दी रिहा किए जाएगे यानी दिलीप भी रिहा होगा। अभी इसी समय जाकर उससे मिलना चाहिए। वरना—क्या पता महाशय फिर बरागी बनकर गायब भी हो चुके होंगे !

मैं दिलीप से मिलने जाने की तयारी कर रही थी कि तभी भगवतराव बाहर से आ पहुचे । आज के भाषण की जिम्मेदारी मुझ पर आने की खबर उन्हे भी लग चुकी थी ! मेरे पास आकर कहने लगे, 'आज तो आप हमसे बातें भी नही करेंगी शायद ? '

मैंने जानबूझकर कहा, ' जी नही !"

'भला, क्यों ?'

आज मैं बडी पडिता जो हो गई हू । पता है ? आज मैं दीवानजी की पत्नी का काम करने जा रही हू ! '

"उसमे तो कामयाव होने से रही आप !"

काफी गुस्सा चढा मुझे उन पर। वे अच्छी तरह स जानते थे कि बडी सभा मे भी बिना हौसला खोए मैं अच्छा भाषण द सकती हू और फिर भी वे—

उ होने तुर त कहा, 'मेरे कहने का मतलब यह था कि दीवान जी की पत्नी का काम करने से पहले तुम्हे उनके समान मोटी भी तो होना चाहिए न ?'

मेरा गुस्सा उनकी बात सुनकर एकदम गायब हो गया।

उनका सुझाव मुझे भी जचा कि मैं अपना भाषण पहले लिख लू।

बाढ का पानी नदी के किनारे तोडकर दूर दूर तक फल जाता है, उसी भाति शाम को थिएटर के बाहर सारे रास्ते भी जनसमुदाय से भर गए थे, विशाल जनसागर उमड आया था।

समारोह मे सभी वक्ताओ ने राजासाहव की प्रशसा के पुल बाधने म कोई कसर नही छोडी। लगभग सभी के भाषणो मे राजासाहव की न्याय-प्रियता, उदारता, प्रजाहित दक्षता—

सबके साथ मैं भी तालिया बजा रही थी किन्तु कभी बीच ही मे मन मे विचार आता—यहा एकत्रित लोग स्वाभिमानी नागरिक हैं या केवल स्तुतिपाठक चारण ? किसी के ज मदिवस पर क्या यह जरूरी है कि ससार के तमाम सदगुण उसम होने की बातें की जाय ?

शायद मन म मचलते इ हीं विचारो के कारण मेरा भाषण ठीक से जमा नही।

अन्तिम वक्ता न तो गजब ढा दिया—"राजासाहब आजकल बीमार रहते हैं। हमारी इच्छा है कि अपन स्वास्थ्य लाभ के लिए व शीघ्रातिशीघ्र यूरोप चले जाए। इसके लिए आवश्यक हो, तो कोइ नया कर हम पर लगाए जाए, हम खुशी स वह देंगे। जो नही देंगे व राजद्रोही होंग !" इस आशय के विचार उ होन प्रकट किए।

उनका भाषण समाप्त होते ही श्रोताओ न तालियो की गडगडाहट से सभा गृह गुजा दिया।

तभी सभागृह के एक कोने स किसी ने दहाडती आवाज मे कहा, 'मैं

बोलना चाहता हू ।'

सर्कस का शेर पिंजड़े से बाहर आने पर जैसे दर्शकों मे होश हवास उड़ा देने वाली खलबली मचती है उसी तरह सभा के संयोजकों मे खलबली मची । वे आपस मे फुसफुसाने लगे, 'सरदेसाई ! नही नही ! यहा कैसे बोलेगा वह ?'

सभामंच की ओर आते उस व्यक्ति को मैंने देखा, वह दिलीप ही था । उसकी राह रोकने के लिए कुछ लोग आगे बढ़े किन्तु राजासाहब ने इशारा कर सबको शात रहने के लिए कहा ।

दिलीप का भाषण पूरे पाच मिनट भी नही हुआ । किन्तु विमान से बम बरसाने के लिए पाच मिनट क्या कम होते हैं ? दिलीप के आग उगलते वाक्य—

'राजद्रोह न करने का दायित्व प्रजा पर है उसी प्रकार राजा का भी यह कर्तव्य है कि वह प्रजाद्रोह न करें । राजासाहब भी आखिर एक आदमी ही हैं । साठ वर्ष के आदमी का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है यह स्वाभाविक बात है । किन्तु हिन्दुस्तान मे हवाखोरी के लिए काफी अच्छे-अच्छे स्थान हैं और साक्षात् धन्वतरी से लोहा ले सकने वाले अच्छे अच्छे डाक्टर भी हैं ।' राजासाहब एकसठवें वर्ष मे पदार्पण कर रहे हैं । हमारी धर्मकल्पनाओ के अनुसार तो अब उन्हे वानप्रस्थ स्वीकार कर लेना चाहिए । शेष जीवन वे वानप्रस्थ की भावना से बिताए ऐसी मेरी प्रार्थना है । मैं मानता हू कि प्रजा को राजा का पिता समान आदर करना चाहिए । किन्तु किसी भी परिवार म जब बच्चे दाने-दाने को मोहताज तड़पते हो तब पिता को क्या मालपुवा उड़ाते देख पाएगे ?

इसी तरह वह काफी कुछ बोलता गया ।

सभागृह मे एकदम सन्नाटा छा गया था । किन्तु वह शान्ति मन्दिर की नहीं, मरघट की शांति थी । प्रौढ़ श्रोताओ के चेहरो पर भय उतर आया था । तरुण श्रोताओ के चेहरे अतीव आनन्द के साथ-साथ आश्चर्य की छटाओ से खिल गए थे ।

पांच छह बच्चो ने बीच ही म करना चाहा । पुलिस ने डांट कर

दिलीप का भाषण सुनते हुए मैं यह सब देख रही थी। समझ नही पा रही थी कि उसके भाषण का परिणाम क्या होगा। शायद अभी इसी स्थान से उसे वापस जेल भेज दिया जाएगा—शायद—

दिलीप का हर शब्द एकदम सत्य था। किन्तु पता नही क्यो, मुझे लगा और लगातार लगता ही रहा कि—कम से कम आज तो उसे इस तरह बोलना नही चाहिए था।

आज प्रात ही वह जेल से रिहा किया और शाम को—

क्या उसका आचरण पिंजडे से रिहा होते ही शिकारी क सामने नाचने वाले पछी के आचरण जैसा नही था ?

मैं चौकी।

दिलीप का भाषण समाप्त हुआ था। अब राजासाहब क्या करते है इसी ओर सबका ध्यान लगा था।

दिलीप मच से उतरने को मुडा था। तभी राजासाहब ने अपना हाथ आगे बढाया। अभी चद क्षणो पहले निडरता से भाषण देने वाला दिलीप भी राजासाहब की इस पहल से चकराया सा राजासाहब की ओर देखता रह गया।

तभी श्रोताओ ने तालियो की फिर गडगडाहट की। तब कही दिलीप होश म आया। उसने अपना हाथ बढाकर राजासाहब का हाथ हाथ मे लिया और हस्तादोलन किया।

सभागह मे राजासाहब की जय गूज उठी।

किसी ने एक बार भी दिलीप की जय नही बोली।

उसे किसी ने जलपान के लिए भी आमत्रित नही किया।

चाय पर सभी बडे लोग एक ही रट लगाए हुए थे—राजासाहब कितने उदार है, कितने महान हैं !

और दिलीप ? क्या वह बहादुर नही था ?

दिनकर सर देसाई के नाम की चर्चा सबने की, लेकिन एक बहादुर के रूप मे नही, महामूख के रूप म। सबको आपत्ति इसी बात पर थी कि आज को सभा मे उसे इस तरह से नही बोलना चाहिए था। प्रजाजनो की कोई शिकायतें आदि हो, तो शिष्टमडल ले आता और राजासाहब के सामने

रात मे सोते समय भगवतराव ने हमेशा की भाति मेरा चुम्बन ले लिया। यकायक मेरे मन म आया—दिलीप की खिल्ली उडाने के लिए ये ही होठ हमे थे !

नीद आते तक वह चुबन जलते जख्म की भाति मुझे जलाता रहा।

राजासाहब के ज मदिन के उपलक्ष्य मे एक चित्र प्रदशनी का आयोजन किया गया था। दूसरे दिन शाम भगव तराव के साथ मैं प्रदशनी देखने गई। घर से चलते समय ही हम दोनो ने तय कर लिया था कि एकाध सुन्दर चित्र खरीदेंगे।

लेकिन लगभग दो घण्टे प्रदशनी मे घूमने फिरने के बाद भी हम दोनो मे इस बात पर एक राय नही हो रही थी कि कौन-सा चित्र खरीदा जाए। पाव थक गए थे। पिडलिया टूट-सी गई थी। जी ऊब गया था। उ हे 'उमरखयाम' का चित्र पस द था तो मुझे 'क्रौंचवध' का। पहले चित्र मे ससार की सुधबुध विसरा कर मदिरा की सुराही और रसीली रुबाइया मे मगन उमरखयाम तरु तले बठा दिखाया गया था। दूसरे चित्र म, पेड पर क्रौच पक्षियो के जोडे मे से नर पक्षी को मार गिराने वाले व्याध को शाप देने वाला ऋषि दिखाया गया था। पास ही एक युवती उस मत पक्षी को सीने से लगाकर विलाप करती दिखाई थी। कला की द ष्टि से दोनो चित्र उत्तम थे। किन्तु—

मेरे विचार मे उस उमरखैयाम वाले चित्र मे कुछ कमी थी। उस त्रुटि को मैं सही सही पहिचान नही पा रही थी।

भगव तराव मेरा मजाक उडाने लगे थे।

अन्त म कौन-सा चित्र खरीदा जाए इसका निणय कल करने का निश्चय कर हम लोग वापस जाने को निकले।

द्वार पर ही दिलीप किसी से बाते करता खडा था। मुद्दतो बाद उससे बाते करने का अवसर अब मिलता नजर आया।

कदम रुके। आखें एक टक उसे निहारने लगी। किन्तु होठो पर आते शब्द भीतर ही जमते गए। कौन जान सकता है बफ जमी नदी म बरफ की

अपनी बातें रखता। एक अधिकारी तो फब्ती कसने मे सबसे तेज निकला, उसने कहा, 'इस दिनकर का बाप था थानेदार। बाप का साहस बेटे मे भी उतर आया है'। फिर कुछ रुककर वह फिर कहने लगा, 'और लगता है, बाप की शराब भी बेटे पर रग ला रही है! क्या बकवास किए चला जा रहा था! नम्बरी शराबी को भी मातकर गया बच्चू!'

उसकी बात पर सब लोग हस पडे।

और लोग इस तरह हसते तो उसका मुझे रज नही होता, किन्तु भगवतराव भी जब हसी मे शामिल हो गए, तो—

पागलखाने मे अपने किसी परिचित को देखकर होती है वैसी ही सकपकाहट मन म उठी।

माना कि दिलीप ने जो कुछ कहा उसमे साहस था, हो सकता है वह अविचार था, किन्तु इन सुखलोलुप दुबल जन्तुओ को उसकी खिल्ली उडाने का क्या अधिकार था? इनके द्वारा खिल्ली उडाए जाने योग्य कौन-सी बात उसके भाषण म थी?

मुझे लगा—रामगढ के ये सारे बडे लोग पहले दर्जे के ढोगी हैं। वे सच्चे ईश्वर की पूजा करने वाले नही, नवेद्य के लिए पत्थर के सामने हाथ जोडने वाले बगुलाभगत हैं। ये पसे के पुजारी हैं, प्रतिष्ठा और इज्जत पर फूल चढाने वाले हैं, सत्ता की आरती उतारने वाले हैं। सिंहासन पर विराजमान खरगोश को सिंह मान कर ये उसकी स्तुति करते नही अघाएगे—

और पिंजडे मे ब द सच्चे मगेंद्र पर दूर से ककड-पत्थर मारने म ही बडी बहादुरी मानेंगे ये लोग!

इ हे न तो शौय की कदर है, न सत्य का आदर।

चाय पीते पीते मुझे लग रहा था, हो सका तो दिलीप के साथ कही दूर दूर सैर करने जाऊ, उससे कहू कि तुम्हारा आज का भाषण मुझे बहुत पस द आया और साथ ही अपने गले की कसम दिला कर उससे यह मान्य करवा लू कि 'फिर कभी ऐसा भाषण यहा नही देगा।'—

कि तु दिलीप जा चुका था। इन अमीरो के जमघट म उसे भला क्या स्थान था?

रात म सोते समय भगवतराव ने हमेशा की भाति मेरा चुम्बन ले लिया। यकायक मेरे मन मे आया—दिलीप की खिल्ली उडाने के लिए ये ही होठ हमे थे।

नीद आते तक वह चुबन जलते जख्म की भाति मुझे जलाता रहा।

राजासाहब के ज मदिन के उपलक्ष्य मे एक चित्र प्रदशनी का आयोजन किया गया था। दूसरे दिन शाम भगव तराव के साथ मैं प्रदर्शनी देखने गई। घर स चलते समय ही हम दोनो ने तय कर लिया था कि एकाध सु दर चित्र खरीदेंगे।

लेकिन लगभग दो घण्टे प्रदशनी मे घूमने फिरने के बाद भी हम दोनो म इस बात पर एक राय नही हो रही थी कि कौन-सा चित्र खरीदा जाए। पाव थक गए थे। पिंडलिया टूट-सी गई थी। जी ऊब गया था। उ ह 'उमरखयाम' का चित्र पस द था तो मुझे 'क्रौंचवध' का। पहले चित्र मे ससार की सुधबुध बिसरा कर मदिरा की सुराही और रसीली रुबाइया म मगन उमरखयाम तरु तले बठा दिखाया गया था। दूसरे चित्र म, पेड पर क्रौंच पक्षिया के जोडे मे से नर पक्षी को मार गिराने वाले व्याघ को शाप देने वाला ऋषि दिखाया गया था। पास ही एक युवती उस मृत पक्षी को सीने से लगाकर विलाप करती दिखाई थी। कला की दष्टि से दोना चित्र उत्तम थे। किन्तु—

मेरे विचार म उस उमरखैयाम वाले चित्र मे कुछ कमी थी। उस त्रुटि को मैं सही सही पहिचान नही पा रही थी।

भगवन्तराव मेरा मजाक उडाने लगे थे।

अन्त मे कौन-सा चित्र खरीदा जाए इसका निणय कल करने का निश्चय कर हम लोग वापस आने को निकले।

द्वार पर ही दिलीप किसी से बाते करता खडा था। मुद्दतो वाद उससे बातें करने का अवसर अब मिलता नजर आया।

कदम रुके। आखें एक टक उसे निहारने लगी। किन्तु होठो पर आते शब्द भीतर ही जमते गए। कौन जान सकता है वफ जमी नदी मे बरफ की

परत के नीचे कितना पानी होता है !

मैं कुछ सहमी, कुछ डर भी गई। कही ऐसा न हो कि मेरे मौन का गलत अर्थ लेकर दिलीप एकदम वहा से चला जाए, यदि ऐसा हुआ तो

किन्तु वह गया नही। मुझे देखते ही झट से आगे आया और पूछने लगा, "पहिचान भुला तो नही दी सुलूदीदी ?"

दूसरे ही क्षण भगवन्तराव को नमस्कार करते हुए शान्तभाव से बोला, 'नमस्ते डाक्टर साहेब !"

भगवन्तराव ने दिलीप को जवाबी नमस्कार किया तो, किन्तु भाव ऐसे थे मानो किसी नास्तिक पर भगवान की मूरत के सामने हाथ जोडने की बरबस नौबत आ पडी हो। हाथ ऐसे उठे जसे किसी यान्त्रिक कठपुतली के उठते हैं।

कल के भाषण पर दिलीप को बधाई देना चाहती थी। किन्तु पास मे भगवन्तराव खडे थे। उन्हे वह बात शायद भाती नही, यह सोचकर मैंने बात बदल दी।

मैंने दिलीप से पूछा, "सारे चित्र देख लिए ?"

"जी हा। कुछ तो दो दो बार देखे !"

"सच नही लगता !"

"सो क्यो ?"

'देश भक्त लोग भी क्या इतने रसिक होते हैं ?"

"इतने का क्या मतलब ? तुम दग रह जाओगी सुनकर — कल जेल से रिहा होते ही पता है मैंने क्या काम किया ? सडक के हर कोने-कोने म लगे फिल्मी इश्तहार पढता गया और लगे हाथ निर्णय कर डाला !"

"किस बात का ?"

'फिल्मो म काम करने का !"

"कब ?"

'हिन्दुस्थान को आजादी मिलते ही !"

"वाह ! समय भी क्या नजदीक का चुना है ऐसी मीठी चुटकी मैं लेने वाली थी, किन्तु भगवन्त के चेहरे पर बल पडते नजर आए। इसलिए हसते-हसते पूछा, "कौन-सा चित्र भाया तुम्हे ?"

"क्रौंचवध !"

मैंने विजयी भाव से भगवन्त की ओर देखा और कहा, "बहुमत मेरी ओर है !"

दिलीप की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "बहुमत का मतलब है बहुतेरे हाथ, दिमागों की बहुतायत नहीं !"

उनके उन उद्गारों का विरोध करने के लिए मैंने कहा, "मैं यही चित्र खरीदने वाली हूं !"

"तुम्हारी मर्जी ! बी० ए० पास पत्नी पर अपनी राय लादने के लिए मैं कोई जंगली नहीं हूं !"

भगवन्तराव क्लब चले गए।

दिलीप ने उस चित्र को लेकर मुझसे काफी मजाक किया। उसके साथ काफी बातें करने की इच्छा हो रही थी। किन्तु प्रदर्शनी ऐसी दिल खोलकर बातें करने का स्थान कैसे हो सकती थी ? मैंने उससे कहा, "रात मेरे यहां भोजन के लिए आ सकोगे ?"

"हम तो तुम्हारी दावत की प्रतीक्षा में ही थे !"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि हर जून के भोजन का इन्तजाम कहीं न कहीं करवाने की ही चिन्ता में रहता हूं आजकल !"

"क्या कह रहे हो ? बातें बनाना तो तुम्हें खूब आता है !"

बातें कहां बना रहा हूं ? मेरा कल वाला भाषण सुनने के बाद आज सुबह ही हमारे बहनोई साहब ने मुझे घर से निकाल दिया है। दोपहर का भोजन एक गरीब क्लर्क मित्र के यहां किया। किन्तु उस बेचारे के तीन बच्चे हैं। पत्नी भी हमेशा बीमार रहती है। इसीलिए सोचा कि—"वह कुछ क्षण रुककर फिर बोला, "आज चांदनी रात भी है। भोजन के बाद तुम्हारे बंगले से मैं आराम के साथ टहलता हुआ गांव चला आऊंगा। उसमें भी आनन्द आएगा।"

दिलीप बंगले पर काफी देरी से आया। भोजन करते समय भगवन्तराव ने लगभग मौन ही साध रखा था। दिलीप से बातें लगातार मैं ही किए जा रही थी। किन्तु विषय सारे हमारे कालिज के दिनों वाले पुराने

ही थे।

भोजन के बाद मैंने भगवन्तराव से कहा, 'ये जनाब कविता बहुत अच्छी गा लेते है।"

बस, केवल 'अच्छा'' कहकर भगवन्तराव रह गए। उन्होने दिलीप से कविता सुनाने को नही कहा। मैं ही उसे सुनाने का आग्रह करती रही। पहले तो उसने कुछ आनाकानी की, किन्तु सामने के तालाब म पानी चमक रहा था, बगीचे मे फूल हस रह थे और चहुँ ओर मसहरी जसी सफेद चादनी फली हुई थी। यह सारा दृश्य देखकर शायद वह गान को तयार हो गया।

दिलीप गाने लगा—

बोलो जयजयकार क्राति का बोलो जयजयकार

धीरे-धीरे उसकी आवाज और स्वर बुलद होने लगी।

वह गा रहा था—

अपने हाथो पग पग पर अगारे फलाकर
रहे दौडते मदहोशी मे मजिल के पथ पर
विश्राम के लिए रुके ना, मुडकर ना देखा
रोक सकी ना कभी प्यार या चाहत की रेखा
नजर टिकी थी एक लक्ष्य पर, पथ म था अगार
हमारे पथ मे था अगार
बोलो जयजयकार क्राति का बोलो जयजयकार

मैंने सोचा कि यह कविता उसकी अपनी लिखी हुई है। यह उसकी अपनी अनुभूति है। इस कविता म वर्णित प्रीति की डोर यानी—

उसका गाना समाप्त होते ही मैंने कहा, "इस कवि का नाम मैं जानती हू।"

"अच्छा? बताओ तो।"

'दिनकर सरदेसाई।"

"जी नही! मैं उतना सौभाग्यशाली कहा! यह कविता कुसुमाग्रज*

---

*मराठी के क्रातिदर्शी कवि श्री वि०वा० शिखाडकर जो 'कुसुमाग्रज' नाम से प्रसिद्ध हैं।

की है !"

"कुसुमाग्र— ! यह नाम तो कभी सुना नहीं है !"

भगवन्तराव ने बीच ही मे कहा, "सुलू, खुले मे यह सर्दी तुम्हार लिए अच्छी नही, चलो भीतर चलें।"

यह तो दिलीप के लिए जाने की सूचना ही थी।

उस छोडने के लिए मैं फाटक तक गई और विदा देते समय कहा, "एक बात तो तुम्ह बताना भूल ही गई।"

"क्या बात है ?"

'तुम्हारी दी हुई वह नमक की पुडिया अभी तक मेरे पास सुरक्षित है !"

उसने भी हसते हुए कहा, "मैं भी तुम्हे एक बात बताना भूल रहा था !"

"वह क्या ?"

'मैं फिर तुम्हारे यहा भोजन पर आ रहा हू।"

"कब ?"

"तुम्हार बालक के नामकरण के दिन।"

इतना कहकर वह तेजी से चला गया। उसके घटे दो घटे के सहवास मे मेरा मन एकदम प्रफल्लित हो उठा था। कारा, क्लेष, पीडा ऐसी किसी भी बात का उसने मुझस बातें करते समय मामूली जिक्र तक नही किया था। म दग थी कि इतनी शक्ति दिलीप ने कहा प्राप्त की होगी ? दरिद्रता की विभीषिकाओ मे भी होठो पर मुस्कान बनाये रखना, हजार यत्रणाओ मे भी ध्येय पर अडिग आस्था रखना यह तो एक तपस्या—

मैं वापस घर आई तो छूटते ही भगवन्तराव ने कहा, "यह दिनकर भले ही तुम्हारा बालमित्र हो, फिर भी—"

'फिर भी क्या ?"

'फिर भी वह दुश्मन !"

दुश्मन ? किसका ? क्या किया है उसने ?"

'सुना है अब वह किसानो को उभार कर राजासाहब के लिए सरदद बनने जा रहा है क्लब म अभी दीवान साहब स्वय फरमा रहे थे

कि—"

दीवान साहब का पगाम सुनने के लिए मैं वहा ठहरी नही। जल्दी जल्दी सीढिया चढ कर अपने ऊपर वाले कमरे मे आ गई। पीछे-पीछे भगवन्तराव भी आ गए। उन्होन मुलायम स्वर मे कहा, "सुलू, एक बात और है—"

मैं सुनने लगी।

"तुम मेरी पत्नी हो!"

"इस पर मुझे नाज है!"

"है न?"

मैंने सिर हिलाया।

"तो फिर तुम ही बताओ—इस तरह के खानाबदोश आन्दोलनकारी व्यक्ति के साथ मित्रता रखना क्या हमारी शान के विपरीत नही?"

मैंने कोई उत्तर दिया नही। मन कह रहा था—"शान! प्रतिष्ठा! इसान ने कितने झूठे देवता निर्माण कर रखे हैं ये! क्यो? किसलिए? इनकी पूजा का आडम्बर रचाकर भोलीभाली जनता को धोखा देने के लिए? अनाडी लोगो को लूटने के लिए? ससार मे अपना नकली बडप्पन बनाए रखने के लिए? और नही तो किसलिए?"

शाम को खरीदा वह क्रौंचवध का चित्र सामने था। पता नही क्यो, लेकिन ऐसा लगने लगा कि हो न हो, भगवन्तराव के ये वाग्बाण और उस चित्र मे निषाद द्वारा चलाया गया तीर दोना मे काफी समानता है।

आखें मूदते मदते मन-ही मन तय किया—बच्चे के नामकरण पर दिलीप को भोजन के लिए अवश्य आमन्त्रित करूगी!

प्रसूति के लिए मैंने अपना वह ऊपर वाला कमरा ही पसन्द किया।

नौकरानी बायजा रह रहकर मुझसे कह रही थी नही नही मालकिन उस कमरे म नही!"

किन्तु मैंने उसकी बात अनसुनी कर दी।

प्रसूति वेदनाए शुरू हुइ तो मुझे पीडा के कारण भगवान याद आ गए। किन्तु प्रसूत होने पर जब परिचारिका का शब्द सुना—'लडका' तो सारी

पीड़ा और वेदनाएं भुला कर हर्ष मे मैं फूली न समाई। ब्रह्मानन्द भी उस हर्ष के सामने फीका था। मैं बहुत ही थक गई थी। बदन टूटा जा रहा था। हाथ पाव लूंजे पडते जा रहे थे। इतनी कमजोरी अनुभव हो रही थी कि आखें अपने आप झपकने लगी थी। लगता था, इतनी अशक्त हो गई हू, एक बार अपने नवजात शिशु को जी भर देख तो लू। पता नही फिर आख खुले न खुले!

घंटे डेढ़ घंटे के बाद भगवन्तराव कमरे मे पधारे। वे, मैं और हमारा बच्चा! बल का तिपत्ता सुन्दर क्यो लगता है, तब मैंने जाना। आखो ही आखो म मैं भगवन्तराव से कहे जा रही थी—इधर कुछ दिनो से मुझे भय लग रहा था कि कही तुम्हारा और मेरा झगडा न हो जाए। अब वह भय नही रहा। हमारा झगडा सुलझाने के लिए भगवान ने यह बहुत बडा न्यायमूर्ति जो भेज दिया है। विवाह बन्धन दो आत्माओ की गाठ होती तो है, किन्तु वह सरफूद सी होती है! सन्तान होने के बाद वह अटूट बन्धन म बदल जाती है।

वे काली-काली आँखें—नन्हे नन्हे होठ—

मा का दूध पीना उन होठो को कोई नही सिखाता। तीसरे दिन जब उस अबोध शिशु को मैंने सीने से लगाया और जब वह दूध चूसने लगा तो मेरा रोम रोम रोमाचित हो ऐसा बाग बाग हो गया कि

उस स्पर्श म पति के चुम्बन से भी कही अधिक अमत भरा था।

लडका क्या हुआ, मेरे लिए एक नया ससार बस गया। उस ससार मे वत्सलता के अलावा अन्य कोई रस नही था। किसी अन्य रस के लिए उसमे गुजाइश ही नही थी। अब मैं बी ए पास स्नातक विदुषी नही थी एक पडित प्राध्यापक की बेटी नही थी, डाक्टर की पत्नी नही थी, दिलीप जैसे देशभक्त की सहेली भी नही थी, मै केवल एक माँ थी।

बच्चे को गोद मे लिए लेटते ही मन ऊँची ऊँची उडानें भरने लगता। कभी उसके नन्हे पाँव की पायल छमछम सुनायी देती। दूसरे ही क्षण आभास होता कि वह 'तीन पर दो पचपन' को रट रहा है। तो कभी लगता कि वह क्रिकेट का बल्ला लिए मैदान म उतर रहा है। उसके द्वारा गेंद की पिटाई की जाने की आवाज भी कभी-कभी सुनाई देती। 'मैं बडा आदमी

बनूगा' कहते कहते कभी वह विमान चलाता दिखाई देता और मैं जब घबराकर चिल्लाती 'मुन्ने, यह भी कोई खेल है ?' वह ऐंठ कर जवाब देता— मा दश के लिए मैं युद्ध पर जा रहा हूँ !' उस अजीब आभास म मैं पसीने पसीने हो जाती और मुन्ना गोद म सुरक्षित है यह देखन क बाद ही आश्वस्त होती !

उसको घुटन होत तक चूम चूम कर मैं कहती, 'भगवान ! कुछ एसा करो कि जब मरा यह मुन्ना बडा हो जाए तब ससार म किसी का युद्ध करन की आवश्यकता ही न रहे।

भगवान म मेरी कोई आस्था नही थी। किन्तु उस समय लगता— दुनिया मे भगवान का होना बहुत जरूरी है।

कभी मुन्ना आँखें खोल कर मेरी ओर देखने लगता तो अनुभव होता कि यह नजर जानी पहिचानी है और उस कस कर सीन स लगा कर मैं पूछती, मर लाल ! किस ज मज मान्तर की पहिचान है रे यह ?'

चौथे या पाचवें दिन दिलीप का एक पोस्टकाड मिला। इतना ही लिखा था, मालूम हुआ कि मा बन गई हो। बहुत-बहुत बधाइया, कहा भी रहा, तब भी नामकरण के दिन अवश्य हाजिर हो जाऊगा। 'ब्राह्मणो भोजनप्रिय !'

मन ही मन तय किया कि नामकरण के दिन दिलीप की माताजी को भी न्योता दूगी। किन्तु—

नियति बहुत ही निमम होती है। दसवें दिन रात मे—

मुन्ना मुझे छोड कर चल बसा !

बीमार तो वह केवल पाच छह घण्टे भी नही था। यकायक उसे तिकडिया आने लगी। भगवतराव ने अपनी तरफ से पूरी कोशिश की। शहर के सभी डाक्टर भी आ गए थे। किन्तु—

मेरा नन्हा तोता आखिर उड ही गया ! उसका खाली पलना अब उसके खाली पिंजडे सा लग रहा था। उस खाली पलने को झूलना झुलाती झुलाती मैं सारी सारी रात रोती रही। रो रो कर आँखें फूल गइ। किन्तु कराल काल ने किसी के आँसुओं की परवाह कब की है ?

सभी ने मुझे समझाया। भगवतराव का तार मिलते ही दादा भी आ

पहुँचे। किन्तु मेरे आसू रोके नही रुकते थे। आधी रात अचानक जाग पडती और गोद टटोल कर देखती। वहा कुछ भी न पाने पर---

आत्महत्या का विचार मन मे आने लगा। सामने ही पानी से लबालब भरा तालाब था। बस एक क्षण---एक छलाग---

किन्तु वह साहस मुझसे नही बन पाया। फिर भी ऐसी ही झल्लाहट मे एक दिन मैंने आदेश दे दिया कि क्रौंचवध का वह अत्यत चाहत से खरीदा हुआ चित्र मेरे कमरे से हटा कर नीचे दीवानखान मे लगवाया जाय। उस चित्र मे तीर से आहत पछी को देख कर मुझे मुन्ने की याद हो आती और फिर---

पहले चार-पाच दिन भगवतराव भी उदास थे। धीरे-धीरे उन्होने अपने आपको सभाला। वे पहले जसे ही हसने खेलने लग। किन्तु मुझे किसी भी तरह से कोई चैन नही था। मेरी हालत तो उस नन्ह बालक जैसी हो गई थी, जो अपना खिलौना गुम हो जाने पर गला फाडकर रोता रहता है। हर किसी बात पर मुन्ने की याद हो आती और आखें सावन भादो हो जाती।

एक बार मैं यू ही 'स्त्री' मासिक पत्रिका के पन्ने उलटती बठी थी। उसके अतिम पष्ठ पर नन्ह नन्हे चुन्ने-मुन्नो के दस बारह चित्र छपे थे। उन्ह देख कर अपने मुन्ने की याद मे मेरे आँसू बह निकले।

उसी समय बायजा नौकरानी मेज की फूलदानी म गुलदस्ता रखने आई। मुझे रोती देख कर वह मेरे पास आई। मैंने आँसू पोछ लिए।

बायजा बोली, 'हम आपसे कहत रही थी ना मालकिन कि इस कमरे मे ना सोइयो ? पर---"

समय हँसने का नही था। फिर भी मुझे हसी आ गई। अपने से ही मैंने कहा, कितनी भोली है यह बायजा ! मैं किसी अन्य कमरे मे प्रसूत होती, तो क्या मेरे मुन्ने को माकण्डेय की आयु मिलने वाली थी ?

फिर भी बायजा अपनी रट लगाती रही कि कम से कम अब तो इस कमरे को ताला लगाओ। उससे पिण्ड छुडाने के लिए मैंने पूछा, "क्यो ? इस कमरे मे कोई भूत-वूत रहता है क्या ?"

उसने डर कर चारो ओर देखा और फिर सिर हिला कर हा कहा।

अब तो उससे मजाक करने में और भी आनंद मुझे आने लगा।

मैंने पूछा "किसका भूत है री यहाँ?"

कंपित स्वर में उसने जवाब दिया, "अक्कासाहब का!"

अक्कासाहब! राजासाहब की पहली लड़की! अब याद आया, भगवतराव ने ही तो कहा था कि यह बंगला अक्कासाहब के लिए ही बनवाया गया था।

विकृत जिज्ञासा बिल में सोए पड़े नाग के समान होती है। किसी के उसे छेड़ने भर की देरी होती है कि वह फूत्कारता बाहर आ जाता है। बायजा की आगे की बात सुनने को मैं उतावली हो गई।

उसने कहा, "अक्कासाब यही—"

'उन्हें क्या हो गया था?'

भली चंगी जवान छोरी हुती मालकिन! उसे क्या होना जाना था? पर—'वह कुछ रुककर आगे बोली, 'सबने मिल के मार डाला उसे!'

उसकी बात मेरी समझ में नहीं आई।

राजकन्या को कौन मार सकता था? और सबने मिलकर मार डालने का मतलब क्या हो सकता है? किसी रियासत में राजगद्दी के लिए किसी को विष खिलाये जाने की बात तो मैंने सुनी थी। किन्तु विष खिलाया व्यक्ति पुरुष था! अक्कासाहब तो रामगढ़ की उत्तराधिकारिणी नहीं थी, उन्हें राजगद्दी मिलना भी असंभव था! फिर कोई उन्हें मार डाले भी तो क्यों?—

मुझे यहाँ आए इतने दिन—दिन क्या?—वर्ष हो गए। किन्तु किसी ने अक्कासाहब की मृत्यु की बात तक कभी छेड़ी नहीं थी मुझसे! ऐसा क्या हुआ होगा?

बायजा चली गई। मैं कमरे की दीवारों को देखने लगी। सुना था दीवारों के भी कान होते हैं। काश, उनके जबान भी होती—

काई में फँस जाने पर तैरते नहीं बनता, चाहे लाख कोशिश करे। इन्सान बस डूबने ही लगता है। अक्कासाहब की मौत के बारे में सन्देह की काई में मैं उसी तरह उलझ गई। न जाने क्या-क्या सन्देह मन में उठने लगे।

कही एसा तो नही कि भगवतराव अक्कासाहब से प्यार करते थे ? तभी तो उन्होने इस कमरे को बद ही कर रखा था। हो सकता है कि इस कमरे म आते ही उ हे अक्कासाहब की बार बार याद हो आती होगी ! शुरू शुरू म वे रात बेरात उठ कर दरवाजे से आहट लिया करते थे — क्या वे भूत प्रेत आदि मे विश्वास रखते हैं ?

वे दिल्ली से वापस आए तब उनकी बग म भूतप्रेतो के बार म एक पुस्तक अवश्य थी। उस पुस्तक मे कई स्थानो पर उन्होंने कुछ निशान भी लगाए थे, माना किसी वैज्ञानिक विषय का अध्ययन कर रहे हो।

कि तु यदि भगवतराव अक्कासाहब से प्यार करते थे, तो उ होने उनके साथ विवाह क्यो नही किया ?

सागर मे उठे तूफान मे बडे बडे जहाज भी डूब जाते हैं, अपने मन म उठे तूफान मे मेरी विचारशक्ति का भी वही हाल हो गया था। वह लगभग नष्ट सी हा गई।

रात भर मैं तडपती रही। मन मे बस एक ही विचार—

भगवतराव ने पूछा "तुम्हारी तबीयत ठीक नही दिखाई देती ?

मैंने कहा, "मुझे भय लगता है !"

उ होने तुरन्त सिरहाने के पास का बडी रोशनीवाला दिया जलाया और बहुत हो प्यार से पूछा किस बात का डर लग रहा है ?"

'एक युवा लडकी दिखाई देती है मुझे !"

उनके चेहरे पर भी भय की रेखाए साफ साफ उभर आयी। उस अजीब रहस्य का पता लगाए बिना नीद आना मेरे लिए भी सम्भव नही था।

मैंने, मानो सचमुच कोई भूत देखा हो, ऐसा अभिनय करते हुए कहना आरभ किया, वह लडकी मेरे पास आकर खडी हो जाती है और कहती है—मैं अवश्य बदला लूगी। सबने मिलकर मुझे मार डाला है। उसका बदला लेनवाली हू मैं ! तरा बच्चा मैं ही ले गई हूँ !'

मैं नही जानती इतना सब कुछ मैं कैसे कह गई। किन्तु बालत समय मेर बदन पर जबरदस्त सिहरन उठी थी।

मैंने आगे कहा, 'हो न हो, वह लडकी अक्कासाहब ही होगी !'

भगवतराव मेरी ओर अजीब नजर से देखने लगे और लगभग कडकता आवाज में बोले, "सबने मिलकर मुझे मार डाला ऐसा कहती है वह ? उसे किसी ने मारा-वारा नहीं ! वह मर गई !'

"कैसे ?"

नीचे वाला होठ दांतों में दबाकर भगवतराव शून्य दृष्टि से कहीं देखते रहे। आखिर कुछ निश्चय करते हुए मेरी ओर न देखते हुए कहने लगे, "कोई और तुम्हें बात चढा बढ़ा कर बताए इससे तो " वे फिर रुके। शायद कहें या न कहें की उधेडबुन में फँसे हो। अब क्या सुनना पड़ेगा इसकी कल्पना कर मैं भी असमंजस में पड गई। वे बोलने लगे। उनकी आवाज एकदम बदल गई थी।

"अक्कासाहब इसी कमरे में सिधार गई।"

"कैसे ?"

"आपरेशन हुआ था।"

किसने किया था ?"

'मैंने !"

"क्या बीमारी थी उन्हें ?"

'एक अजीब बीमारी थी वह।"

शायद वे बीमारी का नाम बताने में आनाकानी कर रहे थे। इसीलिए मैंने पूछा, 'नाम क्या था उनकी बीमारी का ?'

भगवतराव के चेहरे पर जबरदस्त कसाव आ गया था। उन्होंने कहा, 'प्यार !'

आगे कुछ बताना शायद वे चाहते नहीं थे। किन्तु पूछे बिना मुझ से रहा नहीं जाता था। कडवी दवा गट गट पी जाती है, उसी ढंग से उन्होंने बेबसी में वह सारी कहानी दस बारह वाक्यों में सुना डाली।

अक्कासाहब को सौतेली मां से कोई कष्ट न हो इसी हेतु राजासाहब ने यह स्वतन्त्र बंगला उनकी सेवा में दे दिया था। उन्हें शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देने के लिए एक संगीत शिक्षक आता था। उसका रूप सुन्दर था। दोनों में प्यार हो गया। अक्कासाहब ने आगे चलकर यह बात किसी को नहीं बतायी कि वे गर्भवती हो चुकी हैं। तीन चार माह बाद भंडा अपने

आप फूटा। अक्कासाहब उस संगीत शिक्षक के साथ विवाह करने के लिए तयार थी ! किन्तु—

राजासाहब की शान का सवाल उपस्थित हुआ।

एक रियासत की राजकन्या मामूली संगीत शिक्षक से विवाह करे यह असम्भव माना गया। उस शिक्षक की छुट्टी हो गई। इस रहस्य का भण्डा न फूट इस हेतु उसे कारा म बंद कर दिया गया।

अक्कासाहब गर्भपात करवा कर पहले जसी हो जाने के बाद सब कुछ सामान्य होने वाली था। किन्तु नियत को यह मजूर नही था। आपरेशन मे अत्यधिक रक्तस्राव होकर उसी मे वे—

आग सुनने की हिम्मत मुझ मे नही थी। एक युवती की इस तरह हत्या —उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके गर्भ के भ्रूण की हत्या—और वह भी भगवतराव के हाथो—मेरे पति के हाथो ? मेरा सिर चकराने लगा। एक अपराधी की ओर देखा जाता है उसी नजर से उनकी ओर देखते हुए मैंने क्रोध म कहा, ऐसा करने म आपकी हिम्मत कैसे हुई ?"

"मैं नौकर हू !"

"नौकर गुलाम तो नही होता ! उसी क्षण नौकरी पर लात मारकर आप अलग भी तो हो सकते थे

'वह सम्भव नही था !"

"क्यो नही था ? '

"राजासाहब द्वारा दी गई छात्रवृत्ति के कारण ही मेरी डॉक्टरी शिक्षा पूरी हो पाई थी—मैं विदेश जा सका था !"

'कही और जगह काम करके वह रकम आप अदा कर देते ! किन्तु—"

मेरी ओर नजर गडा कर भगवतराव रूखे स्वर म बोले, 'मैं वसा करता तो तुम्हारी जसी लडकी मेरी पत्नी बनने के लिए सहर्ष तयार न हुई होती। रहने को बगला है, दरवाजे पर मोटर है, दरबारी सर्जन पद को लोगो म मान सम्मान प्राप्त है, इसीलिए तो तुमने मेरे साथ विवाह किया !"

उनकी बाते सुनते-सुनते मुझे क्रोध चढ रहा था। लगा, सीढियो से

दन दन उतर कर दौडते हुए बगले से बाहर हो जाऊ और जोर से चिल्ला कर कहू "तुम्हारा बगला मोटर प्रतिष्ठा तुम्ह मुबारक हो ! मै अब क्षण भर के लिए भी यहा नही रहूगी ! नारी का मन बाजार म खरीदा नही जा सकता, उसे जीतना पडता है !'

किन्तु मैं बुत बनी पडी रही। उनकी बातें बहुत ही कठोर थी, किन्तु एकदम असत्य भी नही थी। उनकी बातो को झुठलाने की हिम्मत मुझ म नही थी। मैं कैसे कहू दावे के साथ कि मैंने उनसे विवाह कवल प्यार क खातिर किया था। भगवतराव यदि दिलीप के समान ही गरीब होते, तो क्या मैं उनकी पत्नी बनने के लिए राजी हो जाती ?

हम ही जानते हैं, वह रात हम दोनो ने कस काटी ! प्रति पल प्रतीत होता कि शायद यह रात कभी बीतने वाली ही नही है। हम दोनो क बीच वसे तो दो हाथ का भी फासला नही था। किन्तु बार-बार मन मे आता कि हम दोनो म दो ध्रुवो की दूरी जैसी फासला पड चुका है। हमारा प्रणयाराधन सुनने की आदी हुई उस कमरे की दीवारें रह रहकर मुझसे पूछ रही थी, 'आज तू मौन क्यो हो गई है ?" क्या उत्तर दू, समझ म नही आ रहा था। आखिर रात बीती ! किन्तु हम दोनो आपस म एक शब्द भी नही बोल पाए।

किसी ने ठीक ही कहा है कि मित्र की मौत से मत्री की मृत्यु अधिक असहनीय होती है। हम दोनो म, हुई अनबन नौकरो के भी ध्यान म आ गई। किन्तु उसका कारण क्या है किसी की समझ म नही आ रहा था। अपने उस मौन पर मुझे ही गुस्सा आने लगा। यू तो लौकिकता की दृष्टि से भगवतराव म किसी बात की कमी नही थी। मुझ स भी अधिक रूपवती लडकी, ज्यादा पढी लिखी पत्नी उन्ह आसानी से मिल सकती थी। तिस पर भी उस रात तक उन्होने कभी भूले स भी मुझे दुख नही पहुचाया था। उनकी पत्नी बनने के कारण मुझे वह सारा वैभव और शान हाथ जोडे सामने खडे मिले थे जिनकी शायद कभी सपने म भी मैने कल्पना नही की थी। तो क्या यह सुख ही अब ददनाक बन रहा था ? या नही ! सुख बिना कारण कभी कोई दर्द नही पैदा किया करता। केवडे की खुशबू स

मदहोश होकर ही कोई केतकी के वन म जाता है, किन्तु वहा फुफकारता नाग देखकर तो क्या भगवतराव दुष्ट थे ? नही ! सारा गाव उनकी सज्जनता का बखान करता रहता है। राजासाहब का स्वास्थ्य खराब होने के कारण सरकारी दवाखाने मे पर्याप्त समय देना उनके लिए असम्भव होता, तो वे दरिद्री और गरीब रोगियो को देखने उनके घर घर जाकर उन्हे दवाइया देते हैं, और उसका कोई पैसा तक नही लेते है। उनमे सहृदयता है, कोई ऐब नही है और वे बुद्धिमान भी है।

किन्तु—

फिर भी अक्कासाहब का उनकी इच्छा के विरुद्ध आपरेशन करने म उन्हे पहल नही करनी चाहिए थी। इसमे कोई आश्चय की बात नही थी थी कि बचपन से हमेशा नजरकद मे पली अक्कासाहब का उस सगीत-शिक्षक के साथ प्यार हो जाता। धनी घर की लडकी का गरीब लडके से प्यार हो जाए तो वह कोई अपराध तो नहीं है और हो भी तो उसकी कीमत एक गरीब का गहस्थी सुख सन्तोप के साथ चला कर अक्कासाहब अदा कर सकती थी, किन्तु इतनी-सी बात पर उसके गभस्थ शिशु की हत्या —अक्कासाहब पर उस समय क्या बीती होगी ? मुझे अपने मुन्ने की याद आ गई ! भगवतराव और मुझ म अनबन तथा मौन कायम रहा।

किसी से सुना कि गाव मे दिलीप का भाषण होने वाला है, तो मैं भी सुनने चली गई। मुझे वहा देखकर शायद सभी चकित थे। अधिकारी, उनकी पत्निया, गाव के बडे लोग इनम से कोई भी तो वहा नही था। वह एक निराली ही दुनिया थी।

श्रोताओ म अनेक लोग मले-कुचले कपडे पहिने हुए थे और चेहरे भी मलिन थे। यह देखकर मुझे बहुत ही अटपटा सा लगा। किन्तु जब दिलीप का धारा प्रवाह भाषण शुरू हुआ तो मैं यह भी भुल गई कि कहा हू और किन लोगो म हू। दिलीप का भाषण मैं पहली ही बार सुन रही थी। वह एकदम सादे सरल उदाहरण दकर अपना विषय लोगो को समझा रहा था। उसका यह वाक्य सुनकर तो मेरी आखे भर आयी—'आज के समाज म जायदाद का ही मूल्य है, इन्सान का नही !" मेरे आसू मानो कह रहे थे,

"जीवन मानवता की पूजा है। किन्तु आज के समाज ने जो पूजा स्थान बना रखे हैं उनमें मानवता को कोई स्थान नहीं। हम सब लोग सच्चे ईश्वर को दूर फेंक कर पत्थर को ही पूजते बैठे हैं।

आंखों के सामने एक दृश्य दिखाई देने लगा। भगवतराव ऊंचे दाम का पीतांबर पहिने पूजा कर रहे हैं। पूजा घर फूलों से लद गया है। मैं उत्सुकतावश आगे बढ़ती हूं और उस अदृश्य भगवान की मूर्ति कैसी है यह देखने के लिए फूलों को एक ओर खिसका देती हूं। एकदम धक से रह जाती हूं। वहां राक्षस के समान लगने वाला एक भाड़े आकार का पत्थर था।

भाषण समाप्त होने के बाद दिलीप मेरे पास आकर कहने लगा, 'सुलू, तुम्हारा मुन्ना चल बसा, यह बात आज यहां आने पर मुझे मालूम हुई।"

मैं सोच रही थी कि वह सांत्वना में और भी कुछ कहेगा। किन्तु वह चुप रहा। मेरी स्थिति तो ऐसी हुई कि गर्मी में बिजली का पंखा पास होकर भी उस चालू करते नहीं बनता हो। कुछ देर बाद उसने कहा, 'एक मुन्ना चला गया तो क्या हुआ? मां उसके लिए रोते नहीं बैठा करती। वह दूसरे बच्चों को ज्यादा प्यार करने लगती है।"

दूसरे बच्चे? दिलीप पागल तो नहीं हो गया? मेरा इकलौता मुन्ना चल बसा और यह पगला—

तभी दो-तीन बच्चे हस्ताक्षर संग्रह के लिए उसके पास आए। एक बच्चे की बही में वह केवल हस्ताक्षर कर गया। किन्तु वह बच्चा संदेश के लिए जिद्द कर गया। "संदेश दीजिए वरना हम सत्याग्रह करेंगे।' उस बच्चे ने कहा तो मैं भी चकित रह गई। दिलीप हंसते हंसते उसकी बही में कुछ लिखने लगा। मैं बहुत ही अधीर हो गई यह देखने कि उसने क्या लिखा है। मैंने उस बच्चे के हाथ से उसकी कापी लगभग छीन ही ली। दिलीप की वह टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट पढ़ पाना शायद उस बच्चे के लिए आसान न होता—किन्तु मैं तो पूरे चार साल तक उसकी [illegible] रह चुकी थी। सो तुरन्त पढ़ पायी— सोना [illegible] लोहा बनो [illegible]

मैं हैरान थी, यह वाक्य [illegible]

मैंने कहा, 'किसका वा[illegible] सूक्ति [illegible]

एक बड़े व्यक्ति का है

"क्या महात्मा गाधी का ?"

"नही !"

"तो ?"

कालिज म वह रूसो किताबें पढने का आदी हो गया था। इसीलिए मैं एक एक नाम लेने लगी—'लेनिन ? स्तालिन ? ट्राटस्की ?"

एक तरफ वह मेरे हर नाम पर 'ना' सूचक सिर हिलाता और साथ ही शेष दो बच्चो की बहियो म सदेश लिखे जा रहा था। लिखना समाप्त होने पर उसने मुझ स कहा, "बताऊ, वह वाक्य किसका है ?"

"जी !"

"मेरा !"

व बच्चे हसने लगे। मैं भी उनकी हसी मे शामिल हो गई। दिलीप को नमस्कार कर वे बच्चे जाने लगे ता मेरे ध्यान मे आया कि शेष दोना बच्चो की बहियो मे लिखे स देश ता मैंने पढे ही नही हैं। मैंने दूसरे बच्चे के हाथ की कापी ली और देखा, दिलीप ने लिखा था अग्रेजी म—Men are not born They are Made 'इ सान पदा हो जाता है, इन्सानियत पैदा करनी पडती है।

क्या ही सु दर विचार थे। दिलीप से मजाक करने के लिए मैंने कहा, "मैं बताऊ यह वाक्य किसका है ? रामगढ रियासत के प्रख्यात नेता दिनकर सरदेसाइ—"

एकदम गलत' उसने बीच ही मे कहा।

मै चकित होकर उसकी ओर देखा लगी तो उसने कहा, ' रूस के एक विश्वविख्यात वज्ञानिक का वाक्य है वह। उसका बाप एक मामूली किसान था !" पलभर रुककर मुझ पर अपनी नजर गडाते उसने कहा, "कल जो रूस मे हुआ वह आने वाल कल हिंदुस्थान म भी होगा ! है न ?"

अनायास ही मैंने सिर हिलाकर सूचित किया, 'हा'। कापी मे लिख उस वाक्य की सारी सामथ्य दिलीप की वाणी म भी नि सन्देह उतर आई थी। मेरा मन गुनगुना रहा था—इ सान पदा हो जाता है, इन्सानियत पदा करनी पडती है।

मैंने तीसरी कापी देखी। दिलीप ने लिखा था—"यह सच है कि इन्सान

केवल रोटी पर जिंदा नही रहता। किन्तु वह रोटी के बिना भी जी नही सकता यह भी उतना ही सत्य है।' मैंने कापी लौटा दी। व बच्चे हम दोनो को नमस्कार कर चले गए।

मैंने गम्भीर होकर दिलीप से कहा, "इन्सान रोटी के बिना जी नही सकता!"

उसने भी उतनी ही गभीर मुद्रा बना कर पूछा, 'तालिया हो जाए ?"

"रोटिया खाने से पहले ही ?"

"अच्छा भई! रोटी खाने के बाद बजाएगे! किन्तु देखो, तुम्हारे पति हैं डाक्टर खाते खाते मैं तालिया बजाने लगा तो समझ लेंगे कि मुझे पागलपन का दौरा आया है। मेरा देहातो का दौरा धरा-का-धरा रह जाएगा और भेज दिया जाऊगा पागलखाने!"

यही दिलीप अभी कुछ ही क्षण पहले जीवन मूल्यो का ऊहापोह पूरी गम्भीरता से किए जा रहा था और अब वही बच्चो की सी अबोधता लिए हसी मजाक भी किए जा रहा है। मुझे लगा, दिलीप दो व्यक्तित्वो वाला है—एक परम गम्भीर और दूसरा हसता खेलता। भगवतराव मे यह खूबी नही। इसीलिए उस रात की बात को लेकर हम दोनो म बोलचाल तक बद हो गई। उनके स्थान पर दिलीप होता तो यह अनबन चौबीस घण्टे भी बनी नही रह पाती।

काश, उनके स्थान पर दिलीप होता—मैं दिलीप की पत्नी होती!

तो मुझे पैदल चलना पडता, मामूली करघा साडी पहिननी पडती, और यह भी सम्भव है कि रूखी बासी रोटी आसुआ म भिगो कर निगलनी पडती! किन्तु—

मैं आज से कही अधिक सुखी भी होती!

दिलीप रात को भोजन के लिए आने वाला था। उसे खाने मे क्या-क्या पसन्द है, मैं याद करने लगी, वह जब कालेज म था—

मुझे याद आया, उसे प्याज के पकौडे बहुत पसन्द हुआ करते थे। मैंने रसोइए स बढिया प्याज के पकौडे बनाने का आदेश दिया।

दिलीप ठीक समय पर आ पहुचा, कि तु भगवतराव राजासाहब के यहा दोपहर मे ही गए, सो अब तक लौटे नही थे।

हम दोनो खुली छत पर बाते करते बठे। मैंने उसके सामने एम्बोस की हुई एक कापी रखी और कहा, ' आपके करकमलो द्वारा इस कापी का उद्-घाटन हो, यही विनम्र प्रार्थना है।"

उसन उस कापी को उलट पुलट कर देखा और पूछा, 'कब खरीदी यह ? '

'शाम को व्याख्यान से लौटते समय।"

"इसका मतलब है, आज का मेरा भाषण बेकार गया।"

असमजस मे मैं उसकी ओर देखने लगी। मेरी ओर देखते हुए उसने शात भाव से कहा, ' यह कापी विदेशी कागज की बनी है।"

मैं बहुत ही शरमिंदा हो गई। इतनी पढ लिखी होने पर भी मुझे कोई चीज खरीदते समय केवल यही ख्याल रहता आया है कि वह सु दर है या नही। अपनी सौ दय दष्टि के चोचले पूरे करते समय मुझे इस बात का कभी तनिक भी स्मरण नही रहा कि हमारे देश के लाखो लोग भूख की आग मे बिलख रहे हैं। अपने आपको धि कारते हुए अपराधी स्वर मे मैंने कहा, ' दिलीप, फिर ऐसी गलती मैं कभी नही करूगी।"

मेरा ही पेन लेकर वह लिखने लगा।'

"एकदम बढिया स देश लिखो भला।" शाम को सभा मे जिद्द कर बैठ उन बच्चो की ही अदा से मैंने कहा। उसने तुरन्त कुछ लिखकर कापी मुझे थमा दी। दो ही शब्द लिखे थे—' मा बनो।"

मुन्ने की याद हो आने के कारण मुझे घुटन सी होने लगी। दिलीप—मेरा बचपन का साथी—मेरे साथ ऐसा क्रूर मजाक करेगा ? कराल काल ने जिसक मु ने को अपने गाल म समा लिया हो उसे ही "मा बनो।" का उपदेश देगा ? यह तो मैंने कभी सोचा भी न था।

फिर भी अति कपित स्वर मे मैंने पूछा, "किसकी मा बनू मैं ?" मैं सोच रही थी कि कम-से-कम अब उसे अपनी भूल का भान होगा। उसने अत्यन्त शात भाव से कहा, "इसका उत्तर मैं कल दूगा। किन्तु एक बात है।"

'क्या ?'

'कल में'

कार का हॉर्न बजा। उसकी बात अधूरी ही रही। मैंने सिर हिलाकर ही उसे हाँ कह दिया।

दिलीप को देखते ही भगवतराव के चेहरे पर कसाव आ गया। भोजन करते समय काफी देर तक वे कुछ भी बोले नहीं। मैं बार-बार आग्रह करके दिलीप को प्याज के पकौड़े परोसने लगी और वह बस-बस, काफी हो गया कहने लगा तब जाकर कहीं जनाब का मौन टूटा, "गांधी के चेलों को प्याज के पकौड़े भाते नहीं होंगे, सुलू !"

"बहुत भाते हैं !" दिलीप ने कहा।

"तो लीजिए न और ! पेट में दर्द होने लगे तो डॉक्टर मौजूद हैं सामने !'

"पेट में दर्द होने की कोई चिन्ता नहीं है मुझे। सवाल मन पर काबू रखने का है। रसना के सन्तोष के लिए आदमी चाहे जितना खाने लगा तो—"

तो क्या होगा ? क्या वह मर जाएगा ?"

जरूरी नहीं ! डॉक्टर उसे बचा भी लेंगे। किन्तु फिर वह आदमी नहीं रहेगा, जानवर बन जाएगा !"

'यही गांधी गलती करते हैं। दो हजार वर्ष पहले शायद यह तापसी दर्शन ठीक रहा होगा। मुझे कई बार लगता है कि गांधी एक असामान्य आदमी है, किन्तु उनके जीवन में एक ही बात की गलती हो गई है।"

"अच्छा ? वह कौन-सी ?"

"उन्हें चाहिए था कि हजार वर्ष पूर्व पैदा होते !"

मुझे लगा कि भगवतराव के इस प्रहार से दिलीप तिलमिला उठेगा। किन्तु उसने बहुत ही शांत भाव से कहा, "आपका हिसाब बराबर है !

'कौन सा हिसाब ?"

यही हजार साल वाला ! किन्तु उसमें एक छोटी सी गलती हो रही है !"

'गलती ?' भगवतराव ने ऐसे पूछा, मानो उनके भीतर अधिकार का

ार जाग उठा हो।

दिलीप ने शात चित्त से कहा, "जी हा, गलती! आपके विचार से ाजी को आज से हजार वष पहले पदा होना चाहिए था। किन्तु सच तो यह है कि वे हजार वष जल्दी पदा हो गए हैं। वे ऐसे राष्ट्र म पैदा ाए जो वेजवाबदार शान शौकत का आदी हो गया है। ऐसे समाज मे मे हैं, जिसने उपनिषदा का सारा जीवन दशन भुला दिया है। ऐसे जमाने ंदा हा गए हैं गाधी जी, जिसमे ऋषी पुरोहित मात्र वन बैठा है और ादुर रणबाकुरो के स्थान पर गुलामो की भीड हो गई है। ऐसे देश म ा होना गाधीजी की कितनी बडी भूल है! जहा दलाली के अलावा कोई ापार ही नही, थोथे खोखले सौन्दर्य के अलावा अय किसी की उपासना ही, और मानचित्र मे अपने देश पर चढ़ा रग देखकर जहा के लोगा का ान खौलता नही, ऐसी पतीस करोड चलती फिरती गुडिया के देश म ाधीजी न जम लिया! कितना गभीर अपराध किया है उन्होन!"

उसके आवेशपूण भाषण के बहाव मे कुछ क्षण के लिए तो भगवतराव ी आ गए। जवाब म कुछ कहने के लिए उनके होठ हिले भी। वह स वकल्लस म भभकने का डर होने के कारण मैंने बीच ही मे दिलीप से कहा, 'तुम्ह छाछ चलेगा न?"

उसने सिर हिलाया।

भगवतराव ने तुरत उलाहना दिया, "सुना है कतिपय गाधी भक्त केवल गाय का ही दूध छाछ लेने का व्रत लिए फिरते हैं।"

दिलीप शात चित्त से छाछ का जायका ले रहा था। अपना वार वेकार गया देखकर भगवतराव मेरी ओर मुड़कर कहने लगे, "अजी हा, हम तो भूल ही रहे थे, कल सवेरे राजासाहब के साथ जाना है हमे।"

"कहा? दिल्ली?"

"जी नही! पहले बम्बई, बाद म जहा भी आवश्यकता हो, हो सकता है इग्लण्ड भी।"

"राजनीति म ऐसी क्या बात हो रही है? क्या पक रहा है?" मैंने पूछ तो लिया, किन्तु तुरन्त ध्यान मे आया कि न पूछती तो ही अच्छा था। दिलीप के सामने रियासत की गोपनीय बातें—

भगवतराव हसते हुए कहने लगे, 'दखिए मिस्टर सरदेसाई, आपक पुरजोर भाषणो के लिए मैं एक नया विषय देता हू। राजा साहब किसी को दत्तक लेन की फिराक म है।"

'दत्तक लेने के ?" दिलीप ने पूछा।

"जी हा।"

'राजासाहब नि सन्तान तो नही। जिसके बच्चे हा उन्ह दत्तक लेने की क्या आवश्यकता ?"

"उनके केवल लडकिया ही तो हैं।"

"लडके भी हैं।"

मैं चकित सुनने लगी। दिलीप ने कहा, "अच्छे खासे चार पाच लाख लडके हैं उनके। राजा साहब अपन हर भाषण मे कहते रहे हैं कि प्रजाजन मेरे पुत्र हैं। अब आप ही हिसाब जोडिए। रामगढ रियासत की कुल आबादी कोई दस लाख। उसमे जो पुरुष हैं वे राजासाहब के पुत्र और—"

दिलीप का वह निमम विनोद पचाने की मन स्थिति मे भगवतराव नही थे। वे मेरी ओर मुड कर कहने लगे, कितने दिन बाहर रहना पडे, कहा नही जा सकता। लम्बी और बडी यात्रा की तयारिया करनी होंगी और वह भी अभी तुरन्त।"

दिलीप ने तुरत हमसे विदा ली। उसके ओझल हो जाने के बाद मन सोचन लगा—मेरी देह पर भगवतराव का अधिकार है। किन्तु मन पर ? कदापि नही। मन तो दिलीप के पीछे-पीछे दौडा जा रहा था।

भगवतराव के प्रवास की तयारी करते समय मेरे मन म यह विचार तक नही आया कि वे कहा-कहा जाने वाले हैं। मन रह रह कर सोचता, 'कल दिलीप पता नही मुझे कहा कहा ले जाने वाला है ? क्या क्या दिखाने वाला है ? 'मा बनो' से उसका क्या तात्पय है ?'

दूसरे दिन सवेरे नौ दस बजे के करीब दिलीप आया। भगवतराव सवेरे की गाडी से जा चुके थे। मैंने दिलीप से कहा, 'क्या कही दूर जाना है ?"

"नही। यही रामगढ म—"

"रामगढ मे अब क्या दिखाने वाले हो ? शिवमदिर देखा हुआ है, सिनेमा थिएटर भी मालम है सारी पाठशालाजा का भी पता है—"

'भई, इसम स एक भी चीज तुम्हे नही दिखाऊँगा, फिर तो बनी न बात ?"

अत्यत कौतूहल से मैं उसके साथ गई। उस दिन बाजार लगा था। बाजार क दिन प्राय मैं गाव म जाती नही थी और कभी गई भी, तो कार से ही जाती थी। पैदल कभी गयी नही थी। आज दिलीप के साथ चलते समय रास्ते, इमारतें, लोग, सभी मुझे कुछ निराला लग रहा था। छत्ते मे मधुमक्खिया होती है, वैसे ही आदमी सर्वत्र भीड कर रहे थे।

दिलीप ने लकडी बेचने आए कुछ गाडीवान मुझे दिखाए। उनमे से एक ने दिलीप को राम राम किया। पास जाकर दिलीप उससे बातें करने लगा। वे सब लोग किसी दूर के देहात से आए थे। दो दिन सफर करके बल थक चुके थे। गाडीवानो के कपडे और चेहरे धूल से सने थे। आज ही सारी लकडी बेच कर पेट पालने के लिए आवश्यक सामान खरीद कर घर लौट सकने का उनका विचार था। किन्तु लकडी खरीदने वाले व्यापारियो ने कम भाव देने की तयारी दिखाकर उनके रास्त मे अडगा डाल रखा था। जो भाव व्यापारी देने की कह रहे थे उसम तो गाडीवान और उसके बलो का भी गुजारा असभव था। उस भाव लकडी नही बेचते, तो यही पर चार दिन पडे रहना पड सकता था और उसका खर्चा उठाने की भी ताकत उनमे नही थी।

दिलीप वहा से चला। थोडी दूरी पर मिरचो के बोरे बेचने लाई कुछ महिलाए पेड के नीचे बैठे ब्यालू कर रहा थी, उनमे से एक ने दिलीप को देखते ही राम राम भया' कहा। मैं हैरान थी। दिलीप इतना लोकमित्र कब से हो गया ?

वह उस महिला से उसके गाव का हाल पूछ रहा था। मेरा ध्यान उन महिलाआ की फटी पुरानी चिथडा जसी साडियो और सामने ही मले कपड मे पडी रूखी बेसन-रोटी पर गया था। वहा से आगे चलत समय दिलीप ने कहा, पाच साल के बच्चे थे तब म ये लोग मेहनत कर रहे हैं, पसीना बहाते रहे हैं। धूप मे भुनत हैं बारिश म भीगते हैं सर्दी म ठिठुरते हैं, इस

तरह बारहो मास इनकी मेहनत जारी ही रहती है। फिर भी दो जून रोटी उन्हे नसीब नही हो पाती।'

हम मिरची-बाजार म गए, वहा तो सब दूर लाल नीखी धूल का ऐसा अबार उठा था कि कब यहा से निकलते हैं ऐसा मुझे हो गया। 'यहा से जल्दी चलो बाबा' ऐसा दिलीप से कहने को मेरे होठ हिले भी थे किन्तु तभी मिरचो का ढर सामने लगाकर बैठी एक बुढिया पर नजर गई। उसके बाल पूरे सफेद हो चुके थे, तन-बदन पर चमडी की झुरिया लटकने लगी थी। आखें धँसी धँसी सी लग रही थी और शायद दमे की मरीज थी—लगातार खासती जा रही थी। मैंने सोचा शायद मैं तो यहाँ से जल्दी भाग भी जाऊँगी, किन्तु इस बुढिया को तो खाँस खास करते अपने मिरचो के पास बठना ही पडेगा। शाम तक सारे मिरचें बेचनी ही पडेंगी। मिर्चे बिके तो घरवालो को भीगी रूखी रोटी तो नसीब होगी। यदि उस बुढिया की जगह म होती—?

एक के बाद एक सारे बाजार हमने उस दिन देख लिए। मेहनत करने के बावजूद भले चगे आदमियो को भी किस तरह दरिद्रता मे ही बसर करना पडता है, इसकी पूरी कल्पना मैं पहली बार उस दिन कर सकी।

सबके कपडे मल कुचले। ठीक ही तो है। कपडो के लिए पसा लगता है, साबुन के लिए पैसा लगता है। सबक चेहरे दीन, दुखी, उदास! मानो 'कल क्या होगा' इस बडे प्रश्न के अलावा अन्य किसी बात से उनके जीवन का कोई सरोकार ही नही।

बगले पर लौटते समय मैंने दिलीप से कहा, 'उत्तर रामचरित म कुछ इसी तरह का प्रसग है न ?''

''इसी तरह का ? '

मेरा मतलब है—राम सीता को पिछले जन्म का चित्रपट दिखाता है।'

राम सीता का चित्रपट दिखाता है! इसका मतलब तो यह हुआ कि दिलीप राम है और मैं सीता ? कितनी अजीब कल्पना है! किन्तु इस समय तो वह मुझे बहुत ही सुखद लगी।

'जानती हो, यह सब मैंने तुम्हे क्यो दिखाया ?' दिलीप ने पूछा।

"हु।"

"कल तुम्हारी उस कापी मे मैंने जो सदेश लिखा था, उसे तुम कापी मे ही पडा न रखो इसलिए।"

दिलीप का कल का सदेश था—"मा बनो।"

इन दीन दुखियो के बारे मे मेरे मन मे असीम करुणा जागी थी। उनकी हालत पर दिल पानी-पानी हो रहा था। एक तरह से देखा जाय तो इस भावना म मा की वत्सलता ही तो थी। मानसिक दृष्टि से तो मैं उन लोगो की मा बन चुकी थी, किन्तु आचरण मे? अपने बच्चो के लिए मा पलक पावडे बिछाती है, हाथो का पलना झुलाती है, खून का दूध बनाती है। क्या इन लोगो के लिए मैं ऐसा ही कुछ मैं कर सकूगी?

मैं असमजस मे पड गई, दिलीप जाने के लिए तयार हो गया। काफी दिनो तक वह देहात देहात मे घूमने वाला था। जाते जाते वह गुनगुनाने लगा— बता दो सखि प्रीत का कौन बजार'

उस रात भर मैं सो न सकी! कोई मेरे कान मे गुनगुनाता जा रहा था, *बता दो सखि प्रीत का कौन बजार?"*

उस गीत मे कवि कह रहा था कि 'प्रीति किसी बाजार मे नही मिलती।' मेरा अनुभव ठीक इसके विपरीत था। उस दिन से मैं दिलीप को और भी ज्यादा चाहने लगी। इतना ही नही, मुझे तो वे दीन दुखी लोग भी मेरे अपने लगने लगे, जिन्हे दिलीप प्यार किया करता था। मुझे बाजार मे ही प्रीत मिल गई थी।

मैंने महिला क्लब मे जाना लगभग छोड सा दिया। वहा की य तरह-तरह की केश तथा वेशभूषाएँ देखकर मुझे लगता—हम पढ़े लिखे तथा धनी मानी लोग उस निर्दयी नीरो राजा जसे ही हैं, जो राजधानी रोम के आग की चपेट म आ जाने के बाद भी सारगी बजाता बैठा था। हमे इस बात की तनिक भी जानकारी नही होती कि उन लोगो का जीवन, जिनकी मेहनत पर हम जीते हैं कितना कष्टमय है।

क्लब म नित्य नए विषयो पर चर्चा होती रहती। वर्ग बहसबाजी के लिए विषयो की कमी कभी नही हुआ करती। कोई नई फैशन की ... पहिन कर आ गई कि उसी का निरीक्षण परीक्षण होने लगता। कोई

पस्थित रही तो उसके परिवार की खामियो की जी खोलकर नुक्ताचीनी होती और उसी नुक्ताचीनी को सभ्रातता माना जाता। कोई इस बात का बहुत ही जायकेदार वणन करती कि कसे उसके पतिदेव शाम को कचहरी से लौटने के बाद चाय देने के लिए उसे अनुपस्थित पाकर नाराज हुए थ। तो कोई अ य महिला हाल ही म प्रकाशित किसी उपन्यास को एकदम अफलातून बताकर उसके कुछ वाक्य नमूने के तौर पर सुनाती थी।

ऐसी बातो मे पहले भी मेरा मन कभी रमता नही था और अब तो उन बातो से मैं ऊब चुकी थी। इन बातो को देखते सुनते मुझे लगता—हम सुखजीवी महिलाए साजशृगार की गुडियाए हैं। पति का प्रिय खिलौना बनकर जीना ही हमारी जिंदगी है। अपनी कोई मजिल नहीं, कोई लक्ष्य नही। अनाडी तथा दरिद्री महिलाए भी समाज का कुछ न कुछ काम किया करती हैं। किन्तु हम ? काच के गमलो मे करीने से सजा रखे पौधो से हम कतई भि न नही। इन गमलो से बाहर जाने की हमे कोई इच्छा नही। हमारे क्लब, हमारी सभाए, हमारे आ दोलन बस कागज के फूलो के समान हैं। इस तरह के विचार मन मे आने पर कुछ ना कुछ कर गुजरने की प्रबल इच्छा हो आती। दिलीप का वह वाक्य कानो मे गूजन लगता—

"मा बना !"

मैं फिर सोचने लगती, दिलीप के साथ देहातो मे काम करना शुरू करू तो कसा रहेगा ? नही ! भगवतराव ऐसी बातो को कभी पस द नही करेंगे। उनके जैसे बडे अधिकारी की पत्नी दीनदुखियो म जाकर इतनी घुलने मिलने लगी तो उनकी प्रतिष्ठा को आंच जा आती। फिर दिलीप का आ दोलन कोई मामूली ता नही। वह तो रियासत क खिलाफ जन जागरण का आन्दोलन है। एक तरह से राजासाहब के विरुद्ध छेडा युद्ध ही है। मैं इस युद्ध म मोर्चा सभालूं तो—

भगवतराव बीच बीच मे बम्बई से आ जाया करते थे। उनके आने पर मेरे मन म उठा तूफान कुछ धीमा पड जाता। फिर भी अक्कासाहब की मृत्यु की घटना को लेकर हम दोनो म हुए झगड को मैंन भुलाया नही था। वह घाव गहरा जा लगा तो था, किन्तु अब उस पर पपड़ी जम आई थी,

घाव भरता जा रहा था। उनके आगमन पर अत्यधिक विचार के कारण गायब नींद मुझे आ घेरती। रात उनके आलिंगन म मन का सारा ऊहा-पोह शात हो जाता। काटो भरी धरती से उठ कर चाद तारा वाले आकाश मे पहुचने का आनन्द प्राप्त होता। किन्तु—

सवेरा होते ही वह मधुर स्वप्न टूट जाता और चार दिन रुककर वे बम्बई चले जाते तो कुछ धीमा पडा वही विचारचक्र फिर तेजी स चलने लगता।

देहातो मे प्रारम्भ जनजागरण के आन्दोलन से बीच मे फुरसत मिलने पर दिलीप भी बीमार मा से मिलने कभी-कभी आ जाता। आने पर वह मुझसे भी मिल लिया करता। मिलता तो घण्टो बातें करता। बातें बिल-कुल मामूली हुआ करती किन्तु दिल हिलाने का सामर्थ्य उनमे था। वह देहातो म फैली भीषण गरीबी का वणन करता तो दत्तक लेने के झमेले मे इग्लण्ड जाकर लाखो रुपये बरबाद करने का राजासाहब का इरादा मुझे सबसे बडा पाप लगने लगता। दिलीप फिर अपने काय के लिए चला जाता तो मन लगातार कोसता—हमारा आज का सारा समाज सुधार जगलीपन पर चढाया मुलम्मा ही है।

एक बार दिलीप ने मुझसे पूछा, समाचारपत्र पढती हो कभी ?"

'जी हा, टाइम्स पढती हू और अपनी भाषा की कुछ साप्ताहिक पत्रिकाए भी—

'तो बताओ, हाल ही मे तुमने ऐसा कोई समाचार पढा, जिसके कारण मन का सारा चैन जाता रहा हो ?"

एसा तो कोई समाचार याद नही आ रहा था। विश्वयुद्ध अपने पूरे जोर पर आने की बात तो पढी थी, लेकिन—

"समाचारपत्र आँखो से नही पढते।' उसन कहा।

मैंने चुटकी ली, 'तो क्या कानो से ?"

' नही, मन से !"

उसने अपने कुर्ते की जेब से एक तह किया अखबार निकाला। भीतर के पृष्ठ पर एक समाचार पर लाल पेंसिल से निशान लगाया हुआ था।

मैंने वह समाचार पढा—'रामगढ रियासत के एक देहात म किसी महिला ने अपने तीन बच्चो को लेकर कुए मे आत्महत्या की।' मैंने सोचा, वह जरूर काई राक्षसी रही होगी, कोई मा ऐसा भी कर सकती है ?'

मत्यु ने मुझसे छीने मुन्ने की याद मैं अभी तक भुला नही पा रही हू और यह एक मा थी जो बच्चो को कुएँ मे फेंक चुकी है।

अखबार उसे लौटात हुए मैंने कहा, 'लगता है महाभयकर महिला होगी वह, वरना पता नही, तीन बच्चो को लेकर कुएँ तक जाने का साहस भी कसे कर पाई ?'

उसने कहा, 'हा, तुम्हारा यह भयकर शब्द एकदम सही है। किन्तु सवाल यह है कि भयकर कौन है !'

'यानी ?"

"तुम्हे क्या सचमुच ऐसा लगता है कि आत्महत्या करने म मजा आने के कारण उसने कुएँ म छलाग लगाई होगी ? उसके लिए जीना दूभर हो गया हागा भूख से बिलखते बच्चो की पीडा देखना-सहना असम्भव हो गया होगा, इसीलिए उसने—'

उसकी आवाज कापने लगी थी। फिर वह जोश से कहने लगा, सुलू, वह आत्महत्या नही, हत्या है!'

'हत्या ?'

जी हा, हत्या! समाज द्वारा दिन दहाडे खुले आम की गई यह हत्या ही है। इस हत्या की जिम्मेदारी रियासत के तमाम सुखजीवी लोगो पर है—बिना थोडा भी परिश्रम किए जीवन भर ऐशोआराम म रहने वालो पर है।' कुछ रुककर आगे बोला, 'सुलू तुम पर भी है!'

उस क्षण तो प्रतिक्रिया म मुझे उस पर क्रोध चढ आया। किन्तु दूसरे ही क्षण लगा, 'दिलीप की बात गलत नही है। अक्कासाहब की मौत की वह बात सुनन के बाद क्या मेरे मन मे भगवन्तराव के प्रति भी नफरत पदा नही हो गई है ? फिर दिलीप को मेरे बारे मे भी वैसा ही लगता हो, ता उसम आश्चय की क्या बात हो सकती है।'

एक भेंट म उसने खलिल गिब्रान की किताब मडमन जानबूझ कर मुझे पढने को दी। प्रारम्भ मे तो किताब ठीक ठीक तरह से समझ मे नही

आयी। किन्तु दो-तीन बार पढने पर उसका हर शब्द मुझे बहुत ही भाने लगा। पहले ही पृष्ठ पर लिखे वाक्य तो मुझे मेरे अपने लिखे वाक्य जैसा लगने लगा—

I woke from a deep sleep and found my masks stolen
for the first time the Sun kissed my own nacked face
and my soul was inflamed with love for the Sun I wanted
my masks no more

मुझे लगा ये वाक्य मेरे अपने लिखे हैं—मैं अपना अनुभव बता रही हू, जिधर देखो, ढोंग-ढकोसला का बाजार गर्म है, मुखौटो का साम्राज्य है। लोग चेहरे पर मुखौटे लगाए फिर रहे हैं। शरीर की वासना पर प्यार का मुखौटा है। बगैर मेहनत किए ऐश करने पर संस्कृति का मुखौटा है। कही धर्म का, कही शान प्रतिष्ठा का मुखौटा असलियत को छिपा रहा है। इन मुखौटो के पीछे छिपाए गए जीवन के सत्य को आम आदमी किस तरह देख पाएगा ? दिलीप ने मेरे जीवन मे आकर मेरे चेहरे पर लगा मुखौटा बेरहमी से उतार फेंका है। अब—

मुखौटा चढाकर ही अपना प्रतिबिंब देखने के आदी बने आदमी क्या अपना असली चेहरा आइने मे देखने की हिम्मत कर सकते हैं ?

मैंने वह हिम्मत की। तब बीसियो प्रश्न सामने मुह बाए खडे हो गए—

आदमी जीता किसलिए है ? क्या केवल अपने लिए ? नही न ? वह थोडा समाज के लिए भी जीता है ! है न ? ऐसा है तो अपने समाज के लिए, आसपास के हजारो अभागो के लिए मैंने क्या किया है ? दादा की शिक्षा-दीक्षा मे मैंने सीखा कि भगवान आकाश मे नही है। नारी तथा पुरुष दोनो को समान अधिकार है शिक्षा ग्रहण करने का, यह मानकर मैंने अधिकार भी पा लिया। नानी का दवाई का बटुआ और गाधी का चरखा दोनो को एक-सा ही मानकर देश मे चल रहे आन्दोलन की मैंने उपेक्षा की। किन्तु यह सब करने के बाद मैंने क्या पाया ?

मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है ? मैं किसलिए जी रही हू ? क्या जी रही हू ?

ये प्रश्न मेरे मन को भौरे के भाँति कुरेदे ही चले जाते, लेकिन—

रामगढ म हैजे की महामारी फली। उस वप गर्मी बहुत ज्यादा पड़ी थी। हमारे बगले के सामन वाले तालाब का पानी इस तरह कभी घटा नही था। हैजे का समाचार मिलते ही दिलीप आ पहुचा, उसने स्वयसेवको का एक दल बनाया। भगवतराव तब बम्बई गए थे। सोचा, कि उनसे अनुमति लेकर क्या न मैं भी उस स्वयमेवक दल मे शामिल हो जाऊ? किन्तु दूसरे ही क्षण पढ़ी लिखी नारी का अभिमान मन मे जागा। भगवतराव कहा सारी बातें मेरी अनुमति लेकर करते हैं? फिर क्यो इस मामले मे उनकी अनुमति की प्रतीक्षा मे समय नष्ट किया जाय?

स्वयसेविका के नाते काम करते समय प्रारम्भ मे तो शरीर ऊब-सा जाता। किन्तु मन म उत्तरोत्तर अधिक चाव खिलता, दूसरो के लिए जीन मे एक निराला ही आनन्द मिलता है। मा बनन म मिलता है न, ठीक वैसा ही!

महामारी काबू मे आ गइ। उसी समय भगवतराव भी बम्बई स आ गए। रात एकान्त म मुलाकात होते तक वे मुझसे बिल्कुल बोले नही। मैं हैरान थी कि आखिर बात क्या हो गई है? रात मे उन्होने पहला प्रश्न किया, सुना है आप स्वयसेविका बन गई हैं?'

मैंने हसकर कहा, 'जी हा!'

क्यो?'

सेवा क्या की जाती है? आत्मा के सन्तोष के लिए!' मैं कहन ही जा रही थी, किन्तु कहते न बना। मैंने कहा, 'मैं बदल मे काम कर रही थी!'

बदले मे? किसके बदले म?'

'आपके! आप यहा के मुख्य डॉक्टर हैं, किन्तु गाव म हैजे की महामारी भीषण रूप म फल रही थी और एक आप हैं जो बम्बई मे राजासाहब के दत्तक विधान की राजनीति करत बठे थे। ५८ लोग करत, इसीलिए—'

मैं लोगा का नही, राजासाहब बनी, सो लागा क दुख-दद देखकर

पूरी रफ्तार से भागी जा रही कार मे यकायक ब्रेक लगाया जाय उस भांति वे अचानक रुक गए।

क्रोध मे मैं आपे से बाहर हुई जा रही थी, किन्तु भगवतराव शात भाव से आगे कहने लगे, 'अब तक हुआ तमाशा काफी है। यहा मुझे इज्जत के साथ जीना है। कल से तुम्हारी समाज सेवा बद—उस दिनकर मे मेल मुलाकातें बद!'

उन्होने सिरहाने की बत्ती तुरन्त बुझा दी। मन बगावत कर रहा था—यहा से भगवतराव के जीवन से दूर भाग निकलू, दिलीप जिस बस्ती मे रहता है, वहा जाकर रहू। किन्तु तन साथ नही दे रहा था। मन मसोस-मसोस कर भीतर फूट फूटकर रो रहा था।

'मैं आजाद हू। मैं स्वाधीन हू!'

वे तो खुर्राटे भरने लग थे, किन्तु मैं जाग रही थी।

भगवतराव आम तौर पर खुर्राते नही थे, किन्तु बीच बीच मे खुर्राटे भरने की मद अजीब कणकटु आवाज—

बचपन म सुनी एक कहानी याद आयी, शेर अपने शिकार को तुरन्त मार नही डालता। वह उसे जीत जी मुह म उठा लेता है, अपनी गुफा म ले जाकर धर देता है और बाद मे आराम से सो जाता है। भय के मारे अधमरा प्राणी उसके खुर्राटे सुनता वही पडा रहता है। शेर सोया होता है। किन्तु फिर भी शिकार की हिम्मत नही होती कि वहा से भाग जाए।

आधी रात बीते मेरी आख झपकी। मैं एक सपना देखने लगी। दिलीप मुझ सदेश लिखकर दे रहा था— मा बनो!'

मैं चौक उठी। जाग कर देखा, मेरे हाथ पर—कुछ तो भी—

वह भगवतराव का हाथ था। उन्होने मेरा हाथ कस कर दबाना शुरू किया। उस स्पर्श स वे अपना प्यार जता रहे थे—

मन म आया कि उनका हाथ जोर से झटक दू। किन्तु वह साहस भी मैं कर न सकी।

काफी दर तक मै चैन स सो नही पायी। मन भगवतराव के विरुद्ध बगावत कर रहा था किन्तु तन—

अधेरे म ही मैं छत पर जा खडी हुई। अधेरे म तालाब भी डूब गया

था और लगता था कि लबालब भरा है, पौ फटते तक मैं वहीं बैठी रही। आराम कुर्सी मे पडे पडे पता नही कब आख लग गई। पुरवैया के झोको ने मुझे जगाया। सामने देखा—सवेरा हो रहा था।

और तालाब ? वह लबालब भरा नही था। उलटे, पानी बहुत कम हो जाने के कारण तालाब के भीतर की बडी-बडी चट्टानें उभर कर दिखाई देने लगी थी। निरावरण खुली, काली स्याह चट्टानें ! बदसूरत, भीषण, डरावनी चट्टानें ! विश्वास नही होता था कि इसी सुन्दर तालाब के पानी मे वे अब तक छिपी थी !

भगवतराव फिर बम्बई गए। विश्वयुद्ध भभक रहा था और फिर भी राजासाहब का दत्तक के लिए इग्लण्ड जाने का इरादा पक्का हो गया था। भगवतराव भी साथ जाने वाले थे।

मन अत्यधिक उदास हो चला था। कभी लगता कि पीहर जाकर दादा से सारा हाल जी खोल कर सुना दू। कभी सोचती, नही, एसा करने पर अपनी बिटिया ससुराल म दुखी होने की बात जानकर दादा को बुढापे मे और कष्ट होगा। और आखिर वे भी भगवतराव से क्या कह पाएगे ? फिर दुनियादारी के लिहाज से देखा जाय, तो भगवतराव ने मेरा क्या अप राध किया था ? शरीर पर हुए जख्म दिखाए तो जा सकते हैं। किन्तु मन पर लगे घावो को कोई कसे दिखाए ? फिर मेरे तो कोई जख्म भी नही हुआ था, बस केवल मूदी चोट मैंने अवश्य खाई थी !

दिन बीतते जा रहे थे। एक दिन मैं दिलीप की माताजी का स्वास्थ्य देखने गई। बेचारी बहुत ही जजर हो चुकी थी। उन्ह रक्तक्षय हो गया था। उसमे दिलीप की चिन्ता भी उन्हें खाए जा रही थी। बढा चढाकर बातें बताने वालो का क्या, जो मन म आया बक दिया। माताजी के मन पर क्या बीतती होगी और उनकी चिन्ता का मूल्य क्या है, इसे सोचने की भी उन्ह कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती। कोई आकर कहता—दिलीप ने परसो एक देहात मे राजासाहब के विरुद्ध भयकर भाषण किया। अब वह गिरफ्तार हुए बिना नही रहेगा। दूसरा आ कर कहता, उसने राज-द्रोह किया है उम्रकद से कम सजा क्या होगी !—

बुढ़िया बेटे की चिन्ता म सूख कर काटा हुई जा रही थी। किन्तु चिन्ता करते बैठने के अलावा वे कर भी क्या सकती थी ? अय कोई चारा भी तो नही था। मुझे देखते ही उन्होने पूछा, "बेटी, मैं भगवान से बार-बार हाथ जोडकर यही दुआ माग रही हू कि मुझे उठा लें और मेरी उम्र दिनू को दें ! किन्तु भगवान मेरी एक भी नही सुनता।"

तुरत मुझ से पूछा, "अब दिनू की तबियत कैसी है ?"

मुझे तो पता भी नही था कि वह बीमार है। मैंने चकित स्वर म पूछा, "कहा है वह ?"

रामगढ के पास ही कोई चार मील पर ओढा नामक एक गाव था। सुना कि वही दिलीप पिछले दस-बारह दिनो से बुखार मे पडा है। बुढिया ने कहा, "चार मील मेरे लिए तो चार सौ कोसो के बराबर हो गए हैं आज। फिर बारिश चल रही है। उस गाव के पास का नाला भी बहुत तेज बहाव वाला है और खतरनाक भी है। कब बाढ आ जाए कोई भरोसा नही। दिनू को अपने भगवान की भभूत भेजना चाहती थी मैं। किन्तु—"

मैंने उनसे वह वभूत माग ली। सोचा कि किसी नौकर क हाथ भिजवा दूगी। किन्तु घर लौट आने पर विचार आया कि दिलीप इतने दिनों से बीमार है, क्यो न मैं ही उसका हाल पूछने के लिए हो आऊ ?

दा बजे बाद मैं अकेली पदल निकली, रास्ता पूछते-पूछते चलती ही गई। रामगढ से दा ढाई मील पर एक नाला था। उसमे मुश्किल से टखनो तक ही पानी था। गाव की सीमा के पास मैं पहुची तो हल्की बूदाबादी होने लगी थी। छत्री खोलकर मैं चलने लगी। मन के फलक पर कल्पना की तूलिका से मैं चित्र बनाती जा रही थी दिलीप को मुझे देखकर कितना आश्चय होगा। वह पूछेगा, "बारिश म क्यो चली आई ?"

मैं जवाब दूगी, "वसतसेना भी तो बारिश मे ही—"

नही-नही ! इस ससार म ऐसा भी भला कहा जा सकता है ?

मैं उस गन्तव्य को पूरा नही कर सकी।

दिलीप का सही ठिकाना ढूढते नाको म दम आ गया। लगभग सारा गाव मैंने छान मारा। और इस तरह घूमते हुए उस गाव म मैंने क्या-क्या नहीं देखा ?—एक चाय की दूकान पर लोग जमीन पर ही चाहे जस वठे

कान टनी प्यानियो म चाय पी रहे थे। उनके पास ही शराब का मयखाना था—वहा नो लोग ऐसे पड़े थे जसे सडक पर कुत्ते। उसम आगे एक मकान म सर पर जटाजूट जगल वने बालो वाली एक बुढ़िया किसी का गालिया रहा थी। ये गालिया सुनना मरे लिए असहनीय था। जरा दूरी पर एक खेत म दो लठतो म वस अब ठनने ही वानी थी। इस तरह के आदमियो म घुनमिल कर रहना मेरी राय में एक सजा थी। दिलीप की झोपडी में कदम रखत ही मैंने अपनी यह राय उसे सुना भी दी। उसने हसत हसते उत्तर दिया इन्सान पैदा होते हैं इन्सानियत पदा करनी पडती है।

उसने मुझे अपना स्कूल दिखाया। उसमें सारे बच्चे किसानो के ही थे। सभी काफी होनहार लगत थे। उनमें से पाच-सात बच्चो ने तो मुझे वह देखा महात्मा आया कविता भी गाकर सुनायी। कविता अच्छी थी, बच्चा के गाने का ढग भी इतना अच्छा था कि चन्द क्षणो पूव देखे सारे दृश्या का मैंने भुला दिया।

इन्सानियत पदा करनी पडती है। कितना सत्य है।

सामुदायिक प्रणाली से एक बागान तयार किया था। वह दिखाने के लिए दिलीप मेरी अगवानी करने लगा। मैं मना कर रही थी। मैं नही चाहती थी कि बीमारी के बाद उसे चलने का कष्ट दिया जाए इसीलिए कहा, तुम बुखार से बीमार थ न ?

"मलेरिया से कौन डरता है ? उसने उत्तर दिया।

'किन्तु—'

'सुलु तुम्हें शायद मालूम नही होगा हमारी इस रामगढ रियासत में कई गाव ऐसे हैं जहा मलेरिया हमेशा बना रहता है। बदन बुखार से टूटता है और फिर भी लोगवाग बेचारे काम करत रहते ही हैं—बारहो मास यही हाल रहता है—

सोचा, दत्तकविधान के लिए लाखो रुपय बरबाद करने वाले राजा-साहब क लिए इस मलेरिया का निर्मूलन करना भी क्या असम्भव है ?

दिलीप ने कहा, मैं तो भूल ही गया कि मैं बीमार था।'

'मेर आने के कारण ?"

'नही ! सारा ध्यान कल होने [illegible] पर

कल रामगढ मे हमने एक विशाल सभा का आयोजन किया है। पास पडोस के लगभग पच्चीस-तीस गाव के लोग सभा में आएगे। किसानो को रियायत देने के लिए राजासाहब अपना लदन जाने का कार्यक्रम रद्द करें, ऐसी माग करने वाले हैं हम।

"उसमे चिन्ता की क्या बात है ?"

"काफी है। यह आन्दोलन प्रारम्भ होने के बाद बहुत लोग हमारे साथ हो गए है। पिछली बार मैं उत्तर भारत गया था तब इधर कुछ छात्रो को सजाए दी गई थी। उनमें से एक विद्यार्थी—जो यहा की राजकन्या अक्कासाहब को सगीत शिक्षा देने के लिए बुलाया गया था—अब जेल से रिहा कर दिया गया है। वह भाषण क्या देता है, बस तोप ही दागता है।

बागान देखकर मैं अपनी सारी थकान भूल गइ। वह तो जीताजागता महाकाव्य था।

झोपडी में लौट आने के बाद मैंने उसे दिलीप की मा द्वारा भेजी भभूत की पुडिया दी। उसने खोलकर भभूत अपने माथे पर लगा लिया।

मैंने मजाक मे कहा, "तुम भगवान को मानते हो ?"

"नही !"

"फिर यह भभूत माथे पर क्यो लगा ली ?"

'इसलिए कि मैं इन्सान को मानता हू। यह भभूत मा ने भेजी, और तुमने भी इतनी आस्था के साथ मुझे यहा ला कर दे दी। तो—"

उसने चाय बना कर दी। अब शाम होने को थी। मुझे लौटना जरूरी था। हम दोनो झोपडी मे वापस आए तब आकाश मे काली-काली घटाए उमड आयी थी। सामने पहाड पर जोरो की वर्षा होती दीख रही थी। शीघ्र ही मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ होने के आसार साफ दिखाइ देने लगे थे। इसलिए दिलीप ने कहा, तुम कल यहा से जाओ तो क्या हर्ज है ? '

'ना बाबा ना ! अभी ही चली जाऊगी मैं।' मन का डर मैं उसे बता न सकी। भगवतराव बम्बई से कब लौट आएगे, कोई भरोसा नही था।

नाले के पार तक मुझे विदा करने दिलीप आ रहा था। रास्ते मे कितनी ही बार मैंने मुड मुडकर उसकी झोपडी की ओर देखा। मुझे लगा,

हो न हो, भगवनराव के बगले की अपेक्षा इस झोपडी म नि सन्देह कुछ बात अधिक है। मन उल्लास मे चहचहाता था—काश, तुम इस झोपडी की मालकिन बनी होती।"

बीमार होने पर भी दिलीप काफी तेज चल रहा था। मैं ही धीर चल रही थी। झोपडी ने मुझे ऐसा मोह लिया था कि पर जल्दी-जल्दी उठते ही न थे।

नाले के किनारे पर पहुचते ही दिलीप ने कहा, "सुलू, देखो नाल म पानी चढ़ता जा रहा है। जरा सभल कर उतरना।"

मैंन देखा, पानी पहले की अपेक्षा काफी चढ गया था।

"तुम्ह उस पार पहुचा कर मुझे लौटना होगा। पुल नीचे की ओर यहा स कोई मील-डेढ मील पर है। इसलिए—

वह पानी मे उतर कर चलने लगा। मैं इधर से गई, तब टखने तक हा पानी था, अब घुटनो तक चढ़ आया था। मैं आहिस्ता स पानी म उतरी। किन्तु मन एक अजीब उदासी स भर गया था। शरीर सुन्न पडता सा लग रहा था। जल्दी पाँव उठाने की इच्छा ही नही हो रही थी। बीच प्रवाह मे एक छोटी-सी चट्टान थी, मैं उस पर जा खडी हो गई। पानी को देखा। भवर बनाती बहिया चढ़ रही थी। दिलीप परली पार पहुचा और उसने पीछे मुड कर देखा। मुझे बीच ही मे खडी देख कर वह चिल्लाया, 'सुलू, जल्दी चलो, जल्दी-जल्दी पर उठाओ!'

पता नही मुझे क्या हो गया था, मैं टस से मस न हुई। दिलीप पागल की तरह चीखा, भागो, भागो। बाढ़ का पानी आ रहा है!'

जीवन म एक क्षण अवश्य आता है जब आदमी मत्यु की तनिक भी परवाह नही करता। उस समय मैं यदि बोल पाती, तो दिलीप से अवश्य कहती, 'तुमने कब प्राणो की परवाह की है ? हमेशा जान की बाजी लगाते आए हो न ? मैं भी तुम्हारी ही शिष्या हू!'

सामने से दिलीप वापस पानी म उतर आया। जगली सुअर की तरह पानी की एक बडी लहर ने मुझे लपेट कर धक्का मारा। मैंने उसे अनुभव भी किया, किन्तु आगे क्या हुआ मुझे पता नही।

आख खुलने पर कलेजा धक धक कर रहा था। मैं कहा हू समझ मे'

नही आ रहा था। कही स्वग मे तो नही हू ? जी हा, वह स्वग ही तो था। दिलीप की गोद मे मेरा सिर था। मैंने फिर आखें मूद ली। मैं मृत्यु का उपहास कर रही थी, 'आओ, मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हू, अभी, इसी क्षण!' किन्तु मृत्यु *आमन्त्रित अतिथि नही होती।* वह तो बिन बुलाए मेहमान की तरह ठीक उस समय आ धमकती है जब उसका आना किसी को भाता नही।

दिलीप की गरम सांस को मैं अपने गालो पर अनुभव कर रही थी। क्या उसके होठ भी मेरे होठो की ओर झुके आ रहे थे ? मेरा चुवन लेने का मोह दिलीप को हो आया था ?

विचार भी कहा भटक जाते हैं आदमी के! मेरे होठ भी दिलीप के चुम्बन के लिए आतुर हो गए थे। किन्तु मेरी अन्तरात्मा कह रही थी—'नही, दिलीप इस मोह का शिकार नही हो सकता। मेरा दिलीप—'

दिलीप के होठो ने मेरे गालो को स्पश नही किया, किन्तु उनका स्पर्श मेरे कानो को अवश्य हुआ। मन उत्कट आनद और असीम दुख से एक साथ भर गया। दिलीप ने धीरे से पुकारा 'सुलू!'

मैंने आखें खोली। उसने हसते हुए कहा, 'अब कही मेरे जी म जी आया। तुम्हे आज हो क्या गया था ? मैं इतना चिल्ला चिल्ला कर पुकार रहा था और तुम पागल जसी नाले की बीच मझधार मे खडी ही रह गई! डूबत-डूबत बच गई हो!'

'किसने बचाया मुझे ?'

'भगवान ने! एक आश्चयकारी चमत्कार हो गया। अचानक जोर की कडकडाहट हुई और नाला एकदम सूख ही गया! 'सत तुकाराम' चित्रपट म ऐसे कई चमत्कार देख कर म हसा करता था। किन्तु आज मुझे विश्वास हो गया कि—'

'दुनिया मे भगवान हैं! हैं न ?'

हा, हैं तो!' उसने गभीर भाव से कहा। मैंने भी उतनी ही गभीरता से उसकी गोद से और भी लिपट कर कहा, 'उसकी गोद मे सिर रख कर सोने पर इतनी गहरी नीद आती है—'

मैंने फिर आखें मूद ली। दिलीप ने किसी को पुकार कर दूध लाने के

लिए कहा। एक नन्हे बच्चे के समान मैंने उसके हाथों दूध पी लिया। मुझे काफी ताजगी अनुभव लगी।

मेरा बिस्तर क्या था, दो कम्बल पर एक खादी की चद्दर और ओढ़ने के लिए एक कम्बल, बस! किन्तु भगवतराव के बंगले में जो शीशम के पलंग और उन पर हाथ-हाथ मोटा गद्दा था, उनसे कहीं अधिक सुख इस बिस्तर में मिल रहा था। एक कोने में एक चटाई पर कम्बल बिछाते हुए दिलीप ने कहा, 'अभी तुम छोटे बच्चे के समान दूध पी चुकी हो न?'

'हूं!'

तो अब अच्छे बच्चे के समान चुपचाप सो भी जाओ। व्यर्थ विचार करती मत बैठो, समझीं?'

'किन्तु छोटे बच्चे गाना सुने बिना सोते नहीं!'

मेरे जिद्द करने पर वह एक कविता गाने के लिए तैयार हो गया, लेकिन पूछने लगा, 'क्या गाऊं? लोरी?'

कोई प्रीत का गीत सुनाओ!'

पागल हो सुलू! भई, प्रीति क्रान्ति का ही तो दूसरा नाम है।'

उसके कहने का तात्पर्य समझ में नहीं आया। मन कह रहा था मैं अप्सरा हूं। किन्तु क्रान्ति एक कली मात्र है। प्रीत गुलाब के फूल जैसी है, किन्तु क्रान्ति यज्ञवेदी की धधकती आग! दोनों के मुखड़ों में दिलीप को समानता क्यों दिखाई देती है?

सुनो, यह पृथ्वी का प्रणय-गीत है, सुनाता हूं!' कह कर वह गाने लगा—

'चले जा रहे बीतते सकड़ों युग
कितनी करोगे, रवि, वचना?
कक्ष में कब तक घूमूं तुम्हारी
कितनी करूं प्रीत की याचना!'

इन पंक्तियों को सुनते ही मुझे लगा—दिलीप ने मेरा मन जान लिया है। इसीलिए उसने यह कविता गाने के लिए चुनी। हमारा परिचय बारह वर्ष से है। तभी से उसके प्रति मन में एक अजीब आकर्षण संजोए मैं चली आ रही हूं। बीच में वह मुझसे दूर चला गया था तो मुझे लगा कि मैं

उसकी कक्ष से छिटक गई हू। किन्तु—परसो उसके वापस आते ही मन फिर उसकी प्रदक्षिणा करने लगा।

'कितनी करू प्रीत की याचना ?'

नही नही ! लगता है यहा कवि ने कुछ भूल की है ! प्रीति की याचना इतनी आसानी से कभी नही की जाती। वह होठो तक आती तो है, किन्तु शब्दो मे प्रकट नही होती उस याचना की वेदना—

दिलीप गा रहा था—

'नही ज्ञात मुझको कहा जा रही हू
यही ज्ञात मैं हू पीछे तुम्हारे

मुझे लगा वह मेरी मन स्थिति का ही अचूक वर्णन कर रहा है ! उस दिन हमारा वह बाजार मे सैर करना, अभी कुछ क्षणो पूर्व हमारा नाले के पानी मे से चलना—

'बडे रौब मे ऐंठ सजधज सभी ये
उल्का-कुसुम सिर पर बरसा रहे !'

भगवतराव—उनका सारा वैभव—उनका वह शानदार बगला—वह रौब डालने वाली कार—मेरी आखो के सामने पल भर मे अनेक चित्र तेजी से उपस्थित होते गए।

'धिक् दुबलो का शृगार ! इससे
सहनीय दूरी तुम्हारी रहें ।'

मेरे मन मे कही इसी बात की वेदना तो नही थी ?

कविता की अन्तिम पक्तिया सुनते समय मैंने तो अपनी सुधबुध बिसार दी—

'तद्रूप हो रुद्र छवि मे तुम्हारी
लगता गले मिल होऊ सुलीना
तेरे लाल होठो की वह आग पीते
करपाश मे तीव्र हो वेदना !'

दिलीप रुका। झोपडी मे एक दिया धीमी बाती किए जल रहा था। किन्तु मुझे प्रतीत हुआ, मानो लाख लाख दीपो की रोशनी मे जगमगाते किसी राजमहल मे सो रही हू। मन बार बार जता रहा था यह पृथ्वी का

प्रणय गीत नही। मुझ जैसी अनेक युवतियो का यह भाव गीत है। आज घर घर म पढी लिखी युवतियो का यही आक्रोश है।

विचार चक्र तेजी से घूम रहा था। मैं कितनी ही देर तक सोचती पडी थी। मैं इतनी उच्च शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हू। बुद्धिवादी पिता की इकलौती सन्तान हू। फिर भी मेरा प्रेम क्यो नही सफल हो पाया ? शरीर का प्रम एक स और मन का प्रेम किसी और से ! कितनी अजीव और जानलेवा घुटन है यह !

घुटन ? नही। यह तो विडम्बना है ! काश, मैंने भगवतराव से विवाह का प्रस्ताव उसी समय ठुकरा दिया होता !

मैं नही जानती थी कि दिलीप कहा है। यह भी नही जानती थी कि वह ऐसी हालत में मुझे स्वीकारेगा या नकारेगा !

कही ऐसा तो नहीं कि मैंने भगवतराव से जो प्यार किया, वह शरीर तृष्णा का ही एक मायाजाल था ?

समय रहते मैं दादा से कह देती कि मुझे दिलीप से प्यार हो गया है, वो शायद वह मुझे पागल करार देते। वे तो सदा यही चाहते थे कि अपनी सुलू को रईस पति मिले। बुद्धिवादी होने पर भी दादा की चाह यही थी। अमीरी मे ही सुख की कल्पना वे करते थे। अन्यथा—

दादा काश, आप समझ पाते कि अमीरी म केवल शरीर को सुख मिल पाता है। किन्तु मन फिर भी तडपता ही रहता है। जिनका मन मर चुका होता है व ही आदमी वभव मे आनन्द लेते जी सकते हैं ! मैं उस तरह का जीना जी न सकी। मैं आपके सस्कारो मे पली थी, दिलीप के सहवास मे बढी थी। बचपन से मैं यही रटते आई थी कि एक निरपराध पक्षी की हत्या दिखाई पडते ही वाल्मीकी जसा ऋषि भी अपनी तपोसाधना त्यागकर शाप देने क लिए उद्यत हो जाता है। मैं भगवतराव के साथ एकरूप नही हो सकी। कोशिश तो की किन्तु बात बन न सकी। उनके समान बुद्धिमान आदमी राजदरबार की सनक पर नाचनेवाली कठपुतली बनकर जिए, दुनिया के बाजारा म अपने आपको बेचने खडा हो जाय, इसका खेद मुझे सताने लगा।

झोपडी मे और बाहर सवत्र सन्नाटा छाया था। उस सन्नाटे म लगा

कोने कोने में भर जाता है, तो विचारशक्ति को अपनी आखें बन्द करनी ही पडती हैं।

तन थर्रा रहा था। उसके कपन मे उत्कण्ठा थी और भय भी!

फिर भी मैं धीरे स उसके पास खिसकती जा रही थी।

दिलीप के एकदम करीब आ जाने पर—

एक बार, केवल एक ही बार मैं उसका चुम्बन लेनेवाली थी, उसकी एक स्मति को चिरतन सजोई रखने के लिए! अकेले मे अभिशाप के साथ अपने आपसे उसे अपना कह सकू, इसलिए!

सोचा था तितली फूल पर बठती है, उसी भाति बस उसके होठो पर अपने होठ रखूगी और तुरन्त पीछे हट जाऊगी। अन्यथा वह जाग जाएगा और फिर

नही! चुम्बन ऐसे लेना होगा कि दिलीप को भी उसका पता ही न चले।

मैं झुकी! अब बस मेरे होठ उसके होठो को स्पश करने ही वाले थ कि

दिलीप ने एकदम करवट बदल ली। करवट बदलते समय वह बुद बुदाया 'सुलू, भागो! भागो!'

मैं चौककर पीछे हटी। उसने कसे जान लिया कि मैं मोह की शिकार हो गई हू?

नही ऐसा नही हो सकता! शायद वह सपने म नाले की बाढ देख रहा होगा और शाम वाला प्रसग याद आकर ही मुझे भागो भागो कह रहा होगा!

जो भी हो, फिर उसका चुम्बन लने की हिम्मत मैं कर न सकी।

मैंने उसके चरणो पर आहिस्ता से माथा टेका। उसके होठो के अमत का लाभ मुझे वहा मिला। मन शात हो गया।

प्रात जागी तो झोपडी के फाटक से सूर्योदय का दृश्य बहुत ही रमणीय दिखाई दे रहा था, दिलीप की गाई वह कविता याद आने लगी पृथ्वी का पृथ्वी का प्रणयगीत! मैंने जब कहा कि मैं उस कविता को कठाग्र करने वाली हू, दिलीप ने अपनी देवदारी सदूक से एक कापी निकाली। वह चाय

बना रहा था, तब तक मैंने वह कविता लिख ली।

चाय के बाद दिलीप ने कहा, 'देखो सुलू, थोडा ज्यादा चलना पडे, तब भी हम लोग अब पुल पर से हो जाएगे! वरना तुम फिर नाले मे खडी रह जाओगी—फिर बाढ का पानी उछलता आएगा—किन्तु अब तो तुम्हे फिर बाहर निकाल लेने की शक्ति अपने अन्दर नही रही लगता है।'

झोपडी से चलते समय मैंने दिलीप से कहा, तुम्हारी एक फोटो चाहिए मुझे!'

'ठीक है। यह मैं खडा रहता हू फोटो के लिए!'

'मेरे पास कमरा कहा है?'

'उसके लिए मैं भला क्या कर सकता हू?'

'तो क्या तुम्हारे पास अपनी एक भी फोटो नही है?'

'डाक्टरनी जी, अपना तो अब तक एक भी फोटो कही खीचा नही गया है। पता है, फोटो किन लोगो के खीचे जाते हैं? रेस के घोडा के, फिल्मी अभिनत्रियो के, विलायत के दौरे करने वाले रियासती नरेशो के—'

मेरे चेहरे पर फैली निराशा शायद उसने देख ली। तभी उसने कहा, 'लगता है तुम निरी बच्ची बन गई हो। बच्चो को क्या, कोई भी चित्र हाथ लगे, वे प्रसन्न हो ही जाते है।'

आखिर उसने अपनी उस देवदारी सदूक से एक फोटो निकाल कर मुझे दे दिया। वह महात्मा गाधी का था! जैसे तैसे केवल घुटना तक ही पहुचने वाली धोती और ऊपर लपेटा खादी का गमछा, बस इतने ही कपडे उनके तन पर थे। मुझे लगा हरद्वार मे देखी हिमालय की सफेद चोटिया देख रही हू। उस फोटो मे गाधीजी हसते थे। उनकी वह हसी हिमालय से निकली गगा के समान प्रतीत हुई, मन प्रसन्न हो गया।

दिलीप ने कहा, यह फोटो देखने के बाद एक छोटे बच्चे ने क्या पूछा था मुझसे, बताऊ? उसके उन सवालो के जवाब मैं आज तक ठीक से खोज नही पाया हू। तुम सोच कर देखो, तुम्हे मिलते है क्या वे उत्तर? पहला प्रश्न था—गाधीबाबा बूढे हैं क्या? दूसरा—वे हस क्या रहे हैं? तीसरा उनके घर म कोई बगिया है? चौथा—उन्होने कुर्ता क्या नही पहिना?'

बगले पर आत तक ये सवाल मन को उलझाए रखे थे।

दिलीप अपने जीजाजी के घर चला गया। बीमार मा की सेवा मे थोडा समय देकर वह शाम की सभा की तैयारी म जुट जाने वाला था।

मैंने बगले के फाटक मे कदम रखा ही था कि मेरा कलेजा धक से रह गया।

भगवतराव बम्बई से लौट आए थे।

कल रात कहा रही आप ?' उन्होने आते ही मेरा स्वागत किया।

'यहा से पास ही ओढा नामक एक देहात है, वहा गई थी।'

'क्यो'

'दिनकर बहुत बीमार था !'

उनके चेहरे पर सन्देह की रेखाए उभर आई। कुछ पने स्वर म उन्होंने कहा, उसके बीमार होने के बहाने से मैं धोखा खाने वाला नही। वह अनाप शनाप आन्दोलन चला रहा है। राजासाहब के विरुद्ध लोगो को उभाडता जा रहा है। बम्बई मे हर रोज रिपोट आती थी। राजासाहब अत्यधिक नाराज हो गए हैं। उधर सरकार उन्हे दत्तकविधान के लिए तग कर रही है और इधर इस दिनकर ने—

अब जाकर कही उनकी नजर मेरे सीने से लगी फोटो पर पडी।

उन्होने तश म आकर कहा, उसी की तस्वीर होगी ! मेरे घर मे तुम उसकी पूजा—'

वे यकायक रुके और वह फोटो मेर हाथ से छीनकर उन्हाने बगीचे म फेंक दिया। काच की तस्वीर के टुकडे टुकडे हो गए। मैं दौडकर बगीचे म गई। गाधीजी उस टूटी तस्वीर मे हस रहे थे।

साडी के पल्लू से फोटो पोछ कर मैंने उन्हे दिखाया। वे झेंप गए। किन्तु

भूल हो गई' ऐसा उदगार फिर भी उनके मुह से नही निकला।

दोपहर भोजन करने की इच्छा ही नही हो रही थी ! सवेरे की इस झपट के कारण मन उचट-सा गया होगा और इसीलिए खाने को जी नही कर रहा, ऐसा मैंने अपने आपको समझाया, किन्तु—

बात वैसी नही थी। न खाने की शिकायत मन की नही, तन की थी। मुन्ने के समय की बात याद आयी।

मैं बेचैन हो उठी, क्याकि मैं फिर से मा बनने जा रही थी। वास्तव मे यह तो कितने आनन्द की बात होनी चाहिए थी।

किन्तु—

मेरे गभ मे बढ रहा बच्चा भगवन्तराव का था। उस भगवतराव का जिन्होने वेसिग पैर का सन्देह कर गाधीजी की तस्वीर फेंक दी थी।

सारी दुपहरी मैंने दिलीप द्वारा दी गई गाधीजी की उस तस्वीर की ओर देखते काट दी। उसके उन चार सवालो का उत्तर मैं खोजती रही।

आखिर ऊबकर मैंने अपने आपसे कहा, 'बी० ए० की परीक्षा मे आए प्रश्न शायद इसमे आसान थे।'

चार बजे चाय पर भगवतराव ने कहा, 'शायद आज शाम की सभा मे जा रही हो ?'

'कौन सी सभा ?' मैंने जानकर पूछा।

'उस दिन का बच्चे ने पास-पडोस के बीसिया के किसानो को इकट्ठा किया ह! सुना है काफी बडी सभा होने जा रही है आज!

मेरा जी अच्छा नही है, वरना जरूर जाती।'

'जाने का इरादा भी हो, तो कतई मत जाना, ऐसा कहने वाला था मैं तुमसे!'

क्या ?'

'कोई भी पति नही चाहेगा कि उसकी पत्नी पुलिस की गोली से मारी जाय, इसलिए।'

'यानी ?'

मेरे प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही वे चले गए

क्या मतलब था उनके उस वाक्य का ?

साफ था कि आज की सभा म कुछ गडबडी अवश्य होने जा रही थी।

सभा पर गोली चलाकर उसे भग कराने का षडयन्त्र अधिकारियो ने शायद पहले से ही बना लिया था! तभी तो भगवतराव ने कहा था, 'कोई पति नही चाहेगा कि उसकी पत्नी गोली की शिकार हो!' लेकिन उन्होने

यह क्यो मान लिया कि मैं सभा म गई तो गोली मुझे ही लगेगी ? उन्होने सोचा होगा कि मैं सभा म जाऊँ तो दिनकर के पास बठूगी। मुझ लग जाने की सभावना का मतलब—

नहीं !

पुलिस शायद सभा को केवल भग करना नही चाहती। दिलीप को इस दुनिया से सदा के लिए चलता करने का इरादा उसने कर लिया होगा।

थोथी प्रतिष्ठा के खातिर एक रियासत का नरेश जहा अपनी बटी तक की बलि दे दता है वहा दिलीप जसे शत्रु के प्राणो की परवाह किस हो सकती है ?

मैं पागल जसी घडी की सुइयो को देखती बठी। वे सुइया आज शायद बहुत तेजी से घूम रही हैं एसा आभास हुआ। साढे चार, पौने पाच, पाच ! ओ मा !

सभा शाम छह बजे थी। अब केवल एक ही घण्टा बाकी था। साठ मिनट उनसठ मिनट जी करने लगा कि एकदम तेजी से दौडती जाऊ और दिलीप को कही दूर दूर छिपाए रखू।

किन्तु क्या दिलीप मेरी बात मानेगा ? युद्धभूमि पर जाने को उद्यम सैनिक को किसी के आसू कब रोक पाए हैं ? स्वयम् बीमार होने पर भी उसने आज की सभा का आयोजन किया था। ऐसी हालत मे उससे मैं सभा मे मत जाना' कह सकूगी ? कहू तो वह मेरी खिल्ली उडाएगा।' कितना भी पढ लिख लिया तो भी नारी आखिर भीरु ही होती है' ऐसा उलाहना भी शायद दे देगा और हसते-हसते मेरे देखते ही देखते म वह सभा के लिए दौडता चला जाएगा !

क्या किया जाय, समझ मे नहीं आ रहा था।

सवा पाच हो चुके थे।

गाधीजी अपनी टूटी तस्वीर मे भी प्रसन्नता से हस रहे थे। उनके हास्य का अर्थ क्या होगा ?

तभी यकायक मुझे एक बात सूझी। मैंने जल्दी जल्दी मे एक चिटठी लिखी—

दिलीप !

मैं सख्त बीमार हू। घर पहुचते ही सीने मे दर्द उठा है। लगता है चद क्षणो की मेहमान रह गई हू, चाहती हूँ कि कम से-कम आख चार हो जाए। पाच मिनट का समय निकालकर अभी इसी क्षण आओगे ? अभी आए, तो ही आओगे न ?
तुम्हारी राह पर आखें बिछाए पडी हू !'

चिट्ठी लेकर इसी समय साइकिल दौडा कर सभा स्थान पर जान के लिए नौकर को मैंने वार वार जता भेजा।

साढे पाच हो गए। पाच-पैंतीत चालीस हर मिनट मन की घुटन वढती जा रही थी। माना मैं गहरे पानी मे डूबती जा रही थी और हर मिनट पर उतराती थी।

मन मे शका कुशकाओ का अम्बार-सा लग गया।

दिलीप से नौकर मिल भी पाया होगा या नही ? दिलीप बहुत व्यस्त होगा। हो सकता है कि चिटठी विना पढे ही वह अपनी जेब मे रख देगा —शायद पढकर फाड भी डालेगा।

और फिर छह बजे सभा प्रारम्भ होते ही

वा॰र साइकिल की घटी की आवाज सुनाई दी। पीठ मे अजीब दद उठने लगा। भागते हुए मैं आग बढी और नौकर से पूछा, पहुचा दी चिटठी ?'

जी मालकिन !'

'कहा थे वे ?'

'उनकी माताजी बहुत वीमार होने की वजह अपने घर पर ही थे।

उस क्षण तो मुझे से इस पर बहुत आनन्द हुआ कि दिलीप की मा बीमार है। क्योकि मैं सोचने लगी कि अब उसे अपनी मा की सेवा करते घर ही रहना पडेगा और किसी हालत मे वह सभा म जा न सकेगा—

नहा !

मैं भी क्या पागलपन का विचार कर रही थी। दिलीप को गढते समय विधाता ने केवल कुसुमो का ही नही, बल्कि कठिन पहाडो की चट्टानो का भी उपयोग किया था।

यह सच है कि दिलीप अपनी मां से बहुत प्यार करता था, अत्यन्त

उत्कट प्रेम था उस पर !

किन्तु उससे अधिक उसका प्रेम अपनी मातभूमि से था। इसमे तनिक भी सन्देह की गुजाइश नही थी कि मा अन्तिम घडिया गिनती हो, तब भी ठीक छह बजे वह सभा स्थान पर अवश्य पहुचेगा। कोई पूछ भी ले तो कह देगा—'आदमी की अमर मा एक ही होती है—उसकी मातृभूमि !'

पौने छह बज चुके थे। मेरा कलेजा धकधक करने लगा।

क्या दिलीप ने मेर पत्र के टुकडे-टुकडे कर हवा म उडा दिए होंगे ? नही !

सुलू के बहुत ज्यादा बीमार होने का समाचार मिलते ही वह सीधा हवा से बातें करता इधर दौडा चला आ रहा होगा !

पाच सतालीस हो गए थे। महाकाल के कदमो की भाति मिनट की सूई धीरे-धीरे आगे बढती जा रही थी। दुष्ट कही की !

अब तो घडी की ओर देखना दूभर हो गया, एक जगह पर बठी रहना असम्भव हो गया। मन शून्य-सा हो गया, एकदम निर्वात !

बहुत ही बेचनी स मै कमरे म ही चक्कर काटने लगी। एकदम बदन मे सिरहन उठी। मेरा ध्यान बरबस एक चित्र की ओर गया। वह क्रौंचवध का चित्र था। कितनी चाहत से खरीदा था मैंने वह चित्र ! मुन्ना चल बसा तो उस चित्र को हटाकर दीवानखाने मे लगवा दिया था मैंने।

उस चित्र म थी एक हताश युवती !—खून मे सने निष्प्राण पक्षी का कलेवर अपने सीने से लगा कर आसू बहाती युवती। उस युवती क स्थान मुझे अपना चेहरा दिखाई देने लगा।

अब छह बजे किसानो की सभा आरम्भ होगी। किसी बहाने पुलिस गोली चला देगी। अपनी राजनिष्ठा का अनावश्यक प्रदशन करने के लिए लालायित पुलिस अधिकारी निशाना साधकर दिलीप पर

उस चित्र की ओर आगे देखते रहना मेरे लिए असम्भव हो गया, मैंने मुह फेर लिया क्योकि खून मे सने उस पछी के स्थान पर मुझे दिलीप दिखाई देने लगा था।

लेकिन भयभीत होकर मुह क्या फेरा, घडी सामने दिखाई देने लगी।

छह बजने मे केवल दस मिनट बाकी थे। घडी मुझे किसी महाकाय राक्षस के फले विकराल मुह जैसी प्रतीत होने लगी। बदन मे कपकपी हो उठी। मैंने आखें मूद ली।

अब घडी मे टिक टिक की आवाज नही आ रही थी। उसमे बदूक की की गोलिया दनदनाती चली आ रही थी साय-साय-साय।

मैंने उगलिया डाल कर दोनो कान बद कर लिए। मैं पसीने पसीने हो गई थी, गला सूख गया था। पाव लडखडाने लगे थे।

समय देखने के लिए मैंने आखें खोली, किन्तु घडी मे देख पाना असभव सा हो गया था।

मैं बरबस दीवानखाने के किसी कोने मे देखने लगी, वहा सितार खडी रखी थी। विवाह के बाद बिना मुझसे कुछ कहे ही भगवतराव यह बहुमूल्य सितार खरीद लाए थे। बीच बीच मे मैं उसे अवश्य बजाऊ, यही उनकी इच्छा रहा करती थी। किन्तु मैंन उसे हाथ भी नही लगाया। एक बार उन्होने सितार वादन का बहुत ही आग्रह किया तो मैंने उनसे कह दिया था कि आज तो मैं हरगिज नही बजाऊगी।'

'तो कब ?' उन्होने हसकर पूछा।

'आपसे मेरा बहुत जोरदार झगडा होगा तब ।'

'इसका मतलब है तुम कभी सितार नही बजाओगी!'

अपने प्यार के प्रति उनमे इतना आत्मविश्वास पाकर मैंने सोचा था, 'बात तो सही है! हम दोनो मे जब किसी हालत मे कोई झगडा होने ही वाला नही, तो सितारवादन की नौबत भला आएगी कैसे ?'

फिर भी बात काटने के लिए ही महज मैंने उनसे कहा था, 'यही बात नही है। हमारा मुन्ना बडा होकर डाक्टर बनेगा और हमसे दूर-दूर जाएगा, हमारी मुन्नी का विवाह होकर ससुराल चली जाएगी, फिर घर मे हम दोनो ही रह जाएगे, तब मैं सितार अवश्य छेडूगी।'

स्वप्न देखने जैसी बात थी वह मेरी!

कितने मधुर थे वे सपने! पता नही सबके सब कहा गायब हो गए? फूलो की सुगध चली जाती है वहा या सगीत के स्वर जाते हैं, वहा ?

मन म तूफान उठ रहा था। दीवार पर लगी घडी मे स साय-साय की

आवाज लगातार सुनाई दे रही थी। वह सब कुछ भुलाने के लिए मैंने सितार उठायी। उसका गिलाफ उतार दिया और तारो को सुर म मिलाने लगी। सोचा था कि सुर मे तार मिलाते मिलाते मन की उलझन शान्त हो जाएगी।

किन्तु मेरे हाथ अब मेरे अपने नही रह थे।

अचानक एक तार टूट गया। उसकी करुण झकार की प्रतिध्वनि मेरे भी मन म उतनी ही तीव्रता से अक्रोश कर उठी।

कुछ समय पहले चिटठी देकर दिलीप के पास भेजा नौकर भागा भागा भीतर आया। और बोला, 'साबजी आ गए हैं!'

साबजी आ गए?

भगवतराव बीच ही म कैसे आ गए? क्या यह बताने के लिए आए हैं कि दिलीप के गोली लग चुकी है?

मैंने तुरत आगे बढकर देखा।

फाटक से अपनी साइकिल टिकाकर दिलीप जल्दी जल्दी बगले मे आ रहा था। अभी उसने मुझे देखा नही था।

हष के हिण्डोले पर मे मन ही-मन बहुत ऊचा झूला झूल गई। कितु—

दूसरे ही क्षण झूला हाथ से छूट गया। मन एकदम कही गहरी खाई मे जा गिरा।

दिलीप को सन्देश दिया था कि मैं बहुत ज्यादा बीमार हू। जिसके सीने म दद उठा हो वह दीवानखाने मे चहलकदमी करते कसे फिर सकता है?

मैं दौडती हुई अपने ऊपर वाले कमरे म चली गई। दिलीप को यदि मालूम पड जाय कि मैंने बीमार पडने का नाटक किया था, तो—

शायद वह उसी कदम लौट जाएगा।

कुछ ऐसा करना होगा जिससे वह मरे पास कम-से-कम घडी-दो घडी बैठा रहेगा।

जल्दी-जल्दी मैंने कमरे का दरवाजा लगा लिया और बिस्तर पर आ कर लेट गई।

दिलीप कमरे का द्वार धीरे से धकेल कर भीतर आया। वह किवाड खुला ही छोड रहा था। किन्तु मैंने कराहते हुए कहा, "प्रकाश की चौंध से कष्ट होता है! किवाड बन्द ही कर दो तो अच्छा!"

किवाड बन्द कर वह सामने आया—मेरे बिल्कुल पास आ गया।

मैंने आखें मूद ली।

कुछ झुककर कंपित स्वर मे उसने आवाज दी, "सुलू—"

उसका स्वर कापता सुनकर मेरे तन मे रोमाच हो आया। वह कपन उसके हृदय के तारो का कपन था। भयाकुल प्रीति मानो उन तारो की झकार से अपना मानस जता रही थी।

"सुलू—" दो अक्षरो का सामान्य शब्द! बचपन से लाखो बार उसे सुना था। किन्तु उस शब्द मे कितनी मधुरता है, आज अनुभव किया।

लगा कि आखें खोल दू और दिलीप से कसकर लिपटकर जी भर रो लू। किन्तु आखें खोलते ही बीमारी का भण्डा फट जाता। बीमार की आखें कुछ निराली ही दिखाई देती हैं! मैं कितनी भी कोशिश करती, तब भी मेरी आखें बीमार जैसी दीखना असम्भव था।

और तब—यह जानकर कि मैं बीमार नही हू, दिलीप गुस्सा कर चला जाय, तो?

नही! ऐसा नही होना चाहिए।

मैं कतई हिले बिना पडी रही।

तभी मेरे दाहिने कपोल पर दो गरम-गरम बूदे गिरी।

दिलीप के आसू!

और मेरे कपोलो पर चू रहे हैं!

नहीं! नहीं! ऐसा नही हो सकता। शायद मैं सपना देख रही थी।

मैंने बडे कष्ट से हाथ उठाकर अपने दाहिने कपोल पर रखा।

वे आसू ही थे।

और वे भी दिलीप के।

मेरे लिए उसकी आखो मे आए उन आसुओ को मैं हमेशा के लिए अपने मन मे सजोए रखना चाहती थी। मेरी सारी भावनाए उस समय

स्वाती नक्षत्र मे सागर की सीपो की तरह खुल कर बाहे फला रही थी—
मैंने फौरन आखें खोली।

दिलीप की आखो मे जमाने भर की अकुलाहट थी। नजर म वही भाव था जो मा की याद आते ही चारो ओर नजर दौडाने के बाद भी उसे न पाने के कारण अबोध शिशु की नजर मे आ जाता है—असहाय करुणा का।

उसकी वे आखें आज भी ज्यो-की-त्यो मेरी आखो के सामने है। फिल्मो मे किसी की शकल चाहे जितनी बडी बनाकर दिखाई जाती है, वसा ही दिलीप का आसुओ से भीगा वह चेहरा विशाल बनकर मुझे दिखाई देता है।

वह सब कुछ लिखने लगते ही कलम थम जाती है।

कभी-कभी वातावरण मे काफी उमस होती है, आकाश मे काली घटाए उमड कर आती हैं किन्तु वर्षा किसी सूरत मे नही होती। मेरी हालत ठीक वैसी ही हो गई है। दिमाग मे विचारो का अबार लगा हुआ है, मन म भावनाओ का तूफान उठा है, किन्तु—

रामगढ से मैं आ गई तब तो लगता था कि अपनी कहानी लिखना उपन्यास लिखने जसा आसान है। किन्तु अब तक लिखते लिखते एक बात अच्छी तरह से समझ गई हू—सौ उपन्यास तो लिखे जा सकते हैं किन्तु अपनी जीवनी नही लिखी जा सकती।

सत्य की उपासना, सौन्दय की उपासना के समान आसान नही होनी।

वसे तो हर जीवनी अपने मे एक उपन्यास ही होती है। किन्तु यह उपन्यास वह आदमी नही लिख पाता, जिसकी जीवनी पर वह आधारित हो। रही बात किसी और द्वारा लिखा जाने की, तो उस जीवनी के कतिपय प्रसगो का मम किसी दूसरे की समझ मे आ ही नही पाता।

लिखने से पहले मैंने कितनी सारी तयारिया की थी। नारी-जीवन पर लिखे अनेक उपन्यास मेरे सामने पडे हैं। एक-से-एक बढ़कर उपन्यास हैं—'किन्तु ध्यान कौन देता है ?" 'माया बाजार', 'सुशिला का भगवान,' 'दौलत', विधवा-कुमारी', फिजा के फूल', 'उल्का', 'भग्न-मदिर'—

पहले पहले तो इन उपन्यासो की नायिकाओ के साथ मुझे कुछ लगाव-सा अनुभव होता था। मेरी धारणा बन गई थी, कि हो न हो उनके और मेरे अपने जीवन मे काफी साम्य है। मेरे समान यमुना, पद्मा, सुशीला, निमला, मधू, कृष्णा, उल्का, अनू—सभी पिंजडो मे बद थी। पिंजडो के लोहे के सीकचो के आकार प्रकार मे शायद थोडा बहुत फर्क हो सकता है। किसी के पिंजडे का द्वार परम्परा ने बन्द किया होगा, किसी का व्यसनी पति द्वारा रोका गया होगा, तो तीसरी किसी को परिस्थिति ने पिंजडे मे घुटन का अनुभव कराया होगा! किन्तु इन सब नायिकाओ का प्रयास और तपन एक ही बात के लिए थी—उनमे से हर नारी अपने पिंजडे से मुक्ति चाहती थी!

अभी कल परसो तक मुझे भी लग रहा था कि मैं भी उनके समान पिंजडे में बद हू। अपनी कहानी उन्ही की कहानी जसी है ऐसा ही मैं मान रही थी। किन्तु आज—

आज मुझे साफ दिखाई दे रहा है—मैं स्वतन्त्र हू, आजाद हू, पिंजडे से बाहर हू। किन्तु—

मेरा विवाह सनातन प्रथाओ के अनुसार नही सम्पन्न हुआ है। दिलीप से अपना प्यार जता कर मैं आज भी भगवतराव से तलाक माग सकती हू। यह हकीकत कहकर कि, उस दिन सभा के समय लोगो को उभाडन के लिए दिलीप सभा स्थान पर मौजूद ही नही था, उस समय वह हमारे बगल में, मेरे अपने कमरे मे, एकदम मेरे बाहुपाश में आबद्ध था, मैं दिलीप को रिहा भी करवा सकती हू—

किन्तु क्या यह हकीकत बयान करने का साहस मुझ में है?

मैं पिंजडे के बाहर अवश्य हू, किन्तु पिंजडे के पास ही असमजस में खडी हू। मेरे पख काटे जा चुके हैं। उडना चाहती हू, किन्तु उड नही पा रही हू। आकाश का नीला रग पुकार रहा है, जगल के हरे हरे पेड हाथ हिला हिलाकर मुझे निमत्रण दे रहे हैं, किन्तु—

पख काटे गए है।

किसने काट डाले हैं, मैं नही जानती। कब कटे थे, कुछ याद नही है। किन्तु हकीकत है कि मैं उड नही पा रही हू—पख फैलाना भी भुला

बठी हू।

दिलीप तुम गगनविहारी गरुड हो। मुझ जैसी पख-कटी पक्षिणी को तुमसे प्यार करने का भला क्या अधिकार हो सकता है ?

क्या कहा तुमने ? "कटे पख फिर बढ़ जाते हैं।"

यह ना० सी० फडके का 'दौलत' उपन्यास—यह खाडेकर का हरा चम्पा —यह—

सोचा था कि इन सभी उपन्यासो का काफी उपयोग हो सकेगा। य मेरे अच्छे काम आएगे। लिखते समय शायद मैं किसी की भाषा किसी की शैली, किसी का कुछ आत्मसात कर पाई हूगी। किन्तु—

आज यह अन्तिम प्रसग लिखते समय लग रहा है कि मेरे ये सारे प्रिय उपन्यास एकदम झूठे हैं। फडक जी की नायिका निमला, खाडेकर जी की सुलभा—

उनका प्रेम सफल रहा, मुझ क्योकि जैसी पर बीती वसी उन पर बीती ही नही !

अमीर धनजय को छोडकर अविनाश की आर खिचती गई निमला और जागीरदार होने वाले विजय को ठुकराकर गरीब मुकु द स प्यार करने वाली सुलभा क्या घर घर में पाई जा सकती है ?

वसा हो पाता तो मैं भी भगवतराव की माग को ठुकरा कर दिलीप को ढूढने उत्तर भारत चली गई होती। फिर तो वह बहुत ही सु दर उपन्यास बन पडता। कश्मीर के प्राकृतिक सौ दर्य का वणन करने वाले चार पन्ने उसमें लिखे जाते।

किन्तु—

मन दिलीप के प्रति आकृष्ट होने के बावजूद मैं भगवतराव की पत्नी बन गई। मैं चाहती तो दिलीप को थी, किन्तु मुझे उसकी दरिद्रता से घणा थी, उसका अनिश्चित जीवन मुझे पसन्द नहीं था।

और अब ? आज ?

मैं भगवतराव को चाहती तो हू किन्तु उनकी दासता भरी जिन्दगी से नफरत हो गई है। अपनी बुद्धिमानी का दुनिया के बाजार में नीलाम करने वाला भी क्या कभी इन्सान हो सकता है ? नहीं, वह इ सान नही।

दुनियादारी की नजर में मैं भगवनराव की हू। किन्तु मन से मैं अपने आपको दिलीप की मानती हू।

नही। मैं न तो अकेले भगवतराव की हू, न ही केवल दिलीप की। मैं अपने मुन्ने की हू।

दिलीप को रिहा करवाने के लिए मैं अभी इसी वक्त रामगढ जा कर उस दिन की सारी हकीकत राजासाहब से कह दू, तो—

तो हो सकता है दुनिया की नजरो में कलकिनी करार दी जाऊगा। भगवतराव फिर से मेरा मुह देखना पसद नही करेंगे। मेरे गभ मे बढ़ रहे मेरे मुन्ने को कल जब यह मालूम हो जाएगा कि उसकी मा एक कलकिनी है, तो वह क्या सोचेगा ?

नही !

इस गभस्थ नन्हे जीव के लिए जिसके अस्तित्व तक का अभी किसी को पता नही है, मुझे चुप रहना ही होगा—भगवतराव की धर्मपत्नी के नाते ही दुनिया में जीना होगा।

किन्तु अपने मुह में ताला लगवाने से दिलीप की रिहाई कसे सम्भव होगी ? भगवतराव तो इस मामले में मौन साध गए और अदालत में सभा के समय मैं किसो और स्थान पर था, इतना भी बताने से दिलीप ने इन्कार कर दिया।

दिलीप, क्या तुम मुझे वेआबरू होने से बचाने के लिए इस तरह अपने आपको कुर्बान करने जा रहे हो ? ऐसा मत करना मेरे मीत ! क्यो नही बतलाया तुमने अदालत को कि उस समय तुम कहा थे ? आबरू, इज्जत, प्रतिष्ठा, लोग क्या कहेगे का लिहाज आदि हौवो से डर कर क्या मैं भी दिलीप की बलि दे दू ? ओह भगवान !—

मै उल्का को दुबल नायिका मानती थी। किन्तु अपनी ही कसौटी का क्षण आते ही मैं अपने आपको उससे भी अधिक दुबल अनुभव करने लगी। मैं दिलीप को चाहती हू। किन्तु दुनिया को यह बताने के लिए तैयार नही हू कि मै उससे प्यार करती हू !

इससे बढकर ढोंग क्या हो सकता है ?

क्या भगवान ने नारी जाति का दुबलता का अभिशाप दिया है ?

सच तो यही है कि कोई भी नारी अपना सच्चा आत्मचरित्र लिख नही सकती ! तन से वह एक की हो जाती है, किन्तु मन से किसी और ही आदमी की ओर खिचती रहती है। अनेक मानसिक द्वद्वो की विभीषिका मे नारी रक्त स्नात हो, क्या यही प्रकृति का सकेत है ? शारीरिक प्रम और मानसिक प्रेम, प्रीति और व्यक्तित्व, वात्सल्य और आदर्शवाद, सौन्य और सत्य, सुख और त्याग—

नदी की धारा मे बडे-बडे आवर्तों को देखकर तरने वाला हिम्मत हार जाता है, ठीक वसी ही मेरी अवस्था हो गई है।

लगभग एक मास से इन स्मृतियो को शब्दाकित कर रही हू। किन्तु एक बार जो लिख गई हू, उसे फिर से पढकर देखने को भी जी नही चाह रहा है। उतनी हिम्मत नही रही है।

तेज बुखार मे सन्निपात हो जाने पर मरीज वही-वही बातें बडबडाने लगता है न ? लगता है कि पता नही, शायद मैं भी लिखते समय वही-वही बातें दोहरा रही हू !

अब यहीं रुक जाऊँ तो ठाक रहेगा। कभी मन मे आता है कि जो भी लिखा है उसकी धज्जिया उडा द।

किन्तु—

वह अन्तिम प्रसग लिखना तो अभी शेष है !

दिलीप के आसू मेरे कपोल पर गिरे। मैंने तुरन्त आखें खोली।

पलभर मुझ से मिलने के लिए ही तो वह आया था। सभा म गोली चलने वाली है यह खबर उसने भी सुनी थी। मेरे इतनी बीमार होने पर भी भगवतराव मुझे अकेली छोडकर बाहर कैसे चले गए, इस पर उसने आश्चय भी प्रकट किया था। वह मुझे धीरज बधा रहा था। सभा समाप्त होने पर फिर मिलने आने की बात कह रहा था, भगवतराव को क्या सदेशा दू यह पूछ रहा था। मैं केवल हु' अु-हू के अलावा एक शब्द भी बोल नही रही थी, बल्कि इसके अलावा कुछ भी न बोलने की दक्षता बरत रही थी।

ची ई ई ची ई ची!

बाहर मोटर आकर रुकने की आवाज सुनाई दी। मुझे विश्वास था कि दिलीप के मित्र उसे सभास्थान पर ले जाने के लिए जल्दी-जल्दी आ पहुचे हैं। उसकी भी यही धारणा थी।

सीढ़िया पर कदमा की आहट सुनाई दी। उसके साथ ही मेरे दिल की धडकनें भी तेज होने लगी।

कुछ भी हो, दिलीप को न जाने देने का मैंने मन ही-मन पूरा निश्चय कर लिया। कदमा की आहट समीप आने लगी।

"ओह् मांऽऽऽ !" दोना हाथो से सीने को जोर से दबाती आर्त स्वर म मैं चीख पडी।

दिलीप एकदम मेरी तरफ मुडा।

वेदना और व्याकुलता का नाटक रचते मैंने आवेग के साथ उसके दोनो हाथ पकड लिए। वास्तव मे उसे जाने न देने के लिए मैंने वसा किया था।

तभी कमरे का किवाड अचानक खुल गया।

भगवतराव किवाड मे खडे थे!

"हे भगवान ऽऽऽ! बचा लो!" मैं ऐसे अजीब स्वर म चीखी मानो किसी ने मेरा गला दबोचा हो और तुरन्त कसकर दिलीप से लिपट गई।

फिर क्या हुआ, पता नही।

आख खुली, तब दिलीप मेरे पास बैठा था। उसकी घडी मे साढे छह हो चुके थे। भगवतराव दरवाजा बाहर से बन्द कर कभी के चल दिए थे।

मेरे होश मे आते ही दोनो हाथो म अपना मुह ढाककर दिलीप गदगद स्वर म बोला, "सुलू, मैंने कई बार पढ़ा था कि प्रीति कर्तव्य की बैरन होती है। किन्तु आज उसे प्रत्यक्ष अनुभव किया।"

उसका हाथ मेरे हाथ मे था। फौरन हाथ छुडाते हुए उसने कहा, "सुलू आज तुमने मेरा बहुत बडा अध पतन कर डाला!"

उसके वे शब्द उस समय दिल को इस तरह चीरते गए, मानो अचानक काच का टुकडा पर मे चुभ गया हो।

किन्तु उन शब्दो मे सच्चाई थी।

मेरे सामने यह तार पडा है—नहीं। उस तार का मजमून फिर से

पढने की हिम्मत अब मुझ मे नही है !

किन्तु अशुभ बात न पढने मात्र से टल थोडे ही जाती है।

दिलीप को फासी की सजा सुनाई गई।

अधेरा—अधेरा—घनघोर अधेरा—

इस घनघोर अधेरे म आशा की एक ही किरण है, और वह भी बहुत ही मद्धिम ! राजासाहब दिलीप की बात एक बार फिर सुनने वाले हैं। किन्तु 'मैं निरपराधी हू" इन तीन शब्दो वाले वाक्य के अलावा जिस दिलीप ने पिछले पूरे महिने मे एक शब्द भी मुह से नही निकाला, वह अब राजासाहब के सामने भी इसके अलावा और क्या तकरीर करेगा। कल राजासाहब की न्यायप्रियता का डिडिम् अखबारो मे सुनाई देगा।

और एक दिन सवेरे रामगढ की उस कारा मे मेरा दिलीप—

क्या लिखू ? आखें भर आने के कारण कुछ दिखाई ही नही देता।

दिलीप प्रेम पातक हो सकता है, किन्तु भूले से भी वह घातक नही हो सकता ! तम्हारी दी हुई वह नमक की पुडिया अब तक मेरे पास जतन से रखी हुई है। तुम्हारा दिया हुआ यह महात्मा गाधी का फोटो आज भी मेरी ओर देखकर हस रहा है। इस फोटो के बारे म उस बालक न तुमस जो सवाल किए थे, उनका उत्तर आज तक मुझे नही मिल पाया है।

दादा सितार वजा रहे हैं। अपनी अति प्रिय गत वे बजा रह हैं—"इस तन धन की कौन वडाई "

किन्तु आज दादा को क्या हो गया है ? इतना बेसुरा तो वह कभी बजाते नही थे ? तो क्या दादा अब बूढे हो चले हैं इसलिए ? या—

दिलीप की दी हुई यह खलील गिब्रान की पुस्तक पागल' !"

इसका यह एकसठवा पष्ठ। इस पन्ने पर एक वाक्य के नीच दिलाप ने लाल पन्सिल मे रेखा खीच रखी है—

Then we left that sea to seek the Greater sea !!"

' यह सकीर्ण समुद्र छोडकर हम महासागर की खोज म निकले हैं।"

दिलीप तुम महासागर की ओर जा रहे हो !

और मैं ?

और मै ?

उस प्रश्नवाचक चिह्न के आगे स्याही का एक बडा दाग पडा था। उसके आगे—

दादासाहब ने जल्दी जल्दी कापी के पन्ने पलट कर देखा। आग के सारे पन्ने कोरे थे। 'और मैं ?' के आगे सुलू ने एक अक्षर भी नही लिखा था।

दादासाहब उस अन्तिम प्रश्नचिह्न की ओर बडी देर तक देखत रहे। फिल्मा म प्रारम्भ मे छोटी दिखाई देने वाली आकृति समीप आते-आते बडी होने लगती है, उसी प्रकार वह प्रश्नचिह्न भी बडा होता जा रहा है, एसा आभास दादासाहब को हुआ। हसिये के समान दीखने वाली उस आकृति की ओर देख पाना दादासाहब के लिए असम्भव होता गया। उन्होंने आखे बद कर ली।

उनकी बद आखो के सामने तुरन्त ही दूसरा प्रश्न खडा हुआ—सुलू कहा गई होगी ?

क्या रामगढ गई होगी ?

किसलिए ? दिनकर को रिहा करवाने ? किन्तु कही ऐसा न हो उस की रिहाई करवाने के चक्कर मे बिटिया अपने ही गले म फासी का फदा डाल ले। सभा के समय दिनकर के साथ एकात मे थी, यह बात जाहिराना तौर पर बताने का मतलब होगा अपने हाथो अपनी गहस्थी म आग लगाना।

वह इस तरह के अविचार के माग पर अग्रसर हुई हो, तो उसे रोकना क्या अपना कत्तव्य नही ?

अविचार का माग ?

एक निरपराधी आदमी के प्राण बचाने के लिए सत्य प्रकट करना

अविचार है या सुविचार ?

दादासाहब का बुद्धिवादी मन इसे अविचार कहने के लिए तयार नहा हो रहा था।

किन्तु वह शिकायत अवश्य कर रहा था—न सुलू ने दिनकर से प्यार किया होता, न वह इस झझट म उलझी होती !

तुरत मन ही तक देता—किसी से प्यार करना न करना आदमी के बस की बात तो नही होती। प्यार कविता के समान होता है, वह किया नही जाता, हो जाता है। आयु के बारहवें वष से लेकर सत्रहवें वप तक सुलू दिनकर के सहवास मे थी। उस सहवास के सस्कार उसके मन पर हो इसम अस्वाभाविक क्या है ? दिनकर उसके जीवन मे फिर से न आया होता तो शायद सुलू ने उसे भुला भी दिया होता। वह याद आता भी तो वह बीते मधुर सपने से ज्यादा कोई महत्त्व उसे नही देती।

क्या होता के बजाय, क्या होने वाला है इसकी चिन्ता पहले करनी होगी, यही मन ही मन सोचकर खिन्न मन से दादासाहब कुर्सी स उठे। कितु कदम आगे नही बढ़ पाता था। उनका अग प्रत्यग एकदम शिथिल पड गया था।

उन्होने घडी मे देखा। कॉलेज जाने का समय हो चला था। साढे सात बजे वाली दूसरी चाय भी अब तक उन्होंने नही ली थी। सम्भवत आठ साढे आठ बजे बाबूराम चाय लेकर जरूर आया होगा। किन्तु पढने म व्यस्त पाकर चला गया होगा !

मेज पर सुलू की वह मोटी कापी खली पडी थी। उसमे लिखा वह अतिम प्रश्नचिन्ह दादासाहब की ओर घूरकर देख रहा था।

दादासाहब ने अजीब नजर से उस कापी की ओर देखा। उनकी नजर स्मतिभ्रष्ट आदमी की नजर की सी थी। उस कापी के पन्ने पन्ने म मुखरित सुलोचना—नही ! वह उनकी जानी पहचानी सुलू नही थी। उसने सत्य कथन के लिए जो-जो बातें लिखी थी वे सब किसी उपन्यास की कथावस्तु के लायक लग रही थी। उन्होने लाड प्यार से जिसे पाला पोसा और बडी किया वह सुलू, आखो का तारा बनाकर पच्चीस वप तक रखी सुलू, बुद्धि वादिनी सुलू और इस कापी मे बोल रही सुलू दो भिन्न व्यक्ति हैं। अपनी

सुलू के मन मे इस तरह का पागलपन कभी सवार हो सकता है यह तो—

हवा के कारण उस कापी के पन्ने फडफडाने लगे। मानो सुलू ही दादासाहब से कह रही थी—दादा, ज्वालामुखी की सतह पर अंगूर की वाटिकाए हा भी, तब भी उसके पेट के भीतर धधकती आग हुआ करती है। इन्सान का जीवन भी ऐसा ही है। उसके अतरग मे ऐसे ऐसे अपार सुख, सपने तथा आशा आकाक्षाए खिली होती हैं जिनका बाहर की दुनिया को पता तक नही चलता। ऐसे ऐसे अनगिनत दुख और निराशाए भी भीतर ही भीतर जलती रहती हैं जिनकी आच तक बाहर की दुनिया को नही लग पाती।

कापी के पन्ने की वह फडफडाहट सुनकर दादासाहब को लगा, कान पक गए हैं, मानो हजारो कौए एक साथ काव-काव काव मचा रहे हैं।

कुछ झुककर उन्होने कापी बन्द की।

कापी के पास ही थोडे दूर नमक की वह पुडिया खुली पडी थी। दादासाहब की नजर उस पर टिकी रही। दिनकर द्वारा बारह वर्ष पूर्व शिरोडा से लाया वह नमक सुलू ने कितनी आस्था से सभाल कर रखा था। नमक के कण चमक रहे थे। क्या कह रहे थे ?

दादासाहब का लगा कि बुद्धिवाद का आडम्बर मचाने वाले अपने मन का मानो वे उपहास कर रहे हैं।

उन्हे अचानक सुलू का लिखा वाक्य या" आया। यह नमक मैं आजीवन सम्भाल कर रखूगी। ऐसा वचन उसने दिनकर को दिया था। फिर इस पुडिया को यही पर छोडकर सुलू कहा चली गई होगी ? आत्महत्या का इरादा पक्का होने के बाद तो वह—

बाहर दरवाजे पर घटी बज उठी। किन्तु अपने स्थान से उठने की उन्हे इच्छा न हुई।

बाबूराम जाकर तार का लिफाफा ले आया। तार का नम्बर दादासाहब ठीक से ढढ नही पा रहे थे। आखिर जैसे तसे उस पर हस्ताक्षर कर लिफाफा खोलें या न खोलें की उधेडबुन मे वे उलझ गए। चेहरे पर चिंता की रखाए अधिक स्याह बनी। आखिर कापते हाथो से उन्होने तार खोला।

तार भगवतराव का था। लिखा था— सुलोचना अभी तक नही आई है। मैं बहुत बीमार हू। उम लेकर फौरन आइए।'

हरे जख्म को धक्का लगाने जसी अवस्था दादासाहब की हो गई। व असमजस म पड गए।

भगवतराव बहुत बीमार हैं। इसका मतलब हुआ कि अभी इसी समय रामगढ जाना होगा। किंतु किन्तु सुलू को साथ लिए विना अकेले वहा जाकर क्या करेंगे? सुलु कहा है ऐसा सवाल भगवतराव जरूर करेंगे नव क्या जवाब देंगे? भगवतराव को आखिर क्या जवाब देंगे? भगवतराव को आखिर क्या बीमारी हो गई है? अपनी बीमारी की सूचना उन्होंने अब तक सुल को या अपन को क्यो नही दी? नाना के सामन प्रश्न खडे हो गए। सोचा हो मकता है उन्होंने सुलू को लिखा हो और इस पागल लडकी ने बात छिपा ली हो।

मेज पर पडी सुलू की कापी का वह अतिम प्रसग दादासाहब की आखो के सामने से चित्रपट-सा सरकने लगा। उस सभा के दिन सुलू न बीमारी का बहाना बनाकर दिनकर को अपन बगले पर बुलवा लिया। बगले के बाहर मोटर रुकने की आवाज सुनकर सुलू ने सोच लिया कि दिनकर को सभा म ले जाने क लिए उसके मित्र जल्दी जल्दी आ गए हैं। भगवतराव ने कमरे का किवाड खोला, तब सुलू ने दिनकर के दोना हाथ अपने हाथो म कसकर पकड लिए थे। और भगवतराव को देखते ही डर कर वह दिनकर से लिपट गई—

नही, नही।

दादासाहब से वह चित्रपट देखा न गया। वे गुस्सा हो उठे।

बचपन मे भी उन्होंने सुलू को पीटा नही था। एक बार उनक किसी महत्त्वपूर्ण कागजातो पर उसने स्याही उडल दी इसलिए ने उसके गाल पर एक चाटा मारा था। किन्तु उन नाजुक क अपनी उगलियां आगे चल उन्हे सपन उठी आभास ऐसा था मानो सु उसके बाद उन्होंने सुलू पर पजा वह

किन्तु आज वे होश था

सुलू सामने होती तो पहले उसके दो चार चाटे कसकर लगाता। अपना पट काटकर कोई मां अपनी बच्ची के लिए जरी की साडी खरीद लाए और वह नादान बच्ची आग से खेलती हुई उमम सवत्र जलने के छेद कर डाले—सुलू का आचरण ठीक वैसा ही तो हुआ था। उसकी मा की मत्यु के बाद उसे कितने लाड प्यार मे पाला पोसा, भगवतराव से उसका विवाह हो गया तो अपनी एक आख म आनन्दाश्रु और दूसरी मे बिछोह की वेन्ना कसे जागी, उसके ससुराल चले जाने पर अनुभव होने वाले अकेलेपन और वुढ़ापे के कारण आन लगी दुबलता पर यह सोचकर कि सुलू परमसुख म है, काबू पाना कमे सीख लिया—

किन्तु—

अपने उस सुख का बगला सगमरमर का न होकर ताश का निकला।

लेकिन भगवतराव न किसी समय तो इन बातो का थोडा सा जिक्र किया होता। क्यो नही किया होगा? वह बचारा क्या बताता।

अपनी पत्नी को दिनकर के गले कसकर लिपटी देखकर उन्हे क्या लगा होगा? उन पर क्या-क्या बीती होगी? हो सकता है उन्होने इस बात से गहरी चोट खाई होगी। दिल को बहुत सदमा पहुचा होगा। आज की उनकी बीमारी की जड शायद उसी घुटन मे होगी।

सुलू का भी कमाल है! उधर भगवतराव इतने सख्त बीमार है और इधर यह छोकरी जीवन की रामकहानी लिखती बठी थी। दिनकर के चुम्बन का मोह कैसे उत्पन्न हो गया, इसी प्रसग का नमक मिर्च लगाकर जायकेदार वणन किए जा रही थी।

छि! छि! मुह पर कालिख पोत दी लडकी ने। आज तक मैं कितनी लडाइया लडता रहा—गरीबी, सकटो, मत्यु तथा बुद्धिहीन दुनिया के विरुद्ध। किन्तु हर बार सिर ऊँचा रखकर लडा। अब वही सिर शम से झुक जाएगा। सभव है कि दिनकर को बचाने के लिए ही सुलू चली गई होगी। इस कापी मे लिखी सारी बाते शायद वह कल राजासाहब स कहने वाली होगी। फिर ये बातें दुनिया भर म फल जाएगी और दुनिया मुझे नोच खाने के लिए कौए की नजर से देखन लगेगी।

यही सब सोचकर दादासाहब का मन अत्यन्त बेचन हो उठा। अपनी

सुलू नाम की कोई लडकी है इसे भुलाकर शांति के साथ रोजमर्रा के काम-काज म जुट जाने का पक्का निश्चय करते हुए वे कमरे से बाहर आ गए।

अपने कमरे मे आकर उन्होने 'कालेज मे आने म आज देरी होगी' ऐसी चिटठी लिखकर बाबूराम के हाथो प्राचाय महोदय के पास भिजवा दी।

बाबूराम के जाते ही वे पीछे मुडे। समय देखने के लिए उन्होने घडी की ओर देखा। किन्तु घडी के बजाय उनकी दृष्टि उसके पास ही टगी पत्नी की तस्वीर पर गई। उसके होठो की गढन—

सुलू के होठ भी ठीक ऐसे ही हैं। वह एकदम अपनी मा के समान ही हसती है।

वे सोचने लगे—आज कालेज मे पढाना है। उन्होने उत्तररामचरित उठा लिया। निशान लगा रखा पन्ना खोला और वे पढने लगे—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम ।।

वही क्रौंचवध का श्लोक!

उन्होने किताब बद कर दूर फेंक दी। यह सही है कि उन्हे कालेज मे वही श्लोक पढाना था, किन्तु आज उसे पढते समय उनकी आखो के सामने दिनकर तथा सुलोचना की आकृतिया उभरने लगी थी।

सुलू करुणाभरी नजर से उन्ही से कह रही थी— दादा, दादा, कोई दुष्ट मेरे दिलीप पर तीर चला रहा है। दिलीप को बचा लीजिए—उस दुष्ट को रोकिए—उसका हाथ थामिए—'

फिर सुलू की याद 'परछाई के समान वह दादासाहब का पीछा करने लगी थी।

कमरे मे चिडिया द्वारा बनाए घासले से सूखे तिनके, कपास और कूडा बदन पर गिरने लगते ही जैसी झुझलाहट होती है वैसी झुझलाहट दादा साहब के मन मे हो उठी।

मन की ग्लानि मिटाने जीवन मे अनेक बार उन्होंने गीता की शरण ली थी। छात्रावस्था म जब फाके होते थे तो गीता के श्लोक गुनगुनाकर ही उन्होंने मन को धीरज बधाया था। पत्नी की मत्यु के समय भी मन की

शान्ति बनाए रखने मे गीता ने ही उनकी सहायता की थी। उन्ह लगा कि इस समय भी गीता ही मन का खाया चन वापस ला सकती है। उन्होंने हाथ बढाकर शेल्फ पर रखी एक किताब उठा ली।

वह गीता ही थी। उन्होने स्वय उसका सपादन किया था। उनकी विद्वता की कीर्ति सुनकर एक अमीर गुजराती ने यथेष्ट पारिश्रमिक देकर उसके सपादन का दायित्व उन्हे सौंपा था।

गीता के पन्ने उलटते समय स्मृतिया के पन्ने भी पलटे जान लगे। अधेरे मे पौ फटने लगती है, वैसा मन आलोकित होने लगा—

वह गुजराती सेठ जी पहली बार मुझसे मिलने आए थे, उसी दिन दिनकर हमारे यहा रहने के लिए आने वाला था। किन्तु उस दिन वह नही आया। एक दिन दरी से वह आ पहुचा। क्योकि उसकी मा बीमार थी—

दिनकर—सुलू का दिलीप—सुलू—

गीता की पुस्तक यथास्थान वापस रखकर दादासाहब ने सितार उठा ली। अपना दुख भुलाने के लिए शराबी जिस तरह शराब के प्याले गले के नीचे उतारता जाता है, उसी तरह आज जी भरकर सितारवादन करने का और उसकी स्वरतरगो मे अपने आपको बिसार देने का उन्होने मन ही मन निश्चय किया।

सितार के तारो पर उनकी उगलिया चलने लगी—झननन‌झन्—झननन‌झन्—झनननझन

उन्होने कमर के द्वार की ओर देखा। जब जब सितार की झनननझन—दिडदा—दिडदा सुनाई पडती थी, तो नन्ही सुलू उसी किवाड से अपनी प्यारी प्यारी मटकती चाल से हुडकती सुनने चली आती थी। वह चूमा देने से इन्कार करती तो उसे धोखा देने के लिए मैं उसी तरह सितारवादन जारी रखता था।

भगवतराव ने सुलू को विवाह म मागा, उस दिन का प्रसग भी आखो के सामने आ गया। भगवतराव ने कहा था। सुलू के ससुराल चली जाने पर कुछ दिन आपको अकेले म चन नही आएगा।' मैंने कहा था, 'मेरी एक और बेटी जो है!' कहा है?' उन्होने हसते हसते पूछा था और मैंन बिना कोई जवाब दिए यही सितार उठा ली और बजाना शुरू किया था।

उस स्मृति से उनकी आखो म आसू आ गए। बडी मुश्किल मे व सितार पर उगली चलाने लगे। स्वय नही जानते थे, क्या बजा रह हैं। सितार स लगातार एक के बाद एक करुण विलाप के स्वर झकृत होते जा रहे थे। मानो सितार भी आक्रोश करती कह रही थी— मेरी बहिन कहा है बताइए न। यहा क्या बठे हैं आप ? उठिए, उसे ढूढ लाइए। वह आ जाए तो मैं आपको बहुत ही मधुर स्वरा म कोई गीत अवश्य सुनाऊगी। किन्तु उससे पहले नही।'

दादासाहब सितार नीचे रखकर उठे। अभी उन्हे स्नान भी करना था। मानिक को बहुत ही बेचन और परशान पाकर रसोइया भी 'खाना तयार' की सूचना देने नही आया था अब तक।

दादासाहब ने अपनी पत्नी की तस्वीर की ओर देखा। शायद वह भी कह रही थी 'पहले सुलू को ढूढ लाइए। अन्तिम बीमारी म सुलू के लिए मैं तडपा करती थी उस समय आप ही तो मुझे समझाया करते थे। आपने मुझे वचन दिया था कि उसके सारे अपराध आप क्षमा कर देंगे। तो उठिए पहले सुलू को ढूढ लाइए।'

दादासाहब फिर से सुलू के कमरे म गए। सुलू की उस मोटी कापी के पास ही भगवतराव का तार पडा था। उन्होने उसे उठाकर फिर से पढ़ा।

दिल काप उठा।

भगवतराव सख्त बीमार हैं। सुलू भी उनके पास नही है। ऐस समय तो उनकी दखभाल के लिए जाना होगा। दोपहर दो बजे गाडी थी। साढे नौ बजे रामगढ पहुचा दगी वह। साढे नौ ही सही! कोई बात नही, उसी गाडी से चले चलेंगे। सुलू की इस रामकहानी का भी लिए चलेंगे साथ म। शायद भगवतराव को पढ़ने के लिए देना पड़ जाए।

मेज स कापी उठाते समय गाधीजी की तस्वीर पर ध्यान गया। तस्वीर म गाधीजी हस रह थे। मानो हसकर कह रह थे—प्रोफेसर साहब क्यो दुखी होते हैं आप ? थोडी प्रार्थना कर लीजिए। हा कहिए— वैष्णव जन तो तन कहिए।'

दादासाहब ने गाधीजी को देखा [illegible] था। ह[illegible] तथा आदोलन की असहकार और अ[illegible]

अवश्य की थी।

किन्तु आज उनकी तस्वीर की ओर देखते देखते उन्हे प्रतीत होने लगा—गाधीजी की इस हसी मे अवश्य ही कुछ जादू है। एक बार उनसे मिलना चाहिए, थोडी देर कुछ बातें करनी चाहिए !

सुलू की रामकहानी मे लिखे—दिनकर द्वारा पूछे गए—वे चार प्रश्न उन्हे ज्यो की त्यो याद आए—

गाधीजी बूढे है क्या ?

वे हस क्यो रहे हैं ?

क्या उनका कोई बगीचा है ?

उन्होने कुर्ता क्या नही पहिना है ?

दादासाहब अपने पर ही हसे, ये तो महाभारत के यक्ष प्रश्नो से कोई कम नही !'

दादासाहब कालेज पहुचे तो प्राचाय महोदय अपने कमरे म ही थे। दादासाहब को देखते ही उन्होने कहा, 'आज के दिन आपने आराम क्या नही कर लिया ?'

शायद प्राचायजी ने यह धारणा बना ली थी कि बीमारी के कारण ही मैंने देरी से आने की चिट्ठी भेजी थी और अब थोडा अच्छा लगत ही मैं कालेज आ गया हू, यह सोचकर दादासाहब को मन ही मन आनद हुआ। वे हार्दिकता से जी खोलकर हसे।

प्राचाय उनकी ओर असीम आदर से देखते हुए बोले, दादा साहब, हमारे कालेज का नाम पिछले बीस वर्षों मे दिन दूना रात चौगुना सवत्र हो गया, इसका कारण आप जस सहयोगियो का सहयोग ही तो है। तिलक जी के पश्चात महाराष्ट्र सवत्र पिछड गया है, ऐसी चीख पुकार मचाने वालो को मेरी चुनौती है कि हमारा कालेज देखें और फिर कहे। है न ?'

यह प्रशसा सुनकर दादा साहब मन ही मन शरमा गए। मा बनी युवती चाहती है कि अपने मुन्ने का सबको दिखाती फिरू, किन्तु साथ ही उसे ऐसा करने मे शम भी लगती है। अपनी प्रशसा सुनकर प्रौढा का हाल भी कुछ ऐसा ही हो जाता है।

प्राचार्य जी की मेज पर रखे काच के पेपरवेट के भीतर जो रगबिरगे

फूल थे, उनकी ओर देखते हुए दादा साहब बोले, 'मैं बीमार नहीं था !'

'तो क्या कोई मेहमान-वहमान आ गए थे ?'

'जी नहीं ! रामगढ जाने की तयारी कर रहा था मैं !'

'रामगढ ?'

'जी । भगवन्तराव वहा बहुत बीमार हैं !'

सहानुभूति जताते प्राचार्य जी ने पूछा, 'क्या बीमारी है ?'

तार मे सख्त बीमार हू, इतना ही लिखा है !'

'सुलू भी शायद वहीं गई होगी ! दो दिन से उसे टेनिसकोर्ट पर भी नहीं देखा !

दादा साहब सिर झुका कर छुट्टी की अर्जी लिखने बैठ गए ।

प्राचार्य जी ने फिर कहा, 'भगवन्तराव के स्वस्थ होते तक आप निश्चिन्त होकर रामगढ मे रहिए । कॉलेज मे पढाने के काम की कोई चिन्ता न करें !'

अर्जी प्राचार्य जी को देकर दादा साहब जाने को निकले । प्राचार्य जी उन्हें विदा करने दरवाजे तक आए । दरवाजे मे खडे हो एक एक शब्द रुक रुककर उच्चारते हुए उन्होने कहा, 'मैं रामगढ आने की सोच रहा हू !'

दादा साहब ने आश्चर्य से पूछा, 'कब ?'

प्राचार्य कुछ रूखेपन से बोले, 'हो सका तो आज रात ही, अन्यथा कभी नहीं !

फिर तुरन्त नरमी से बोले, सोच रहा हू कि दिनकर सरदेसाई के बारे मे राजा साहब से कुछ सिफारिश की जाए या—'

राह मे अचानक साप दिखाई देते ही राही कदम रोक लेता है, बस प्राचार्य जी रुके और फिर कहने लगे, 'उस दिनकर ने आपके बारे मे इतना अच्छा लिखा है ?'

'कहा ?'

आप इस वर्ष अवकाश ग्रहण करने वाले हैं इस उपलक्ष्य मे कॉलेज-पत्रिका का एक विशेषांक निकालने का हमने निश्चय किया है न ? उसके लिए आपकी यादें ताजा करने वाले प्रसग लिख भेजने की अपील जाहिराना तौर पर मैंने सब भूतपूर्व छात्रो के पास भेजी थी । अब तक प्राप्त सभी

प्रसगो को कल रात ही मैंने पढ डाला। उस दिनकर ने सचमुच आपके बारे मे इतना अच्छा लिखा है—'

दादा साहब को लगा कोई उनके दिल को कुरेद रहा है।

प्राचार्य जी ने जरा खँखार कर आगे कहा, उस दिनकर से क्या क्या आशाए थी ! किन्तु आज—मैं कब से सोच रहा हू कि रियासत की इस राजनीति म दखल दू या न दू। रामगढ के अनेक लोग जानत है कि दिनकर उस सभा म उपस्थित ही नही था। आज ही वहा के एक शिक्षक आए थे। वे मुझे बता रहे थे। किन्तु पुलिस के डर से सत्य कहने से हर आदमी डरता है। सच बात बताने के लिए कोई आगे नही आ रहा है। दिनकर तो सिवा इन तीन शब्दा के कि 'मैं निरपराधी हू' कुछ भी बोलने के लिए तयार नही। उसके जैसा अत्यन्त प्रतिभाशाली युवक नाहक मारा जाएगा यह देखकर—

प्राचार्य बीच मे कही और ही देखने लग गए।

थोडी देर बाद उन्होने कहा, 'किन्तु मेरा मन हाँ और ना की उधेडबुन म बुरी तरह उलझ गया है। उसके बारे मे कुछ सिफारिश करने गया और राजा साहब ने गुस्से मे आकर उपाध्यक्ष पद से त्याग पत्र मुझे थमा दिया तो—राजा साहब द्वारा त्याग पत्र देते ही सरकारी अनुदान भी—'

उन्होने महज पीछे मुडकर देखा। दादा साहब की नजर भी वही टिकी थी वह एक कैलेण्डर था। उस पर चित्र था—

एक खाली पिंजडा—पिंजडे के बाहर एक पक्षी। सुदूर नीला-नीला आकाश और हरे भरे वृक्ष—

उन पेडा से मुह फेर कर वह पछी बार-बार पिंजडे म घुसन की कोशिश कर रहा था। भीतर रखे मधुर फला की फाको की ओर भूखी-प्यासी नजर से दखता लालायित हो रहा था।

उस पछी के पख कटे थे।

दोनो ने एक दूसर की ओर देखा और दोना की नजरें झुक गइ।

ठडी-ठडी पुरवया चलने लगी थी। दिन ढल चुका था। किन्तु दाग

साहब को खिडकी बद कर लेने की सुध नहीं थी '

धीरे-धीरे अधेरा छा गया।

फिर भी दादा साहब डिब्बे की बत्ती जलाने उठे नही।

इटर के डिब्बे मे तीन यात्री और थे, किन्तु वे कुछ समय पहले ही अपन स्टेशन पर उतर गए थे। अब डिब्ब मे दादा साहब अकेले रह गए थे।

अधेरे मे रेलगाडी भागी जा रही थी। उनका मन भी उसी तरह अधकारपूण भविष्य की ओर दौडता जा रहा था।

दोपहर प्राचाय जी के साथ बातचीत होने के बाद से तो उनके मन मे लगातार दिनकर के बारे म ही विचार आ रहे थे।

उस फासी की सजा देने वाला न्याय देवता ! बचारा रामगढ के राजा साहब के तेवर देकर ही प्रति मास अपना वेतन पाता है। उन तेवरो के उतार चढाव पर ही जिसकी तनख्वाह निभर करती है, वह न्यायाधीश इसस अतिरिक्त क्या न्याय कर सकता था ?

'कानून गधा होता है' यह अग्रेजी की कहावत दादा साहब को याद हो आइ। तुरन्त उनके मन म विचार आया—कानून केवल गधा ही नहीं होना कभी-कभी उसमें भेडिए का ताव भी आ जाता है !

मन हलके से कहता, दिनकर निरपराधी होते हुए भी फासी पाने वाला है—उस बचाने की इच्छा होने के बावजूद प्राचाय जी वसी सिफारिश करन का साहस नही बटोर सकेंगे। सत्य की अपेक्षा सस्था का महत्व अधिक मानने के सिवा उनके सामने कोई चारा नही है !

वे गुलाम हैं ! मैं गुलाम हू। गुलाम किसीको रिहा नही करवा सकता। किन्तु सुलू ? वह भी तो गुलाम ही है ! उसने नीति और पतिव्रता धम के विपरीत आचरण किया है। हो सकता है कि उसका यह विद्रोह स्वाभाविक हो। किन्तु उसकी जानकारी ससार को हो जाए तो सारा जीवन किसी अधेरे कोन में मुह छिपाकर बिताना पड जाएगा। लोग उसका उल्लेख हमेशा व्यभिचारिणी तथा कलकिनी शब्दो स किया करेंगे। रवीन्द्र ठाकुर ने ठीक ही कहा है कि इसान दयालु होता है किन्तु आदमी क्रूर होते हैं ! ऐसे समय उस वचन की यथार्थता अनुभव करने को मिलती है !

स्टेशन पर भगवन्तराव की गाडी उन्हें लेने आई नहीं थी। प्रवास म दो एक बार उन्हे लगा था कि यह सोचकर कि तार मिलते ही मैं प्रस्थान करूगा भगवन्तराव शायद स्टेशन पर अपनी गाडी भेजेंगे। इसीलिए स्टेशन पर उतरते ही वहां गाडी न पाकर उन्हे कुछ अटपटा अवश्य लगा। किन्तु तुरन्त ही सोचा, भगवन्तराव बिस्तर से उठ नहीं पा रहे होंगे। ऐसी बातो के बारे मे आदेश देने के लिए भी स्वस्थ रहना जरूरी होता है।

तागे में बैठ कर भगवन्तराव के बगले की ओर जाते समय भी वे भगवन्तराव की बीमारी के बारे मे ही सोच रहे थे। अचानक आने वाली बीमारियो के कितने ही नाम उन्होंने याद किए। कॉलिज मे विज्ञान पढाने वाले प्राध्यापक की बेटी को गत नवम्बर मे अचानक घटसर्प हो गया था। मुह मे बहुत अधिक छाले पड जाने के कारण ही कोई चीज लीलना निगलना उसके लिए मुश्किल हो रहा है ऐसा जानकर भी उसकी मा ने बीमारी का फौरन इलाज करवाने में कुछ शिथिलता बरती। नतीजा यह हुआ कि वह प्यारी-प्यारी लडकी काल के गाल मे समा गई!

मृत्यु !

अनजाने में उस शब्द का उच्चारण होते ही दादासाहब सिहर उठे।

एक भयानक कल्पना मन मे कौंध गई।—जीवन आखिर क्या है? मौत के साथ खेली जा रही आखमिचौली ही तो है! मौत के हाथ न आने के लिए आदमी अपनी सारी शक्ति लगा देता है! और अन्त मे—मौत हजार आखो वाली होती है। कौन किस जगह लुक छिप बठा है, उस बरा बर दिखाई देता है। देखते ही देखते मे वह लुके छिपे आदमी को ढूढ लेती है। *यदि नही, ता दिनकर, भगवन्तराव और सुलू पर इतनी कच्ची उम्र म* मौत का साया इस तरह अचानक क्यो आ पडता? भगवन्तराव सख्त बीमार हैं, दिनकर फांसी पर चढ़ाया जाने वाला है और सुलू ने शायद आत्महत्या—

शायद इसी तालाब म उसकी—

तागा भगवन्तराव के बगले के द्वार पर खडा हो गया। वरना इन्ही मनहूस विचारा के कारण दादासाहब न जाने कब तक, परेशान होते।

तागा रुकने की आवाज सुनाई देते ही बरामदे की बत्ती जल उठी। नौकर दौडता हुआ आया।

तागे वाले को पैसे देकर दादासाहब बगले के आहते मे आ गए। बगले मे प्रवेश किया। भगवन्तराव की कही पर कोई आहट नही थी। उन्होने सोचा शायद तीसरी मजिल पर अपने कमरे मे सोए होगे। किन्तु दीवान-खाने के पास आते ही—

उनके कदम यकायक वही के वही जमे से गए। चूडियो की खनक सुनाई दी थी उन्हे।

आनन्द मन म समा नही रहा था। उन्हे लगा, शायद भगवन्तराव द्वारा मुझे तार देने के बाद ही सुलू यहा आ पहुची होगी। मन का भारी बोझ हट सा गया।

अब वे दीवानखाने की खिडकी के पास आ गए थे। उन्होने भीतर देखा, कोई युवती उनकी ओर पीठ किए भगवन्तराव का सिर दबा रही थी।

मन ही मन हर्ष स कहने लगे—वह सुलू ही है। वरना इतने प्यार से भगवन्तराव की सेवा सुश्रूषा और कौन कर सकती है?

किन्तु वे असमजस मे भी पड गए, क्योकि सुलू अच्छी खासी ऊची थी। वह युवती कुछ बौनी प्रतीत हुई। हो सकता है, भीतर की नीली रोशनी के कारण और माथा दबाने के लिए झुकने के कारण शायद सुलू कुछ कम ऊचाई की लगी हो।

वे हसते हसते आगे बढे। उनकी आहट सुनते ही भगवन्तराव ने दीवानखाने की दूसरी बत्ती जला दी। अब सफेद रोशनी कमरे म फैल गई।

वह युवती एकदम पीछे हट गई। उसने दरवाजे की ओर मुड कर देखा।

दादासाहब को लगा अपने दिल पर किसी ने बर्फ की सिल्लिया धर दी हैं। वह सुलू नही थी, कोई और ही युवा विधवा थी—

क्या भगवन्तराव की कोई बहन-वहन?

असम्भव! भगवन्तराव तो ससार मे अकेले ही थे। उनके नाते-

रिश्ते का भी कोई न था। इतने वर्ष म न तो वे किसी रिश्तदार क यहां गए थे, न कोई सगा सम्बन्धी उनके घर आया था।

तो यह युवती कौन होगी ? एकदम परिचित-सी, घर जसा आचरण करने वाली—और शायद पत्नी या बहिन को ही शोभा देने योग्य समीपता भगवन्तराव स रखने वाली—शायद कोई नर्स-वर्स होगी।

किन्तु उसकी यह इतनी निकटता ? इतनी समीपता ?—

विषवृक्ष लगाने नही पडते, वे अपन आप बढ़ जाते हैं। सशय का भी कुछ यही हाल होता है। दादासाहब सोचने लगे—

वह युवती रूखी नजर से उन्हें देखती हुई चली गई। भगवन्तराव ने 'आइए' कहकर उनका स्वागत किया, किन्तु उनके स्वर म हमेशा का वह उल्लास नही था।

दादासाहब को दखत ही भगवन्तराव के तोते उड गए। चेहरा एकदम फीका पड गया।

दादासाहब उनके सामने ही सोफे पर बठ गए। सोच रहे थे कि भगवन्तराव अब बस उनसे पूछने हो वाले हैं 'सुलू कहा है ?' उसका उत्तर दिया जाए ? किन्तु भगवन्तराव बुत बने रहे। अब तो दादासाहब को ही कुछ न कुछ बोलना जरूरी हो गया था।

उन्होने पूछा, क्या तकलीफ है आपको ?'

कुछ भी नही !' भगवन्त ने कहा। अपन उत्तर से दादासाहब को असमजस मे पडा देखकर उन्होंने आगे कहा, हम डाक्टर लोग यह मानकर चलते हैं कि सभी बीमारिया तन की होती हैं। किन्तु—'

वे रुक गए। आगे क्या कहे, दादासाहब की समझ मे नहीं आ रहा था। दीवार पर लगे चित्र की ओर देखते रहने का बहाना अच्छा था।

चित्र क्रौंचवध का था। व्याध के तीर से मारे गए पछी को सीने से लगाकर विलाप करती एक युवती चित्र मे थी—

भगवन्तराव बिलकुल उसी चित्र के नीचे आ बठे सयोगवश ? या जान बूझकर

दादासाहब जानकर दूसरी ओर देखने लगे। कोने मे रखी सितार पर उनकी नजर गई। बात आगे चलाने के लिए उन्होंने यू ही पूछ लिया,

'सितार कौन बजाता है ?'

'कोइ नही !'

'तो फिर ?'

'सुलू के लिए मैंने वडे शौक से खरीदी थी ! किन्तु उसने इसे छुआ भी नही ! मजाक मे कहा करती थी कि आपका और मेरा जोर का झगडा होगा न, तब बजाऊगी मैं। हमारा झगडा हुआ, वहुत वडा झगडा हुआ। किन्तु इस सितार को हाथ लगाए बिना सुलू चली गई !'

भगवन्तराव मन का दर्द स्वर मे प्रकट न होने की चेष्टा करत हुए बोल रह थे। किन्तु घायल की गति चेहरे पर प्रकट हो ही जाती ह, चाहे वह कितना ही बहादुर क्यो न हो। भगवन्तराव के स्वर मे अन्तरतम की आहत वेदना बराबर झाक रही थी।

भीतर गई वह युवती भोजन के लिए चलने की सूचना लेकर आई तब दादासाहब को भी अच्छा लगा। काफी देर से वे अनुभव कर रहे थे कि दो व्यक्तियो म हुए झगडे की अपेक्षा उनका मौन अधिक दु सह होता है। अब तक तो उन्हे लग रहा था कि किसी फन्दे मे वुरी तरह उलझ गए हैं व।

भोजन करत समय भी भगवन्तराव का मौन जारी था।

दादासाहब अब उस युवती को गौर से निहार सके। उसके माथे पर सौभाग्यसूचक सिंदूर भर नही था। बाकी उसने वेलवूटे की सुन्दर साडी पहिन रखी थी, स्लीवलेस ब्लाऊज से निकली अपनी गोरी चिट्टी बाहा की आर वह वीच-बीच मे वरवस ही देखती थी और खास आश्चय की बात तो यह थी कि उसन बालो म मोतिया का गजरा भी बाधा था।

दादासाहब के मन म उसके बारे मे तरह तरह के तक कुतक उठने लग।

युवती भगवतराव को आग्रह करके खाना परोसती जा रही थी। किन्तु भगवतराव का भोजन म कतई ध्यान नही था। आग्रह से परोसी गइ चीजो की ओर उगली दिखाकर उन्होने जब कहा, "यह सब मैं थाली मे ही छोडन जा रहा हू," तो उसन हसते हसते कहा, 'वेशक छोड दीजिए, म जो हू, खा लूगी !' भगवतराव द्वारा थाली म छोडा जाने वाला भोजन स्वयम्

खा लेने की उसकी कल्पना* और मेरे सामने उस व्यक्त करने का उसके द्वारा किया गया साहस—इस सब का क्या मतलब हो सकता है ?

इस युवती का भगवतराव के साथ कोई राज जरूर होगा, दादासाहब के मन म सन्देह पक्का होने लगा।

दीवानखाने की दाहिनी ओर के कमरे म दादासाहब के सोने का प्रबध किया गया था। भीतर के सामान से स्पष्ट था कि बाईं ओर का कमरा उस युवती का होगा।

दादासाहब का भोजनोपरान्त पान देने के बाद भगवतराव न कहा, "आप प्रवास के कारण थक गए होंगे ! किन्तु—"

"नही ! नही ! ऐसी कोई बात नही ! घण्टा दो घण्टा बातें करते बैठने के लिए मैं तैयार हू !"

'मैं आपको एक पत्र पढने के लिए देने जा रहा हू," कहकर भगवतराव तीसरी मजिल के अपने कमरे म गए।

किसका पत्र होगा ?

और किसका हो सकता है ? सुलू का ही होगा ! आत्महत्या करने से पहले भगवतराव के नाम लिख छोडा होगा !

अपने आगमन से लेकर अब तक उन्होने 'सुलू कहा है ?' की मामूली पूछताछ तक नहीं की, उसका कारण यही होगा।

भगवतराव को विश्वास हो गया है कि सुलू अब इस दुनिया म नही रही। उनकी बीमारी भी शायद यही है। यूँ ही नहीं, कुछ समय पहले उन्होने कहा कि मेरी बीमारी मन की बीमारी है। आज तक उन्होने किसी भी सुदरी का अपने पास भी फटकने नहीं दिया था। किन्तु सुलू के आचरण म उन्हे भारी आघात पहुँचा होगा ! डूबते को तिनके का भी सहारा काफी प्रतीत होता है। दुख से पस्त आदमी भी कुछ वसा ही करने लगता है, उस धीरज बधाने के लिए, हिम्मत बढ़ाने क लिए किसी की आवश्यकता अनुभव होता है ! सम्भवत यह विधवा युवती भगवतराव क दवा-

* पुराने जमाने म महाराष्ट्र की नारी पति की थाली म ही जूठा पन्नाय खाने को पतिव्रत धर्म

खाने म काम कर रही कोई नस वस होगी ! सूलू के रहते उसे इस घर मे और भगवतराव के मन मे प्रवेश भी नही मिला होगा। किन्तु आज—

भगवतराव एक लिफाफा लिए वापस आ गए। लिफाफा काफी मोटा था !

दादासाहब ने उसे लिया। वह बद था !

गौर से देखने पर दादासाहब को लगा कि किसीने यह लिफाफा खोल कर फिर स बद किया है। कि तु हो सकता है कि यह केवल स देह हो।

लिफाफे पर नाम लिखा था—तीथस्वरूप दादासाहेब दातार !'

तीर्थ स्वरूप ?

सुलू ता ऐसा सबोधन कभी नही लिखती थी। फिर यह लिखावट भी—

लिखावट जानी पहिचानी सी लगी। किसकी थी—?

अचानक स्मृति कौध गई—कही दिनकर की तो नही ?

उन्होने जल्दी जल्दी लिफाफा खोला। उस लम्बे पत्र का अन्तिम पष्ठ तथा नीचे प्रेपक के हस्ताक्षर उन्होने अतीव आतुरता से देख। नीचे हस्ताक्षर—

पत्र दिनकर का ही था !

उन्होने पढा, लिखा था—'आपका अनचाहा शिष्य दिनकर सरदसाइ'। पढते ही दादासाहब की आँखें पनिया गइ !

धुधली हो चली नजर से वे उस नाम के ऊपर की कुछ पक्तिया पढने लग— बताऊ, कब ? अगले ज म मे !'

पुनज म म विश्वास रखता हू। बहुत चाहता हू कि फिर ज म लेना हो तो सुलू का बटा बन कर उसकी कोख स ज म लू। कि तु मैं फिर ज म लूगा तब हमारा यह भारत स्वतन्त्र हो चुका हागा, हिमालय के समान उन्नत मस्तक किए वह दुनिया के अ य राष्ट्रो की ओर स्वाभिमान स देखने लगा होगा ! आज का अनाडी, अधभूखा किसान अपनी मातृभूमि का सुखी सवक तथा शूर सनिक बन चुका होगा !

मेरा यह अन्तिम सपना सच हो न हा, किन्तु आदमी सपना के भरासे ही तो जिया करता है। यही क्यो ? मौत की गोद म भी वह नित नए

मेरी फासी की सजा कायम की गई है। उन्होने यह भी बताया कि परसो मुझे फासी दे दी जाएगी।

दादासाहब ने चौंक कर पत्र पर अकित तारीख देखी। तारीख कल की थी! इसका मतलब तो यही न कि दिनकर को कल ही सवेरे फासी दे दी जाएगी? भगवतराव ने तो इस विषय मे कुछ भी नही बताया।

क्यो बताते? दिनकर के प्रति उनके मन मे द्वेष जो भरा होगा।

धडकते दिल से दादासाहब आगे पढने लगे।

फासी देने से पहले अभियुक्त से यह पूछा जाता है कि 'तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है?' भगवतराव ने रस्मी तौर पर यही प्रश्न मुझसे भी किया। मैंने छूटते ही उत्तर दिया, 'मुझे एक पत्र लिखना है।' कुछ विकलता से उन्होने पूछा, 'किसे?' मजिस्ट्रेट सामने ही खडे थे। भगवतराव को शायद यह डर लग रहा था कि कही उनके सामने मैं सुलू का नाम न ले लू।

सुलू का नाम लेकर अदालत मे मैं अपने आपको बचा ले सकता था। शायद मैं वैसा कर भी जाता। किन्तु कब? यदि सुलू से मैंने प्यार न किया होता! यदि मेरी यह आस्था न होती कि त्याग ही प्रेम की आत्मा होती है! मैंने जब बताया कि मैं आपको पत्र लिखना चाहता हू, तो भगवतराव काफी आश्वस्त हो गए। उन्होने मुझे वचन दिया है कि यह पत्र वे सुरक्षित ढग से आपको दे देगे।

दादासाहब आपको ही यह पत्र लिखने का कारण—

पत्र दो दिलो की बातचीत होती है! और इस दुनिया मे जिनसे मैं दिल खोलकर अपनी बात कह सकता हूँ ऐसे दो ही व्यक्ति हैं—एक सुलू और दूसरे आप!

मेरी मा—मुझे गिरफ्तार कर लिया जाने का समाचार मिलते ही सिधार गई।

बेचारी ने ससार से छुटकारा पा लिया।

मेरी दीदी!

वह यहा के एक बडे महाजन की पत्नी है। भयादूज पर एक बार उसने मेरी आरती उतारी है। मैंने भी उस भाई के नाते उपहार दिया है।

मपने देखते-देखते चिरनिद्रा मे लीन हो जाता है।

वदे मातरम
आपका अनचाहा शिष्य
दिनकर सरदेसाई

दादासाहब के आसू उस पत्र पर गिरने लगे। उन्होने देखा, भगवत-राव कभी के चले गए थे।

दादासाहब दीवानखाने से उठकर अपने कमरे मे आ गए। किवाड उढका कर उन्होने मेज के पासवाली बत्ती जलाई। पलग के पास पडी आरामकुर्सी मेज के पास खीच ली और उस पर बठ कर वे दिनकर का वह पत्र पढने लगे।

तीर्थस्वरूप दादासाहब दातार जी को साष्टाग दडवत।

दादासाहब, चार साल मैं आपके सहवास म रहा। आपने मुझसे पुत्र वत प्रेम किया। परीक्षा म उच्च श्रेणी मे पास न हो सका इसलिए आप मुझसे काफी नाराज हुए थे। किन्तु वह भी प्रेम तथा ममता की ही निशानी थी, क्योकि क्रोध भी प्रेम का ही दूसरा पहलू है। है न ? इसीलिए आप ही को मैं यह अन्तिम पत्र लिख रहा हू।

यू तो पत्र-वत्र लिखने मे बचपन से ही मैं बहुत आलसी रहा हू ! सुलू और मुझम इतने वर्षों की घनिष्ठ मैत्री रही, किन्तु आज तक, पता नही, उसे मैंन मुश्किल स दस बीस पत्र भी लिखे होगे या नही। जो कुछ भेज होगे वे एकदम सक्षिप्त थे !

किन्तु आज मैं काफी लम्बा पत्र लिखने जा रहा हू। जीवन का पहला और अतिम लम्बा पत्र है।

रामगढ के न्यायदेवता ने मुझे फासी की सजा सुनाई है। राजासाहब ने एक बार फिर से मेरी बात सुनने का निश्चय किया। किन्तु न्याय की विडम्बना का नाटक कितनी ही बार खेला जाय, उसम से गभीर निष्कर्ष कभी नही निकाला जा सकता ! इसीलिए मैंने राजासाहब क सम्मुख फिर से कफियत पेश करने से इकार कर दिया। मजिस्ट्रेट और कारागृह क मुख्य अधिकारी डॉ० शहाणे मेरे पास आए। उन्होने मुझे सूचना दी कि

मुझे अच्छी तरह से मालूम है, उन्हाने आपको क्या-क्या समझाया होगा। कहा होगा, मेरे पिताजी यद्यपि दरोगा हैं, फिर भी बहुत ज्यादा पिअक्कड हैं। उन पर काफी कर्जा चढ़ा है। इसलिए कॉलेज का खर्चा पूरा करने मे व असमथ हैं आदि आदि।

उनकी हर बात सच थी। किन्तु हमारे जीजाजी को एक बात मालूम नही थी। अपनी मा की दुदशा मुझसे देखी नही जाती थी। वह थोडी भी सुख म रहती तो मैं वार[1] लगाकर भी अपनी कॉलेज शिक्षा पूरी करने के लिए तयार हो जाता। पिताजी के नशापानी के कारण उसको जा कष्ट सहन पडत थे—कभी कभी तो मदिर जाने के लिए योग्य एकाध अच्छी साडी भी उसक पास नही होती थी—

इसीलिए मैंने आगे की पढाई छोडकर क्लक बनने का विचार किया किया था। क्लर्की मे मुझे प्रति मास बीस ही रुपये मिलने वाले थे। किन्तु अपने पहले वेतन से मा के लिए एक अच्छी सी साडी खरीद लाने का भी मैंने निश्चय कर रखा था।

किन्तु विधाता के—नही आपके मन म मुझे क्लक बनाना नही था।

आपने दोपहर मे मुझे बुला भेजा। जीजाजी ने आपसे पहले ही कह दिया था कि मद्रिक मे मैंने काफी अच्छे नबर पाए है, सस्कृत म ता मेरी अच्छी गति है और जगन्नाथ शकरसेठ छात्रवत्ति बस थोडे मे ही चूक गई है। यह मालूम होते ही आपने मुझसे कहा, 'दिनकर मैं ज्योतिष अच्छा जानता हूँ। तुम्हारा चेहरा देखकर मैं बता सकता हूँ, तुम आग जाकर क्या बनन वाले हो!'

मैं क्लक बनने वाला हू! मैंने हठपूवक कहा।

'उ हू! तुम कवि बनने वाले हो। मेरे जसा प्रोफेसर बनने वाले हो।' आपने हसकर कहा।

---

1 महाराष्ट्र म गरीब विद्यार्थी शहर म पढने जाकर सप्ताह के एक दिन किसी के यहा भोजन करने का प्रबध करते थे। इस प्रथा का 'वार लगाना कहते हैं। इस तरह सात घरो मे सात दिनो का प्रबध हो जाता था।

किन्तु सच बताऊँ ? मुझ जैसे को अपना भाई मानने म उसे अपमान अनुभव होता है। मैं कगाल हू। राजासाहब की अवकृपा का शिका र हो गया हू। अनाडी लोगो मे हिलमिल कर रहने के कारण मैं भी गावढावाला बन गया हू। उसके विचार से यह सब महज पागलपन ही है। परसो मुझे फासी द दा जाएगी, तब शायद बहन का कलेजा कुछ बल खा जाएगा। हो सकता है कि उसकी आखें भी भर आएगी। किन्तु दूसरे ही दिन से वह फिर मे अपने ऐश्वय तथा ठाठवाट मे भाई को भुला भी देगी।

आज का मानव-सुधार भावनाआ का मरघट है यह बात मैं अनुभव से सीख पाया हू। आज के इन्सान का दिल सीने मे बाइ ओर छिपा नही होता वह हाता है उसकी दाइ जेब म और वहा स वह झाकता भी रहता है।

मेरे जीजाजी ! उनके जसे धनी साहूकार को मुझ जैसे आ दालनकारी का आचरण निरी मूखता लगे तो उस ो क्या आश्चर्य ? फिर भी एक मामले म उ्हान मुझपर जो उपकार किए है, मैने कभी भुलाए नहीं है ! उन्ही के कारण मुझे आपका सहवास मिला—सुरू मेरे जीवन मे आई।

वह दिन आज भी आखा के सामने खडा है—हमारे कालेज म विज्ञान के लिए एक नया कक्ष खोलना था। उसके लिए नया भवन बनाने की आवश्यकता थी। उस भवन के लिए चदा इकटठा करने आप रामगढ आए थे। गाव के लोग आपको दिल खालकर भरपूर चदा इसलिए दे रहे थे कि राजासाहब, जो आपकी सस्था के उपाध्यक्ष थे को प्रसन्न किया जाया। उस समय आपका निवास मेरे जीजाजी के घर पर ही था।

दीदी को मा का कुछ स देशा देने के लिए मैं अपने जीजाजी के घर आया। आपने हसकर पूछा 'क्या पढते हो बेटे ? मैंने उत्तर दिया अभी अभी मट्रिक पास कर लिया है। 'किस कालेज म जान वाल हो ?' इस प्रश्न का मैंने रूखा सा उत्तर न्दिया, मैं क्लर्क बनने वाला हू !

आपने मेरे जीजाजी की ओर देखा। शायद आपके निए यह एक पहली हो गई थी कि इतने अमीर आदमी का साला कालज म दाखला क्यो नही ले सकता। जीजाजी ने आपसे कहा, 'सारा मामला क्या है मैं आपका वाद म समझाऊँगा !'

मुझे अच्छी तरह से मालूम है, उन्होने आपको क्या-क्या समझाया होगा। कहा होगा, मेरे पिताजी यद्यपि दरोगा हैं, फिर भी बहुत ज्यादा पिअक्कड हैं। उन पर काफी कर्जा चढा है। इसलिए कालेज का खर्चा पूरा करने म व असमथ है आदि आदि।

उनकी हर बात सच थी। किन्तु हमारे जीजाजी को एक बात मालूम नही थी। अपनी मा की दुदशा मुझसे देखी नही जाती थी। वह थोडी भी सुख म रहती तो मैं वार[1] लगाकर भी अपनी कालेज शिक्षा पूरी करन के लिए तयार हो जाता। पिताजी के नशापानी के कारण उसको जो कष्ट सहने पडते थे—कभी कभी तो मदिर जाने के लिए योग्य एकाध अच्छी साडी भी उसके पास नही होती थी—

इसीलिए मैंने आग की पढाई छोडकर क्लक बनने का विचार किया किया था। क्लर्की म मुझे प्रति मास बीस ही रुपये मिलने वाले थे। किन्तु अपने पहले वेतन से मा के लिए एक अच्छी सी साडी खरीद लाने का भी मैंने निश्चय कर रखा था।

किन्तु विधाता के—नही आपके मन मे मुझे क्लक बनाना नही था।

आपने दोपहर मे मुझे बुला भेजा। जीजाजी ने आपसे पहले ही कह दिया था कि मट्रिक मे मैंने काफी अच्छे नबर पाए है, सस्कृत म तो मेरी अच्छी गति है और जगन्नाथ शकरसेठ छात्रवृत्ति बस थोडे म ही चूक गई है। यह मालूम होते ही आपने मुझसे कहा, 'दिनकर मैं ज्योतिष अच्छा जानता हूँ। तुम्हारा चेहरा देखकर मैं बता सकता हूँ, तुम आग जाकर क्या बनने वाले हो।'

मैं क्लक बनने वाला हू! मैंने हठपूवक कहा।

'उ हू! तुम कवि बनने वाले हो। मेरे जैसा प्रोफेसर बनन वाल हो।' आपने हसकर कहा।

---

1 महाराष्ट्र म गरीब विद्यार्थी शहर मे पढने जाकर सप्ताह के एक दिन किसी के यहा भोजन करने का प्रबध करत थे। इस प्रथा को 'वार' लगाना कहते हैं। इस तरह सात घरो मे सात दिना का प्रबध हो जाता था।

दादासाहब आपकी दूसरी भविष्यवाणी सच नही निकली।

किन्तु पहली ?

कवि दो किस्म के होते हैं—कविता लिखने वाले और न लिखने वाले! रवि ठाकुर पहली किस्म के महान कवि थे।

मैंने तो कभी कविता नही लिखी। किन्तु सोचता हू—दूसरी किस्म का मैं भी एक छोटा कवि हू और बताऊ, इस किस्म मे सारी दुनिया म आज का महाकवि कौन है ? मेरी राय मे महात्मा गाधी ! मैं उनका अत्यत आदर करता हू।

शायद आप नही मानेंगे कि गाधीजी वाल्मीकी के समान ही महाकवि हैं। उनके अहिंसावाद के आग्रह की जड क्या है ? क्या असीम कोमल भावनाए नही ?

वाल्मीकी को भी अपना पहला काव्य लिखने की स्फूर्ति क्या इसी तरह की भावनाओ से नही मिली थी ? क्रौंचवध के बारे मे वाल्मीकी का वह श्लोक—सुलू के यहाँ उस प्रसग का एक बहुत ही सुदर चित्र टगा है ! आपने शायद देखा भी होगा !

दादासाहब ने आखें मूद ली।

दीवानखाने म लगा वह चित्र ! दिनकर उसकी सुदर कह कर प्रशसा कर रहा था। किन्तु दादासाहब को अब लगने लगा कि वह चित्र भापण है। उसम चित्रित वह रक्तरजित पक्षी और कल फासी पर जाने वाला दिनकर—

मौत का फदा गले मे पडने के बाद भी क्या दिनकर उस चित्र के सौंदय का रसग्रहण कर सकता है ? यह स्थितप्रज्ञता उसने कहा से प्राप्त की ? कसे अजित की ? जीवन भर गीता का अध्ययन करने के बाद भी जो मैं पा नही सका, वह इस आदोलनकारी लडके ने कसे पा लिया ?

दिनकर का पत्र आगे पढने के लिए दादासाहब अधीर हो गए।

उन्होने आखें खोली और पढने लगे—

'मैं कुछ बहक गया लिखते-लिखते ! है न ?'

भगवतराव की मेहरबानी से मुझे काफी मोमबत्तिया मि हैं। रात-भर लिखता रहू तो भी पर्याप्त होगी

हा, तो मैं कह रहा था, अन्त मे आपके आग्रह के खातिर मैं कालेज मे प्रवेश लेने के लिए तैयार हो गया। आपने अपने ही घर मुझे रख लेने का इरादा बताया। तब मैंने पहली बार जाना कि पैसे और रिश्ते की अपेक्षा इन्सानियत बहुत बडी चीज होती है। मैंने अपनी मा से कहा भी, 'मा मेरी भगवान म कोई आस्था नही, किन्तु यह सच है कि इसान के रूप मे ससार म भगवान है!'

बचपन से ही भगवान मे मेरी आस्था क्या डिग गई, आप शायद आश्चय कर रहे होगे।

वह भी बताता हू।

स्कूल से लौटते समय मार्ग मे एक दत्तमदिर था। मेरे साथ के बच्चे उस भगवान की तीन परिक्रमा लगाया करते, परीक्षा के लिए जाते समय हनुमान को मनौतिया चढाते, अपनी कापियो पर 'राम राम राम' सौ सौ बार लिखते और कुछ बच्चे तो शनिमहात्म्य का पाठ भी किया करते थे। मैंने एसा कुछ भी नही किया।

यू देखें तो मेरी मा बहुत देवभक्त थी। उसके पूजाघर म छोटे बड मिला कर कोई पचास देवता तो जरूर रहे होंगे। उन सबका विधिवत् पूजन किए बिना वह पानी तक नही पीती थी। बचपन की जो पहली स्मति आज भी मेरे मन मे है, उसमे मेरी मा हैं और उसके व सारे देवता भी।

उस स्मति का चित्र आज भी कितना सुहाना लगता है!

गोधूलि समय बीत चुका था। मा ने पूजाघर मे निराजन जलाया और दीदी से शुभ करोति' का पाठ कहने को कहा। पिछवाडे म वे तुलसी के पास दिया जला आई। फिर पूजाघर के सामने हम दोनो को बिठा कर व करुणाष्टक करने लगी—छिन छिन पछतावे म जलता, माया मोह उबारो व एक पक्ति कहती और रुक जातीं। फिर हम दोनो भाई-बहन उसी पक्ति को दोहराते। यह सिलसिला चलता रहा। दीदी मुझसे पाच छह साल बडी थी, वह पक्ति को सफाई से कह गई। किन्तु मैं तोतलाते कह गया, 'पचतावे म जलता माया मोह उबालो इसपर दीदी मुझे चिढाने लगी तोतलाराम, तोतलाराम ' मैं रुआसा हो गया, किन्तु

मा ने तुरन्त मुझे गोदी में उठा लिया और दीदी से कहा, 'चलो तोतलाराम ता तोतलाराम ही सही, किन्तु जनमभर वही मुझे साथ देने वाला है। तेरी रसवती का क्या भरोसा? अक्का और माई चली गई वसी एक दिन तू भी चली जाएगी पति का हाथ पकड कर और मुझे भुला देगी।'

मा की गोदी म बैठकर मैं दीदी की ओर तुच्छता स दखन लगा।

अक्का की शादी मेरे जन्म से पहले ही हो चुकी थी और माई की तब जब मैं घुटनो के बल चलने लगा था। व दोनो बडी बहनें कभी कभार ही दो चार दिन के लिए मायके आती थी। इसीलिए उन दोना से मुझे कोई लगाव नही था। हा, दीदी के साथ मैं अवश्य ही बहुत हिलमिल गया था। किन्तु वह बडप्पन की अकड दिखा कर मुझे खामोखा चिढ़ाती और वसे भी वह थी बहुत ही डरपोक। उसका यह डरपोकपन मुझे कतई भाता नही था। दरोगा का लडका होने के नाते मुझे अपनी ढिठाई बघारन म जब तब बडा आनन्द आता। कैरिया चाहे कितनी ही ऊचाई पर लगी हो, आम के पड पर बदर जसे तजी के साथ मैं चढ़ जाता और अपने दोस्तो साथिया के सग कैरियो के खटटापन का मजा लेता। ऐसे कामा म मेरा सानी कोई नही रखता। गुल्ली-डडा खेलते समय सनसनाती आती गुल्ली मैं एक हाथ से ही रोक लेता। साथियो को जमा कर बागानो मे घुसता और कोमल कटहलो पर हाथ साफ करता। क्योकि पिताजी दरोगा थे, कोई बागान मालिक मुझसे कुछ नही कहा करता। किन्तु मैं बरबस मानता कि वह मेरे पराक्रम से आतकित है।

एक बार मेरे एक साथी को एक अजीब बात सूझी। उसने सोचा कि यदि सीढ़ियो के सिरे पर नीचे बडी बाल्टी रखी जाए और ऊपर स कोई फिसलता लुढकता नीचे आजाय, तो वह बाल्टी मे कस गिरेगा—सिर के बल या पाव के? उसका कहना था लुढकते आने वाले का सिर बाल्टी म जाएगा। मैंने सीढ़िया गिनी, कुछ हिसाब किया और कहा—नही उसका सिर ऊपर ही रहेगा।

साथी अपनी बात पर अड गया और मैं अपनी बात की सत्यता अन्य बच्चो से मनवाने के लिए जीने पर से लुढकते आने का प्रयोग मैंने स्वयम् कर दिखाया। किन्तु मेरे कलाबाजी खाने स पहले ही दीदी डर कर भाग

गई चीखते चिल्लाते ! ऊपर वाली सीढी पर कलाबाजी खाकर मैंने अपने आपका ढीला छोड दिया। हर सीढी पर फुटबाल की तरह उपटा खाते, गिरते उछलते मैं नीचे चला आ रहा था। हर सीढी पर बदन मानो सिल-लाढ मे पिसता जा रहा था। किंतु अन्त मे बाल्टी मे मेरे पाव ही गए। 'जीत गया, जीत गया' मैं खुशी के मारे चिल्लाया। आगे क्या हुआ, मैं नही जानता।

मैंने आखें खोली तो पाया कि मेरे बदन पर रक्तचदन आदि के लेप लगा कर मा मेरे सिरहाने बैठी है। मेरे आखें खोलते ही उसने पुकारा, 'दिनू! दिनू।' पुकार सुन कर पिताजी भी भीतर आए और उन्होने भी पुकारा, 'दिनू'। मैंने कहा 'जी'। मा से पिताजी ने कहा, 'अजी रोती क्यो हो? दिनू का बदन चटटान है चटटान! कल ठीक ही जाएगा। इसमे तनिक भी सन्देह नही कि बेटा है बहुत ही साहसी! मैं तो बस मामूली दरोगा बन कर ही रह गया। किंतु देखना दिनू डी० एस० पी० बने बिना नही रहेगा। 'क्यो, है न दिनू जी?'

यह आखिरी वाक्य कहते समय वे बहुत प्यार से मेरे पास आए, बैठे और मेरे मुह से मुह सटाते हुए उन्होने पूछा 'क्या, है न दिनूजी?'

मैं हृप से हा कहने ही वाला था कि पिताजी के मुह से इतनी तीव्र बदबू आई कि मैंने तत्काल मुह फेर लिया! आसू पी गया और मा की ओर देखकर बोला, मा, मैं पुलिस सुपरिटेन्डेंट बनने वाला हू भला!'

उसके बाद कई दिनो तक मैं मा के पूजाघर के सामने हाथ जोड कर दो बाता की मुराद मागता रहा—एक, बडा होने पर मुझे पुलिस सुपरिटेन्डेंट बना दो। और दो, पिताजी के मुह से इतनी गदी बदबू कभी मत आने दो।

किन्तु शीघ्र ही मुझे यकीन हो गया कि मा का भगवान किसी काम का नही है। वह कुछ भी करने के योग्य नही है।

अब ठीक से याद नही है, किन्तु शायद मैं चौथी या पाचवी कक्षा मे था तब की बात है। एक रात मां की चीख सुनकर मैं डर कर जाग गया। पहले तो लगा कि शायद वह चीख मैंने सपने मे सुनी होगी। पास ही मैं मा का बिस्तर था। वहा मैंने टटोल कर देखा, मा नही थी।

मैं आपके पाव पडती हू !' उसके रुआसे शब्द कही स सुनाइ दिए। मेरी तो कुछ भी समझ मे नही आ रहा था कि आखिर माजरा क्या है ?

सन्देह हुआ कि कही चार घर म घुस तो नही आए ? चोरो ने मा को बाध कर उसके गहने-वहन चुरा लिए होंगे !

कमरे में अधेरा था। मैं ढिठाई के साथ उठा। काने में रखी लाठी उठा ली और धीरे धीरे आगे बढने लगा।

मा का रोना अव साफ सुनाई दे रहा था। वे पिताजी के कमरे में रो रही थी। चोरो ने शायद उन्हे पिताजी के कमरे में वद रखा था। मैंने मा से कई बार सुना था कि सरकारी काम से पिताजी को रात-बेरात बाहर ही रहना पडता है। वे घर में नही हैं उसका लाभ उठा कर बदमाश घर में घुस आए होंगे। लेकिन उन्ह क्या पता कि आग चल कर पुलिस सुपरिन्टेन्डट बनने वाला आज के दरागा का लडका घर म है और वह चोरो की मिटटी पलीद किए बिना नही छोडेगा।

इसी तरह के विचार मन मे थे। कापत पावो को जैसे तसे ढाढस बधाता कमरे के द्वार के पास जा पहुचा। ख्याल था कि किवाड मे भीतर से कुडी चढाई होगी। इसीलिए मैंने किवाड पर जोर से लात मारी।

कि तु किवाड मे कुडी नही चढी थी।

वह तड मे खुल गया। और भीतर मैंने जो दृश्य देखा—

भीतर मा और पिताजी दोनो ही थे। पिताजी दाए हाथ से मा के मुह पर लगातार तमाचे जडते जा रहे थे और बाए हाथ से एक बोतल उसके मु ह म लगाने की चेष्टा करते हुए चिल्ला रहे थे—'पियो, पियो।' उस समय मै समझ नही सका, पिताजी मा को क्या पीने का आग्रह कर रहे हैं। किन्तु जब मा को मारने के लिए उन्होने फिर हाथ उठाया, तो होश हवास खोकर मैं आपे से बाहर हो गया और आगे बढ कर लाठी का एक प्रहार उनकी कलाई पर कस दिया।

पिताजी एकदम सहम तो गए उनका हाथ पल भर के लिए लूला भी पड गया, किन्तु दूसरे ही क्षण वे मुझ पर झपटते हुए चिल्लाए, हरामजादे मुझे मारते हो ? अपने बाप को मारते हो ?—एक दरोगा को मारते हो ?—ठहर जा बच्चू तेरी जान न ले लू, तो मैं—'

मुझे मारने के लिए उन्होंने हाथ उठाया किन्तु मा बीच म पड गई। वह मार भी उसी पर पडी।

मा मुझे लगभग घसीटते हुए ही कमरे के बाहर ले आई।

उस रात मुझे सीने से लगाकर वह लगातार फफकती रही। मैं उसकी आखो पर हाथ फेरता तो कुछ देर के लिए उसका रोना रुक जाता। किन्तु फिर मेरे ही किसी प्रश्न से वह फिर रोने लग जाती।

मैंने कहा, 'पिताजी बहुत बुरे हैं।'

उसने कहा, ऐसा नही बोलत बटा। वे बुरे नही है, हमारा भाग्य ही बुरा है।'

'भाग्य किसके हाथ मे होता है?'

'भगवान के।'

तो तुम्हारा भगवान, तुम्हारा भाग्य क्यो बदल नही देता?'

वह चुप रही। मैंने फिर से वही प्रश्न किया तो उसने कहा, 'दिनू भाग्य बदलना यदि भगवान के लिए भी सम्भव होता, तो राम वनवास मे क्यो जाते।'

मैं आराम से सो जाऊ। इसलिए वे मुझे थपकियां देने लगी। उनके सन्तोष के लिए मैं भी नीद लगने का नाटक करने लगा। किन्तु मन मे दो बातें लगातार उठ रही थी

पिताजी दरोगा हैं। वे मा को पीटते हैं। पुलिस सुपरिंटेंडेंट दरोगा से भी बडा अफसर होता है। वह तो अपनी पत्नी को गोली मारकर खत्म करता होगा। इसलिए किसी हालत मे डी० एस० पी० नही बनना।

और मा चाहे कितनी ही गुस्सा करे, उसके उस भगवान के सामने हाथ कभी नही जोडना। उसको प्रणाम नही करना। वह केवल चढाया हुआ भोग डकार जाने वाला भगवान है।

पिताजी ने मा को पीटा है, अत कल पिताजी को अवश्य ही कुछ न कुछ दण्ड देने का निश्चय किया तब जाकर कही मेरी आख लगी।

दूसरे दिन स्कूल से लौटते समय अपने बस्ते म तीन चार बहुत ही नुकीले पत्थर मैं भर लाया। पिताजी ने यदि मा पर फिर हाथ उठाया तो इन पत्थरो से जरूर उनका सिर फोड देने का पक्का इरादा मैंने कर

लिया।

बस्ता खूटी पर टाग कर 'मा भूख' कहता हुआ मैं रसोई क किवाड तक गया। मा को अभी तक चौके में ही पाकर मैं दग रह गया।

पूछा, मा आपने अभी तक खाना नहीं खाया ?'

उसने उत्तर दिया, 'नही !'

उस दिन बुधवार था। मां सोमवार तथा शनिवार को व्रत रखा करती थी। आज कोई व्रत नही था। फिर क्यो नही अब तक उसने भोजन किया ?

मैंने कहा, 'मा पहले आप खाना खा लीजिए फिर मुझे कुछ खाने को दे देना !'

बेटा, अभी मुझे भोजन करने म देरी है !'

'क्यो ?'

'कचहरी मे अब तक वे भूखे ही काम कर रह हैं। सुना है कोई बहुत बडा मुकदमा चल रहा है। उनके भूखे रहते, मैं भला कसे भोजन कर सकती हू ?'

कल रात पिताजी ने मा को बरी तरह पीटा था ! वह सब कुछ भुला कर मा उनकी प्रतीक्षा मे शाम के पाच बजे तक भूखी रही थी। मेरा मन मातृ भक्ति से भर आया।

मा का स्वास्थ्य वसे बहुत अच्छा नही था। तिस पर वह हमेशा कोई न कोई व्रत रखा करती थी और पिताजी के लिए इस तरह देर तक भूखी भी रहने लगी थी। उनका भोजन होते तक वह कुछ खाती भी नही थी।

मैंने कहा, मा, तुमने भोजन कर लिया तो पिताजी नाराज नही होगे !'

'अरे बाबा, उनसे पहले मैं भोजन नही करती, इसीलिए वे मुझस नाराज होते हैं। किंतु

किन्तु क्या मां ?'

उनसे पहले मैं भोजन कर लू, तो अधम हो जाएगा, दिनू !'

मेरे मन की अवस्था ठीक वसी ही हुई, जसे किसी लकवा पीडित शरीर की हो जाती है। उस दिन पहली बार मैंने जाना कि अपने सुख,

अहकार और जीवन के लिए अत्यावश्यक भोजन से भी अधिक मूल्य की काइ भावना भी इन्सान के जीवन मे हो सकती है। मा के विचार से वह भावना उसका धर्म थी। उसका पालन न होने पर 'अधम हो जाने' की चिन्ता उसे सताती थी। ऐसी महामना मा का बेटा होने के उपरान्त भी मैं पिताजी स बदला लेन वाला था? लुकछिप कर उन्हे पत्थर मारने वाला था?

नही! यह कदापि सभव न था। मैं बाहर गया, बस्त से वे पत्थर निकाल लिए और अभी सडक पर उन्हे फेंकने ही वाला था कि मा मेरे लिए कुछ चबना लेकर आ गई। उसने पूछा, ये पत्थर कहा स उठा लाए हो दिनू?'

मैंने उत्तर दिया, 'हमारी कक्षा म एक बहुत ही शतान लडका है। वह हर किसी के बस्ते म इस तरह पत्थर भर देता है।'

मा अपने धम का पालन कर रही थी, किन्तु मेरा धम क्या है, मेरी समझ म नही आ रहा था। इस प्रसग के बाद पढाई से मेरा मन उचट-सा गया। मैं अब भली भाति जान चुका कि पिताजी पूरे शराबी हैं। गाव मे उन्हे कोई भी अच्छा नही मानता था। शायद ही कोई उन्हे भला आदमी मानता था। स्कूल मे मैं पढ़ाई लिखाई मे कोई गलती करता तो शिक्षक तुरन्त उलाहना देत, 'तुम्हे पढ लिखकर भी क्या करना है, दरोगा के लडके हो, शतानी से बाज कसे आ सकते हो!'

उसी समय दीदी का विवाह होकर वह ससुराल चली गई। अब घर म हम तीन ही जीव रह गए। पिताजी, मा और मै। पिताजी रात बरात नशे म धुत घर लौटते। मेरी पढाई के बारे म तो व कभी पूछताछ नही करत। उनसे मेरी बोलचाल लगभग नही के बराबर ही रह गई।

घर के काम काज से तथा भगवान के पूजन अर्चन से मा को फुरसत कम ही मिला करती। वह प्यार से पीठ पर हाथ फेरती या मुह सहलाती ता मरा हौसला बढ जाया करता। किन्तु मुझसे चन्द बातें करने बठन के लिए उम शायद ही कभी फुरसत मिल पाती। कभी रविवार के दिन मैं जिद्द कर उससे कोई प्रश्न वश्न पूछता तो वह कह देती, 'अरे बाबा, अब तुम ता लगे हो अग्रेजी पढने। मैं अब तुम्हारे प्रश्नो का क्या उत्तर दू!'

लिया।

वस्ता खूटी पर टाग कर 'मा भूख' कहता हुआ मैं रसोई के किवाड तक गया। मा को अभी तक चौके मे ही पाकर मैं दग रह गया।

पूछा, मा, आपने अभी तक खाना नही खाया ?'

उसने उत्तर दिया, 'नही !'

उस दिन बुधवार था। मा सोमवार तथा शनिवार को व्रत रखा करती थी। आज कोई व्रत नही था। फिर क्यो नही अब तक उसने भोजन किया ?

मैंने कहा, 'मा पहले आप खाना खा लीजिए फिर मुझे कुछ खान को दे देना !

'बेटा, अभी मुझे भोजन करने म देरी है !'

'क्यो ?'

'कचहरी मे अब तक वे भूखे ही काम कर रहे हैं। सुना है कोई बहुत बडा मुकदमा चल रहा है। उनके भूखे रहते, मैं भला कसे भोजन कर सकती हू ?'

कल रात पिताजी ने मा को बरी तरह पीटा था ! वह सब कुछ भुला कर मां उनकी प्रतीक्षा मे शाम के पाच बजे तक भूखी रही थी। मेरा मन मातृ भक्ति से भर आया।

मा का स्वास्थ्य वैसे बहुत अच्छा नही था। तिस पर वह हमेशा कोई न कोई व्रत रखा करती थी और पिताजी के लिए इस तरह देर तक भूखी भी रहने लगी थी। उनका भोजन होते तक वह कुछ खाती भी नही थी।

मैंने कहा, 'मा, तुमने भोजन कर लिया तो पिताजी नाराज नही होगे !'

'अरे बाबा, उनसे पहले मैं भोजन नही करती, इसीलिए वे मुझस नाराज होते हैं। किंतु

किन्तु क्या मां ?'

उसने पहले मैं भोजन कर लू, तो अधम हो जाएगा, दिनू !'

मेरे मन की अवस्था ठीक वसी ही हुई, जसे किसी लकवा पीड़ित शरीर की हो जाती है। उस दिन पहली बार मैंने जाना कि अपने सुख,

अहकार और जीवन के लिए अत्यावश्यक भोजन से भी अधिक मूल्य की काइ भावना भी इन्सान के जीवन म हो सकती है। मा के विचार से वह भावना उसका धम थी। उसका पालन न होने पर 'अधम हो जाने' की चिन्ता उसे सताती थी। ऐसी महामना मा का बेटा होने के उपरान्त भी मैं पिताजी से बदला लेने वाला था ? लुकछिप कर उन्हे पत्थर मारने वाला था ?

नही ! यह कदापि सभव न था। मैं बाहर गया, बस्ते से वे पत्थर निकाल लिए और अभी सडक पर उन्हे फेंकने ही वाला था कि मा मेरे लिए कुछ चबना लेकर आ गई। उसने पूछा, 'ये पत्थर कहा से उठा लाए हो दिनू ?'

मैंने उत्तर दिया, 'हमारी कक्षा मे एक बहुत ही शतान लडका है। वह हर किसी के बस्ते मे इस तरह पत्थर भर देता है !'

मा अपने धम का पालन कर रही थी, किन्तु मेरा धम क्या है, मेरी समझ म नही आ रहा था। इस प्रसग के बाद पढाई से मेरा मन उचट-सा गया। मैं अब भली भाति जान चुका कि पिताजी पूरे शराबी हैं। गाव म उन्ह कोई भी अच्छा नही मानता था। शायद ही कोई उन्हे भला आदमी मानता था। स्कूल म मैं पढ़ाई लिखाई म कोइ गलती करता तो शिक्षक तुरन्त उलाहना देते, 'तुम्ह पढ लिखकर भी क्या करना है, दरोगा के लडके हो, शैतानी से बाज कसे आ सकते हो !'

उसी समय दीदी का विवाह होकर वह ससुराल चली गई। अब घर मे हम तीन ही जीव रह गए। पिताजी, मा और मैं ! पिताजी रात बेरात नशे मे धुत घर लौटते। मेरी पढाई के बारे मे तो वे कभी पूछताछ नही करत। उनसे मेरी बोलचाल लगभग नही के बराबर ही रह गई।

घर के काम काज से तथा भगवान के पूजन-अचन से मा को फुरसत कम ही मिला करती। वह प्यार से पीठ पर हाथ फेरती या मुह सहलाती तो मेरा हौसला बढ जाया करता। किन्तु मुझसे चन्द बातें करने बठन के लिए उसे शायद ही कभी फुरसत मिल पाती। कभी रविवार के दिन मैं जिद्द कर उससे कोई प्रश्न वश्न पूछना तो वह कह देती, 'अरे बाबा, अब तुम ता लगे हो अग्रेजी पढने। मैं अब तुम्हारे प्रश्नो का क्या उत्तर दू !'

पढ़ाई से मन उखडा-उखडा था और घर मे कोई हमजोली नही रह गया था। अत मैं किताबें पढने लगा। पुस्तक पठन म मेरा मन भी रमन लगा। रामायण, महाभारत, उपन्यास, प्रहसन, नाटक, जो भी हाथ आता मैं पढ डालता था। पढ़ते-पढते मैं विचार भी करने लगा।

दधीचि ऋषि ने अपनी हड्डिया गलाकर वृत्रासुर को मारने के लिए उनका वज्र बनाया, वह कहानी मैंने कई बार पढी। फिर तो मुझे कई और भी बातें समझ मे आने लगी, जो उस कहानी मे नही थी—दधीचि के बाल बच्चे उससे यह अनुरोध कर रहे हैं कि 'हमारे लिए प्राण त्याग न कीजिए।' किन्तु वह हसकर उनसे कहता है, 'यह तो मेरा धम है।'

खाडिलकर के भाऊबदकी नाटक मे वर्णित वह रामशास्त्री राघोबादादा को 'इस अपराध के लिए देहान्त के अलावा अय कोई प्रायश्चित नही है' कह देने वाला रामशास्त्री मुझे एकदम भा गया। और इन्सान केवल रोटी के लिए नही, बल्कि धर्म के लिए जीता है, यह भावना मन म तीव्रतर होती गई।

अब तो महापुरुषो की जीवनिया पढ़ने का सिलसिला मैंने प्रारम्भ किया। जितनी भी आत्मकथाए मिलती, पढ डालीं। कुछ तो आज भी याद हैं राणा प्रताप, लोकमान्य तिलक, आल्फ्रेड दि ग्रेट, लिविंग्स्टन, गौतम बुद्ध, महात्मा गाधी

इन महापुरुषो मे महात्मा गाधी से अपना नजदीकी रिश्ता-सा मैंने अनुभव किया। उन दिनो उन्होने असहयोग और खादी आन्दोलन बहुत जोरो से चला रखा था। रामगढ जैसी रियासत मे भी हम छात्रो के कानो पर उस आन्दोलन की प्रतिध्वनि आने लगी थी। उतने मात्र से हमारे मन उल्लास के हिलोरे लेने लगे थे।

उसी धुन मे एक दिन हमारी कक्षा के सभी छात्रो ने गाधी टोपी पहिनने का निश्चय किया।

एक दिन पिताजी ने मेरी गाधी टोपी देख ली। उन्होने उठाकर उसे सडक पर फेंक दिया। मेरी ओर क्रोध भरी नजर से देखते हुए उन्होंने कहा, फिर से एसी टोपी कभी मत पहनना। तुम सरकारी नौकर के लडके हो।'

उस रात मैं करवटे बदलता रहा। नीद गायब हो गई थी। मन ही मन सोच रहा था कि सरकारी नौकर भी महाभीषण मामला लगता है। अत किसी हालत मे सरकारी नौकरी नही करना।'

दूसरी टोपी पहिनकर स्कूल जाने को जी कतई नही चाहता था। किन्तु मा ने एक तरकीब निकाली। उसने मुझे दूसरी गाधी टोपी खरीदने के लिए कहा। मा का लिहाज कर मैंने स्वीकार किया कि वह टोपी केवल स्कूल मे ही पहिनूगा और अन्यत्र दूसरी मामूली टोपी का उपयोग करूगा। जीवन म इन्सान को कई अनचाही सधिया करनी पडती हैं। मैंने जीवन मे यह पहली सुलह कर ली थी।

फिर भी, पिताजी का डरपोकपन मन मे लगातार चुभता रहा। माना कि पिताजी सरकारी नौकर थे, किन्तु उनका लडका यदि गाधी टोपी पहिनता है, तो उसस सरकार का क्या बिगडने वाला है? सरकार का उससे क्या लेना देना? और सरकार इस मामले म बुरा भी माने तो पिताजी क्यो डरे?

एक बार ये सब विचार मैंने मा को सुना दिए। उसने कहा, 'तुम्हारे पिता डरपोक नही, बहुत बहादुर है।'

'कैसे?'

आक्का के जन्म के समय की बात है। नदी की बाढ मे एक महार का बच्चा डूब रहा था। तुम्हारे पिता ने बाढ मे कूद कर उस बच्चे का बचा लिया था।'

इस पर मुझे अपने पिता पर गव होने लगा। किन्तु मेरी समझ मे नही आ रहा था कि इतना साहसी होने पर भी पिताजी एक बहुत ही मामूली मामले मे सरकार से इतना डर रहे थे। मैंने अपना यह सन्देह मा को बताया, तो उसने कहा, नौकरी से निकाल दिए जाने का भय उन्ह सताता होगा।'

'निकाल भी दिए गए, तो क्या!' मैंने कहा।

मा ने कहा, 'बेटा, अभी तुम छोटे हो। उनकी नौकरी चली गइ तो हम लोगो को दोपहर के भोजन के लाले पड जाएगे। आक्का को अच्छा ससुराल दिलाने के लिए उन्होंने बहुत भारी दहेज दिया है। वे दरोगा हैं

और कर्ज की किश्तें समय पर देते आ रहे हैं, इसीलिए महाजन हमारे दर पर वसूली के लिए धरना नही दे रहा है। किन्तु कल उनकी नौकरी गई ता' आसू पीकर मा न आगे कहा, 'तुम बड़े होगे तब तक तो उन्ह नौकरी करनी ही हागी।'

'लेकिन मा, यह बताओ, सरकारी नौकरी का और गाधी टोपी का क्या सम्बन्ध है?'

बचारी मा इस पर क्या जवाब देती, निरुत्तर हो गई। अन्त म उसन कहा, 'यह तो मैं भी नही जानती बटा! किन्तु व कह रहे थे कि गाधी टापी स राजा साहब को नफरत है।' कुछ दर बाद मरी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसन कहा, 'दिनू, अभी तुम छोटे हो! बेकार म माथा पच्ची मत करते जाओ। ध्यान लगाकर पढो, परीक्षा मे अच्छे नम्बर प्राप्त करो और अच्छा वकील बनकर खूब धन कमाओ और उसके बाद फिर इन झमेलो क बारे म सोचते बठो। मैं और कुछ भी नही चाहती बेटे! तुम अपनी कमाई खाने लगे तो मैं सुख से मर सकूगी।'

उसके बाद उसके सारे शब्द मानो आसुओ म बह गए। मैंने निश्चय किया पिताजी शराबी हैं। उन पर कर्जा भी है। अत मा को सुख पहुचाना हो तो ध्यान लगाकर पढ़ते हुए मुझे जल्दी जल्दी परीक्षाए पास करनी होंगी और ढेरो पसा कमाकर '

बस उसके बाद पढ़ाई के अलावा अन्य किसी बात म भी मेरा मन लगता नही था। हमारे स्कूल म मुझस दो तीन वर्ष आगे एक बहुत ही मेधावी छात्र था। वह हमेशा पहला आता था और स्कालर भी था। उसके नाम का चारो तरफ बड़ा बोलबाला था। वह नाम था भगवतराव शहाणे।

सुना कि उसके घर म बहुत गरीबी थी। किन्तु हर वर्ष पुरस्कार वितरण समारोह मे सभी विषयो के पुरस्कार वही ले जाता। मैंने उसका अनुसरण करने की ठानी। उसके समान बनने का निश्चय किया। भगवतराव शहाणे पर तो स्वयम राजासाहब की मेहर नजर थी। व उसे उच्च शिक्षा के लिए कॉलेज ही क्या, विलायत भेजने के लिए भी तयार थे। कम स कम गाव म तो वसी चर्चा अवश्य थी। अतएव मन ही मन निश्चय कर कि मैं

भी शहाणे के समान स्कालर बनूगा और राजासाहब की मेहर नजर का पात्र बनूगा मैंने एकचित्त होकर पढाई करना प्रारम्भ किया ।

जीवन को विस्मयकारी मोड पर लाकर धक्का देने की चतुराई जितनी नियति मे है, उतनी शायद मँजे हुए उपन्यासकार मे भी नही होगी। यही देखिए न, चौथी-पाचवी कक्षा मे था तब मैं जिन राजासाहब की मेहर नजर प्राप्त करने का ध्येय अपने सामने रखता था उन्ही राजा साहब की कृपा की तनिक भी परवाह न करना ही आगे चलकर मैं अपना धर्म मानने लगा। जिस भगवतराव शहाणे का आदर्श छात्रावस्था मे मैंने अपने सामने रखा था, उन्ही महाशय द्वारा अपनी बुद्धि दुनिया के बाजार मे जो भाव मिले उसी मे बेची गई देखकर मेरे मन मे उनके प्रति अनादर उत्पन्न हो गया। और जो सुलू मुझसे अपने प्राणो से भी अधिक प्यार करती आई, उसके प्यार के कारण ही अपने प्राणो से हाथ धोने की नौबत मुझ पर आई !

जीवन कितनी अद्भुतरम्य कहानी है !

किन्तु इस कहानी मे उस समय की मेरी भूमिका विशेष रम्य नही थी। पेचीदे सवाल हल करना, शब्दकोश से कठिन शब्द पढने के लिए चुनना, व्याकरण के क्लिष्ट नियमो को रटना आटा पीसने की चक्की होती है न ? बस उसी के समान जीवन चलता प्रतीत हो रहा था। किन्तु मा की याद आते ही सारी थकान दूर हो जाती और मैं फिर उत्साह से जीवन का वही क्रम चलाता रहता।

वार्षिक परीक्षा मे मैं पहला आया। मुझे तीन रुपये प्रति मास की छात्रवृत्ति भी मिली। पहले मास के वह तीन रुपये मैंने मा के चरणो मे रख दिए तो उसकी आखो मे आनद के आसू भर आए, मानो उसके बेटे ने तीनो लोक की सारी सम्पत्ति उसके चरणो मे लाकर रखी है।

पढाई करते करते बहुत रात होने पर जी ऊब-सा जाता तो मा के उन आनदाश्रुओ का मैं याद करता और अपने आपको चेतावनी देता कि देखो मा की इन आखो मे हमेशा इसी तरह सुख ही नाचता रहना चाहिए ।

उसी समय हमारी कक्षा मे जोशी नाम का एक लडका बाहर से दाखिल हुआ। उसके साथ मेरी बहुत जल्दी दोस्ती हो गई। किन्तु हमारी

मित्रता का रहस्य किसी को भी कभी ज्ञात नही हो पाया। मैं कक्षा मे सबसे पहला स्कालर तो यह महाशय एकदम अन्तिम नम्बर पर। मैं छरहरे वदन का तो जोशी महाराज बिलकुल पहलवान। इसीलिए हमारी दोस्ती सबके लिए एक रहस्य सी बन गई थी।

किन्तु हम दोनो बहुत ही सहज मित्र बन गए थे! जोशी गृहपाठ के सवाल कभी करके नही आता। गणित के शिक्षक इस मामले को लेकर उसे कई बार चेतावनी दे देकर हार गए थे। आखिर एक दिन उन्होने जोशी महाराज को कक्षा से निकाल देने की धमकी दी। आज वह धमकी जरूर अमल म लाई जायेगी, ऐसी भनक पडते ही जोशी महाराज ने मध्यातर की छुट्टी मे मेरी कापी माग ली। मैंन खुशी म कापी उन्हे दे दी। उस दिन गणित मे जोशी महाराज की अचानक प्रगति देखकर शिक्षक हैरान रह गए, किन्तु अदर की बात मैं और जोशी ही जानते थे!

स्कूल की छुट्टी होने पर जोशी ने मुझस कहा, 'सरदेसाई तुम्हारे आज बडे उपकार हुए। मैं इसे कभी नही भुलाऊगा!'

भई, इसम उपकार की क्या बात है?' मैंन हसकर कहा।

'तुम्हे गाना पसन्द है?' उसने पूछा।

भगवान मे मेरी आस्था कभी की जाती रही थी किन्तु मा तडके उठकर जो भजन गाती थी उन्हे बिस्तर मे पडे पडे सुनने मे मुझे बहुत आनद आता था।

मैंने जोशी स कहा, मैं भी तो मनुष्य ही हू!'

इस पर मेरी पीठ पर जोर से 'शाबाशी' देते हुए जोशी मुझे अपने घर ले गया। उसके घर म तानपुरा, तबला आदि साज देखकर मैंने पूछा, 'तुम सगीत सीख रहे हो क्या?'

उसने सगव कहा, 'अर्थात! गणित से तो सगीत ही आसान लगता है मुझे!'

कौन है तुम्हारे शिक्षक?'

'मरे बडे भाई साहब अच्छे गवये हैं। यहा के राजमहल मे हाल ही म उन्हे नौकरी मिली है! तभी तो हम यहा रहने आए!'

हमारी चाय होने के बाद उसने पूछा, 'बताओ, क्या सुनाऊ तुम्हे?'

मां का गीत!" मैंने एकदम फरमाइश कर दी।

कवि यशवंत की कविता 'मां' उन दिनों बहुत ही लोकप्रिय हो गई थी। मैं भी अकेले में अक्सर उसे गुनगुनाता रहता था। किन्तु सोचा कि जोशी महाराज के स्वर में शायद वह अधिक अच्छी लगे, इसीलिए फरमाइश कर बैठा।

किन्तु मेरे द्वारा मांगा गया वरदान सुनकर मेरे देवता संभ्रम में पड़ गए। कुछ देर सोचकर जोशी महाराज ने कहा, 'भई मुझे तो मां के बारे में एक ही कविता आती है। और वह भी पूरी नहीं, केवल पहली पंक्ति ही याद है 'माता तेरा अति उपकार!'

मैं हंसी से लोटपोट हो गया।

कोई खोई हुई चीज अचानक मिल जाने पर चेहरे पर जो खुशियां नाच उठती हैं, उसी तरह की खुशियां जोशी के चेहरे पर एकदम खिल उठीं। इसका कारण क्या है, मेरी समझ में नहीं आ रहा था।

गायन के लिए लगाते वैसी बैठक लगाकर महाराज बैठ गए और कहने लगे, 'तुम्हें मां का गीत सुनना है न? तो लो सुनो!'

उसने 'वन्दे मातरम्' गाना प्रारम्भ किया।

स्कूल के सम्मेलनों में और गांव में हुई सभाओं में यह गीत मैंने कई बार सुना था। किन्तु लोगों के शोर के कारण उसके कई शब्दों का ज्ञान ठीक से नहीं हो पाया था।

जोशी मधुर स्वर में स्पष्ट उच्चार करते हुए गा रहा था—

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
सस्य श्यामलां मातरम्।
वन्दे मातरम्॥

आंखों के सामने गंगायमुना के प्रवाह नाचने लगे। मोती जैसी बालें लहलहाते खेत दिखाई देने लगे। जोशी गाए जा रहा था

सप्त कोटि कंठ कलकल निनाद कराले,
द्विसप्त कोटि भुजैर्धृत खर करवाले

मैं संस्कृत अच्छी तरह से जानता था। मन सोचने लगा। इस राष्ट्रगीत की रचना कब हुई होगी? हमारा देश तो निर्धन है और यहां

कवि वणन कर रहा है चौदह करोड हाथो म कौंधती तलवारो का !

मैं असमजस म पड गया। उस समय मुझे मालूम नही था कि यह गीत बकिमचद्र के ऐतिहासिक उपन्यास आनदमठ' म है !

जोशी गा रहा था—

तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मम
त्व हि प्राणा शरीरे

गीत के आगे के शब्दो की ओर मरा ध्यान ही नही रहा। बस 'तुमि धम', 'तुमि धम शब्द ही कानो म लगातार गूजते रह।

तुमि धम ! तुम ही धर्म हो ! मातृभूमि की पूजा ही इसान का धर्म है ! अब तक तो मेरी मान्यता यही थी कि मा का दुख हलका करना ही मेरा धम है। किन्तु जोशी के स्वर म यह गीत सुनते समय मैंने अनुभव किया मरी दो माताए हैं। दोनो दुखी हैं। दोनो को सुखी करना ही मेरा धम है।

जोशी के साथ मित्रता होने के कारण मुझे भी मुशायरो का चसका लगा। मैं काफी कविताए कठस्थ करने लगा। लोगो को गा गाकर सुनाने भी लगा। कभी कभी तो काव्यरचना की धुन भी मुझ पर सवार होने लगी। किन्तु पढाई की उपेक्षा न हो इस हेतु मैंने वह मोह सवरण किया।

उन दिनो तो ऐसा ही लगता था कि हर परीक्षा के समय होने वाली भाग दौड, परिणाम की प्रतीक्षा मे मन की आतुरता, पहला नम्बर आते ही होने वाला आनद, पुरस्कार समारोह म राजासाहब के कर कमला से पुरस्कार ग्रहण करते समय प्रेक्षको द्वारा की जाने वाली तालिया की सुखद गडगडाहट, उसे सुनते समय मन ही मन मियाँ मिट्ठू होने का अनुभव इन सारी बातो की सुखद स्मृतिया जीवन भर भुलाए नही भुलाई जाएगी। किन्तु आज

वे फिजा के फूलो के समान लगती है ! उस समय की एक ही बात आज भी बार-बार याद आती है—

हम अग्रेजी पढ़ाने वाले शिक्षक बुद्धिमत्ता के लिए सुविख्यात थे वे इस बात की पूरी सतर्कता बरतते थे कि अपना अग्रेजी उच्चारण एकदम

ठेठ अंग्रेजो जसा हो। छात्र भी अत्यन्त कुतूहल से कहा करते थे कि सर के यहा अंग्रेजी के कोई दस बारह शब्दकोश हैं। इन शिक्षक महाशय न एक बार हम एक अंग्रेजी कविता पढाना प्रारम्भ किया। कविता की शुरुआत थी

Rule Britania, Britania rules the Waves
Britons never shall be slaves

इन पक्तियो का अथ ठीक ठीक बताकर मैं बठ गया। 'ब्रिटिश लोग कभी गुलाम नही बनेंगे' इस पक्ति पर शिक्षक जी न काफी लम्बा व्याख्यान दे मारा।

मैं खडा हो गया।

कुछ शका है ?' शिक्षक ने पूछा।

'जी हा !'

'अरे, वह जोशी भी समझ गया होगा, और तुम जसे छात्र का इसमे कुछ शका है ?'

'सर, आपने अभी कहा कि ब्रिटिश लोगो को गुलामी से नफरत है।

'हा, तो ?'

'किसकी गुलामी से नफरत है उन्हे सर ?'

'क्या मतलब है तुम्हारा ?'

'हो सकता है कि उन्ह अपनी गुलामी से नफरत हो ! अपनी गुलामी उन्ह स्वीकार भी न हो ! किन्तु वे अवश्य चाहते हैं कि दूसरे गुलामी मे बने रह !'

शिक्षक मुह बाए मेरी ओर देखते ही रह गए।

मैंने आग कहा, 'सर उन्ह गुलामी से वाकई मे नफरत होती, तो क्या वे हमारे देश को स्वराज्य नही दे देते ?'

'शट-अप ! सरदेमाई ! स्कूल म आप पढने आत हैं, राजनीतिक चर्चा करने क लिए नही ! तुम केसरी' के सपादक बनोगे तो अपनी यह पडिताई बघारना है। जोशी महाराज उठिए और कहिए—

Rule Britania, Britania rules the Waves
Brirtons never shall be slaves

सारा दिन मैं बेचैन रहा। आश्चर्य इस बात का था कि ब्रिटिश लोगों के इस निश्चय की कि 'हम कभी गुलाम नहीं होंगे', भूरि-भूरि सराहना करने वाले हमारे शिक्षक जी को अपने देश की गुलामी का कोई रंज नहीं था। 'भारतीय लोग भी गुलाम नहीं रहेंगे' इस आशय की एक कविता के साथ उसे भी हमें पढ़ाना तो दूर रहा, व राजनीति से स्कूल का कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा जता कर हम छात्रों की वीरवृत्ति को वे उलटे निस्तेज बना रहे थे। हमारे शिक्षक जी बहुत ही विद्वान थे, इसमें शक नहीं। किन्तु उनकी सारी भावनाएं बर्फ के समान जम गई थीं। पेट पालने के लिए वे यह तोतारटन किए जा रहे थे और उसके पार उन्हें कुछ भी दूसरी दुनिया दिखाई नहीं देती थी।

मां के प्रति मेरी भक्ति भावना और भी गाढ़ी होती गई। अंग्रेजी उच्चारण एकदम अंग्रेजों जैसे करने वाले हमारे शिक्षक की अपेक्षा, रट फट करते-करते अपनी भाषा पढ़ने वाली मेरी भोली भाली मां कहीं श्रेष्ठ लगने लगी। अपना भी कोई धर्म है और उसका पालन करने के लिए कष्ट उठाना ही चाहिए, यह दर्शन उसने आत्मसात कर लिया था। जीवन को एक बाजार मानकर वह जी नहीं रही थी। उसके विचार में जीवन एक मंदिर था। शिक्षक जी की शायद यही मान्यता थी कि जीवन लेन-देन का ही नाम है। मां की श्रद्धा थी कि भक्ति ही जीवन की शक्ति है।

मैं मिट्रिक की कक्षा में पहुंच गया।

इस बीच जीवन सुख से नहीं बीता था। एक ओर उस कविता ने मुझे अभिमन्त्रित कर डाला था और दूसरी ओर समाचार पत्र पढ़ने में बहुत आनन्द आने लगा था। उन्हीं दिनों गांधीजी ने एक लम्बा अनशन किया था। इसलिए हर रोज सवेरे डाकखाने के सामने दौड़ते जाकर आज की ताजा खबर पढ़े बिना चैन नहीं आता था। गांधीजी ने अनशन तोड़ा, यह समाचार पढ़ कर मुझे कितना आनन्द हुआ था, आज भी याद है। ऐसा लगा मानो मेरी मां ही किसी लम्बी और जानलेवा बीमारी से बच गई हो!

मट्रिक का वर्ष वैसे कष्टमय ही बीता। किसी झंझट में फँसकर पिताजी तीन चार महीने घर पर ही थे। वे जब नौकरी के काम पर जाते

थे, तो कम-से-कम उनके पीने का अड्डा बाहर ही रहा करता था। अब वह घर म ही जमने लगा। माँ को बहुत कष्ट उठाने पडे। बिना किसी अपराध के वरिष्ठ अधिकारियो ने केवल जलन के मारे मुझ पर आरोप रखा, ऐसी पिताजी की धारणा थी, उस अपमान के कारण वे चिढ़कर बहुत ज्यादा पीने लगे थे। घर शराबखाना बन गया था। पिताजी पीते और फिर रात भर ऐसा शोरशराबा करते कि

एक प्रसग मन मे आज भी ताजा है। मैं अपने कमरे मे बाणभटट के 'कादम्बरी' मे अच्छोद सरोवर वणन पढ रहा था। एक शब्द पर मैं बुरी तरह अड गया था। इसीलिए मैंने शब्दकोश निकाला। उस शब्द का अथ ढूढन लगा ही था कि रसोइघर से मा की पुकार 'दिनू! दिनू!' सुनाई पडी।

मै भाग कर वहा गया। पिताजी भोजन के लिए बठे थे किन्तु थाली म ही उन्होने क कर दी थी! वह घिनौना दृश्य—

रात मे मैंने माँ से उद्वेग से कहा, "मैं स्कूल-वूल छोडे देता हू। कही दस पद्रह रुपये की नौकरी मिल ही जाएगी! कर लूगा। अब तुम इस नरक म मत रहो, माँ!'

सुनो दिनू, उ हे छोडकर मैं कही नही जाऊँगी।"

'क्यो ?"

'उनकी सेवा करना ही मेरा धम है।"

मैने मा के साथ काफी चिकल्लस की। किन्तु मेरे सब प्रश्नो का उत्तर वह मुह से नही, आखा स देती गइ! उसकी आँखो से छनने वाले आसुओ के सामने मेरे सारे तक हार गए। उसकी आँखें मानो यही बता रही थी कि इन्सान के जीवन का आधार सुख नही, धम है।

उसके बाद मैंने भी तय कर लिया कि मा का एक धम है, तो पुत्र का भी कोई धम अवश्य रहेगा। मट्रिक पास करने के बाद आगे नही पढूगा। जो नौकरी मिल जाए, कर लूगा और मा को अपनी ओर से हो सके उतना सुखी रखूगा!

मैट्रिक होन के बाद कालेज जाने का कोई भी प्रयास मैंन नही किया। उलट कही क्लर्की की नौकरी की तलाश म रहने लगा। दादासाहब, उस

समय आप मेरे जीवन म न आते तो आज यह दिनकर निश्चय ही कहीं बाबू बनकर कलमघिसाई कर रहा होता। हो सकता है मेरी जिंदगी बढ़ जाती किन्तु कत त्व जड म ही सूख जाता। मुहर्रिर क नाते मैं पचास साल और जी भी लेता, तो दुनिया का कौनसा भला होने वाला था? प्रत्युत, पग्मा आन वाली मौत—

वह सम्मानजनक मौत होगी। सकडो लोगो को चेतना देने वाली मौत होगी। वक्ष की शाखाओ का काटने के बाद वह और भी जोर से फलता फूलता ह न? हमारा आदोलन भी मेरी मौत के कारण उसी भाति फलेगा, बढ़गा!

मत्यु की ओर इतनी शाति के साथ दख सकन की दिनकर की वह दष्टि दादासाहब को अतीव तजस्वी प्रतीत हुई। उन्होंने कई बार अनुभव किया था कि शेर क पजे म आई बकरी जिस तरह उसकी आंखो के अगारो से नजर नही भिडा सकती, उसी तरह मत्यु का फदा गले म पडने के बाद आदमी भी उसकी प्रलयाग्नि सदृश नजर-से-नजर नही लडा सकत। सामान्यत शात और गभीर बने रहने वाले प्राचाय जी! दो वष पूव उन्ह हर रोज शाम को बुखार आन लगते ही कितने घबरा गए थे! उनका हाल पूछने क लिए मैं गया था तो आंखो म आसू भरकर बोले थे दादा-साहब कम-से कम और दस साल जीना चाहता हू। इसी तरह के और चार पाच उदाहरण याद आते ही, दादासाहब के मन मे मत्यु का प्रसन्न चित्त से स्वागत करने वाले दिनकर क प्रति असीम आदर उत्पन्न हुआ। पास ही रखे लोटे से उन्होने थोडा पानी पी लिया और आग पढने लग

'उसके बाद वे चार पाच वष की स्मृतिया बहुत ही मधुर है। और हैं भी बहुत! आकाश मे अनगिनत नक्षत्र एक साथ बिखरे हो या उद्यान मे जूही चमेली की लताओ पर बहार आई हो, वैसे लगते हैं वे चार पाच वष!

सुलू के साथ मेरी दोस्ती कितनी जल्दी हो गई थी। उसकी आँखें मुझे अपनी मा की आंखा के समान लगी। मैंने सोचा कि बचपन मे शायद मेरी मा भी ठीक ऐसी ही दीखती होगी। मैंने आपसे तभी कहा ही था कि मेरी बहिनें मुझसे बडी थी और मेरे हाथ सभालने से पहले ही उन सबके विवाह

पढ़कर मेरे कई पूर्वाग्रह दूर हो गए। मैं भली भान्ति जान गया कि दुनिया मे सुधार लाना चाहने वाले को बुद्धिवाद का ही प्रश्रय लेना चाहिए।

आपकी विद्वता—आपका चरित्र—कालेज म आपकी लोकप्रियता —प्राचार्य भी आपकी धाक मानत थे—आदि सभी वातो पर मुझे बहुत गर्व अनुभव होने लगा। गाधाजी के चरखे और प्राथनासभाओ की आप कडी आलोचना करने लगत तो मैं वार-वार सोचता—काश, दादासाहब राजनीतिक म आए होते।

किन्तु आपके प्रति मन मे असीम आदर होने के वावजूद, आपके कई विचारो से मैं सहमत नहा था। समाचारपत्रो को आप एकदम उपेक्षा की भावना से देखा करत, यह वात मुझे अटपटी-सी लगती थी। मेरी राय म समाचारपत्र बहुजन समाज के राजनीतिक और सामाजिक जीवन को बल दे रहे थे और यह मेरी समझ मे कतई नही आ पा रहा था कि उस जीवन के प्रति आपके मन मे आस्था क्यो नही है?

आखिर एक दिन इस रहस्य का भी भण्डा फूट ही गया। वह बहुत ही अशुभ दिन था।

सुलू की माताजी उस दिन उसे, आपको और मुझे छोड कर ससार से चली गइ। मेरी अपनी मां की मत्यु के समान मुझे दुख हुआ और शोक भी, आसू थामे नही थमते थे। किन्तु आप! सुलू को सीने से लगा कर उसके मन का सात्वना देने और उसके आसुओ म अपने आसू मिलाकर उसे धीरज बधाने के बजाय, आप गीता पाठ करने बठ गए थे। शायद आपकी राय म अपनी भावनाओ का प्रदर्शन एक लज्जा की बात थी।

दादासाहब, क्षमा करें। मैं जानता हू, आपका अपनी पत्नी से उत्कट प्रेम था। यह भी मानता हू कि आगे चलकर आपने सुलू को आखो का तारा बनाकर पाला पोसा। किन्तु उस दिन आपको गीतापाठ करते नही बैठना चाहिए था। आपको चाहिए था कि एक मे फूट-फूट कर रो रही सुलू को और दूसरे हाथ से मौन आंसू ब को आप अपने सीने से लगा लेते और उनके सिर पर अपनी -जमना का अभिषेक करते।

किन्तु आपके बुद्धिवादी मन को ा!

उस रात सुलू को मैंने ही सात्वना दी, सवेदना जाहिर की।

दूसरे दिन कालेज म आपके धैय की सवत्र प्रशसा की गई, किन्तु साफ कहू तो वह मुझे बिलकुल पसन्द नही थी। उस समय मैंने सोचा—दादासाहब उत्तररामचरित तो अच्छी तरह से पढाते हैं, किन्तु भवभूति का मम उनकी समझ मे कतई नही आया है। निरा रूखा बुद्धिवाद जीवन नही होता। अस्पताल मे रखे अस्थिपजर को कोई आदमी नही मान लेता! दादासाहब का बुद्धिवाद उस अस्थिपजर जसा है।

भवभूति आपका प्यारा कवि है। उसम सीता के लिए किया शोक और आक्रोश आपने हम छात्रा को पूरी तन्मयता के साथ पढाया होगा कई बार। और फिर भी पत्नी की मत्यु अपनी आखो देखते हुए भी आप शात रहे!

बुद्धि की पूजा भावनाओ की घुटन होती है। कम से कम आपके जीवन मे तो यही हुआ था। गाधीजी की दाडी यात्रा आरम्भ होने पर तो यह बात मैं भलीभाति जान गया। बोझा ढोने वाले अनाडी और तागेवाले भी उस आन्दोलन के साथ एकरूप हो गए थे, किन्तु आपकी बुद्धि गाधीजी की चटपटी आलोचना करने आपने मे को धन्य मानती थी। सारा देश झझावात के समान प्रक्षुब्ध हो उठा था किंतु आप उस रत्नाकर से मुह फेर कर रेगिस्तान मे बालू के किले बनाने मे व्यस्त हो गए थे। कालेज सुचारु ढग से चलता रहे, इसी की चिन्ता मे आप खो गए थे!

आगे चलकर शिरोडा सत्याग्रह से आजादी का नमक लेकर मैं जून मे वापस आ गया, विजयादशमी के दिन सीमोल्लघन कर आने के बाद 'सोना'[1] देते हैं न हम एक दूसरे को? उसी भावना से आपको उस नमक की एक पुडिया देने की इच्छा मेरे मन मे कई बार जागी। किन्तु हर बार मैंने अपने आपको रोका। मुझे डर था—उस नमक पर आप तुच्छता दरसाकर हसेंगे, शायद उसे फेंक देंगे और कहेगे, दिनकर, राजनीति ऐसे नमक मिच का खेल

1 महाराष्ट्र मे विजयादशमी के दिन शमी के पत्तो का आदान प्रदान होना है उसे 'सोना देना' कहा जाता है। अर्जुन द्वारा शमी के पेड पर अपने रखे हथियार वापस लेने के प्रतीक को सुवण माना जाता है।

नही है। राजनीति करना हो तो अर्थशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र की पूरी जानकारी रखना चाहिए और भारतीय घटनाचक्र की सूक्ष्मतम गतिविधि मालूम होनी चाहिए।

आपका वही घिसापिटा व्याख्यान सुनकर मैं ऊब गया था। मैं बड़ी भावुकता से आपको वह नमक देने आऊ, आप मजाक मानकर उसे फेंक दें और इसे घोर अपमान समझकर मैं आपकी शान के विरुद्ध कुछ भला-बुरा कह बैठू, यह मैं नही चाहता था। अपने उपकारकर्त्ता का अपमान करने की मेरी इच्छा नही थी। उस मामले मे मैं सदव सावधानी बरतता था। इसीलिए आपको वह नमक देने की झझट मे मैं नही पडा।

किन्तु जिस बात से मैं बचता था, वही बात एक दिन मुझसे हो ही गई।

सत्याग्रह का आन्दोलन जारी था। बम्बई म पुलिस ने इस आन्दोलन के एक जुलूस को रोक लिया। जुलूस मे शामिल लोगो को घण्टो वर्षा मे भीगते खडे रहना पडा। पडित मालवीय जी जसे वयोवद्ध और वदनीय नेता जुलूस मे थे।

यह समाचार मिलते ही हमारे कालेज के छात्र सतप्त हो गए। उन्होंने हड़ताल कर दी। हम समझाने के लिए प्राचार्य जी ने आपको आगे किया। छात्रो का उपद्रव देखकर आपने एकदम कह दिया, 'कॉलेज सरस्वती का मन्दिर है, कोई साप्ताहिक बाजार नही।'

रिंग मास्टर के कोडे की आवाज सुनते ही दुम दबाकर पिंजडे म चुपचाप चले जाने वाले शेर की भान्ति छात्रो का वह विशाल समूह एकदम चुप हो गया। कोई कुछ भी बोल नही रहा था।

वह शान्ति मेरे लिए असह्य हो उठी। आपकी बुद्धि का जौहर आसानी से आप पर ही उलटाया जा सकता था। मैंने चिल्लाकर कहा, 'साप्ताहिक बाजार लगता है, इसीलिए सब लोगो को दो जून रोटी मिल पाती है। मन्दिर म केवल पुजारी को ही नवेद्य मिलता है और बाकी सारे लोग भूखे ही रह जात हैं।'

लडको ने तालियों की गडगडाहट से आकाश को गिराना चाहा। देखते ही देखते आप हार गए थे। उससे आगे लडको ने आपकी एक भी न

सुनी, किन्तु आपके इस अपमान का दुख आपसे भी ज्यादा मुझे हुआ। आपकी बात को इस तरह काटने की नौबत मुझ नही पर आनी चाहिए थी।

किन्तु—आपमे और मुझमे एक पीढी का फासला था।

उस दिन से एक नया प्रश्न मुझे सताने लगा। क्या हमारी पाठशालाए तथा महाविद्यालय वास्तव म सरस्वती के मदिर हैं? उपनिषदो के रचयिता आर्य ऋषि-मुनियो की भाति, या आधुनिक पाश्चात्य अनुसधान-कर्ताओ के सदृश ज्ञान विज्ञान की अखण्ड उपासना मे सारा जीवन लगा देने वाले छात्रो का निर्माण क्या इन मदिरो म होता है? इन मदिरो मे जो देवता पूजे जाते हैं, वे जाग्रत है या केवल सगमरमर की मूर्तिया?

रात एक एक, दो दो बजे तक मैं इसी पर विचार करता रहता था। कुछ दिनो तक तो इन प्रश्नो ने मेरी नीद हराम कर दी थी!

अत मे मुझे विश्वास हो गया कि हमारे देश मे धर्म की भाति ज्ञान की भी विडम्बना हो रही है। दादासाहब, आपकी विद्वता का अधिकतम उपयोग क्या हो पाया है? यही न कि हमारे कालेज के चन्द छात्र सस्कृत मे बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाओ मे प्रथम श्रेणी मे पास होते रहे? उनमे से शायद कुछ प्राध्यापक बन गए? उनकी गृहस्थी सुख चैन में बीतने लगी? और शायद विश्वविद्यालय की परीक्षाओ के परीक्षक बन तथा उन परीक्षाओ के लिए आवश्यक नोटस बना-बनाकर उन्हाने उससे कमाए पसे से बडे बडे बगले बना लिए? हो सकता है कि यही सब हुआ है।

किन्तु आप बताइए दादासाहब, अपने चालीस करोड बच्चो के लिए भारतमाता जो मदिर बनाना चाहती है, दादाभाई, रानाडे, विवेकानन्द, तिलक, लाजपतराय, आगरकर, सुरेन्द्रनाथ आदि नेताओ ने अपना सवस्व अपण कर जिस मदिर की नीव रखी है, उस मदिर के निर्माण म आपके इन बुद्धिमान तथा प्रतिभावान छात्रो ने क्या योगदान किया है? भारत-माता का जीर्ण मदिर खडहर बनता जा रहा है। उसकी ढहती माटी के ढेर म हजारो देशबधु गाडे जा रहे हैं। किन्तु उनकी आत चीख-पुकार आपके इन शिष्योत्तमो ने क्या कभी सुनी है?

समाजवादी लोग धर्म को अफीम की गोली मानते हैं। किन्तु मेरी राय मे तो बुद्धि भी अफीम का काम कर सकती है।

इसी अफीम के परिणाम आज हमारा समाज भुगत रहा है। बडे-बडे प्रोफेसर डाक्टर, लेखक, किसी को भी लीजिए, दुनिया की दृष्टि से आखिर इन लोगों का क्या मूल्य है ? आपके जैसे प्रोफेसर जीवन भर पुराने काव्यो को रटते रटाते रहते हैं, मेधावान डॉक्टर जीवन भर परदेसी दवाइयो की दलाली कर कारें उडाते रहते हैं और प्रतिभावान लेखक आदमी के जीवन की तोता-मना की प्यार भरी दास्तानें लिखने या जीवन मे जो क्षुद्र मसखरापन होता है उसे ढूंढ कर भडकीले रगा मे उसे चित्रित करने म ही अपनी चतुराई खच करते हैं। बताइए इसस बुद्धि का और ज्यादा अप यय क्या—

भगवतराव का ही उदाहरण दे रहा हू इसलिए आप नाराज न होइए! उनकी जसी पनी कुशाग्रता शायद ही किसी म हो। विलायत की परीक्षा म उन्होने जो सुयश प्राप्त किया उसके कारण मुझे भी कितना नाज हो आया था! हम एक ही पाठशाला के छात्र हैं। तिस पर उनकी सफलता एक ऐसे व्यक्ति की महान सफलता थी, जिसका आदश बचपन मे मैंने अपने सम्मुख रखा था, उस समय रामगढ के हर आदमी ने भगवतराव की भूरि भूरि प्रशसा की थी। किंतु इसी भगवतराव ने अपनी बुद्धि तथा अपने ज्ञान का क्या उपयोग किया? व रामगढ़ के दरबारी सर्जन बन गए। उसके बाद क्या ? रियासत के सैंकडो देहाता का जजर करने वाले और किसाना मे त्राहि-त्राहि मचाने वाले मलेरिया का निमूलन करने के लिए उन्हाने कुछ भी नही किया, न तो कोई अनुसधान-काय किया, न ही उन दीन-दुखियो की, जिनकी कमाई से इ हे अच्छी खासी मोटी तनखा मिलती है, कुछ सेवा की। रामगढ मे हैजे का प्रकोप हो गया था, कीडे मकोडो जसे आदमी मे फटाफट मर रहे थे और भगवतराव राजासाहब के साथ बम्बई और दिल्ली के चक्कर काट रहे थे!

सच तो यही है कि हमारा आज का बुद्धिवाद सुखलोलुपता का ही सु दर नाम है। यही कारण है कि अपने आपको बुद्धिजीवी कहलाने वाला वग गाधीजी के आन्दोलन से हमेशा अलग रहा है। गाधी दशन मे सुख-

लोलुपतावाद का कोई स्थान नही है ।

अन्य लोगो की बात को रहने दीजिए। मैं इण्टर मे पढता था। तब सत्याग्रह आन्दोलन पूरे जोर पर था। उसके अतरग को समझ लेने का प्रयास आपने भी क्व किया ? आगे चलकर भगतसिंह को फासी मिली ! 'एक अविचारी सिरफिरा युवक !' इतना ही कह कर आपने उसे भुला दिया।

किन्तु मेरे जैसे हजारो युवको के मन मे आज भी भगतसिंह की स्मति ताजा है। हो सकता है कि उसकी आतकवादी नीति शायद गलत रही हो, किन्तु उसकी देशभक्ति खरे सोने जसी थी, इससे क्या कोई इन्कार कर सकता है ? सती होकर पति का चिर सहवास प्राप्त करने की कल्पना भ्रमपूण अवश्य है, किंतु मत पति का सिर अपनी गाद लिए मे हसते हसते अपने आपको जिंदा चिता की भेंट करने से लिए एक निराली ही शक्ति की आवश्यकता हाती है। उस शक्ति का नाम भक्ति है—उत्कट भावना है।

जो लोग भक्ति, भावना, श्रद्धा आदि का बुद्धिवाद के साथ बिल्ली चूहे का रिश्ता मानकर चलते हैं, वे ही अन्ततोगत्वा सुखलोलुपतावादी बन जाते हैं।

उस वर्ष इण्टर की परीक्षा मे प्रथम श्रेणी मे आना मेरे लिए सम्भव नही हो पाया। आपको इसका बहुत दुख हुआ था। किन्तु उस वष मेरे मन मे इन्ही विचारो का सघष जारी था। गणित के सवाल हल करने बठता तो भगतसिंह के साहस की याद आती और फिर कापी पर भ भ लिखता ही जाता तब कुछ शाति मिलती थी। बाणभट्ट के 'कादबरी' की अपेक्षा दैनिक समाचारपत्रो मे अधिक काव्य दिखाई देता। आपको इसकी कतई काई जानकारी नही थी। जसे तसे मैं द्वितीय श्रेणी मे पास हुआ तो आपने गुस्से मे कह दिया, 'अब कम से कम बी० ए० मे तो पहली श्रेणी प्राप्त करा, वरना जीवन भर कही मास्टरी करते बैठना पडेगा, प्राध्यापक बनने का तो आशा भी करना बेकार है !

आपकी ऐसी प्रताडना मैं केवल कृतज्ञता होने के कारण ही सह लेता था। किन्तु फिर भी उसे सुनते समय मन ही मन हसते हुए मैं कहा करता था, यहा किसको प्राध्यापक बनने की पडी है ? पुरानी खडहर इमारत

पर कलश बनकर चढने की अपेक्षा किसी नए मंदिर की नींव का पत्थर बनना कहीं अच्छा है !

लेकिन आगे क्या करना है, समझ म नही आता था। फिर भी ज्यूनियर के वर्ष में मैंने काफी किताबें पढी। ऐसी किताबें जिनका मेरे कॉलेज की पढाई से कोई सम्बन्ध नही था। सुलू की मैत्री पहले जैसी बरकरार थी। किन्तु मेरी इस नई प्रवत्ति के साथ एकरूप होना उसके लिए दिन प्रति दिन अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था। उन दिना मुझमे जो परिवतन आ रहा था उसके आयामो को मैं स्वय भी अच्छी तरह समझ नही पा रहा था। परिणामस्वरूप बात-बात मे सुलू के साथ मेरी झडपें होने लगी।

एक मजेदार झडप आज भी याद आती है। वह एक साडी खरीदने दूकान मे गई थी। मैं भी उसके साथ था। दो-चार साडिया पसन्द कर उन्हे मेरे सामने रखते हुए उसने पूछा, 'इनमे से कौन सी साडी खरीद लू ?'

मैंने कहा, 'तुम्हे जो भी पसन्द हो, ले लो !'

अपनी बडी बडी आखें तरेरते हुए उसने कहा, 'मै तुम्हारी राय पूछ रही हू !'

मेरी राय ? भला वह क्यो ? मैं तो साडी पहिनने वाला नहीं हू !'

'किन्तु देखने वाले तो हो न ? मान लो कि मैं अपनी पसन्द का कोई साडी ले लेती हू, और तुम उसे देख कर आखें मूदने लग जाओ, तो क्या मेरी पढाई का नुकसान नही होगा ?'

उसकी बातो को सराहते हुए मैंने हरे रग की साडी पसन्द की।

आसमानी रग की साडी मेरे सामने रखते हुए उसने पूछा, 'हा, इसे देखा !'

मैंने दूर से ही कह दिया, 'नही ! मेरा मत हरी साडी को !'

वह आसमानी साडी तह खोलकर उसने दिखाई और बहुत ही मिन्नतें करते हुए कहा, 'देखा कितना बढ़िया आसमानी रग है !'

हम आसमान म नही, धरती पर रहते हैं सुलू ! धरती की हरी दूब का रग ही हमारा रग है !'

वह आसमानी साडी भी सुन्दर थी। किन्तु मैंने हरी का पक्ष ले लिया था।

मन मसोस कर उसने हरी साडी खरीद ली।

आगे चलकर ज्यूनियर का वर्ष समाप्त हुआ। हमारे कुछ छात्र मित्रो ने छुट्टियो मे देहातो मे जाने का कार्यक्रम बनाया था। उन दिनो आन्दोलन स्थान-स्थान पर सुलग चुका था। एक देहात मे एक आदमी को गिरफ्तार किया गया। लेकिन उसका स्थान लेने के लिए कोई आगे नही आ रहा था। वह काम मैंने किया। मुझे जेल भेज दिया गया।

जेल मे मैं लगभग एक वर्ष रहा शुरू शुरू मे मा, सुलू और आपकी बार-बार याद आती। कभी दिन में जो मेहनत करनी पडती थी उसके कारण बदन मे बडा दर्द हो उठता। फिर तो रात-रात नीद नही आ पाती। खाने पीने का भी बुरा हाल था।

किन्तु शीघ्र ही इन सब बातो की आदत सी पड गई। मैं उस नई दुनिया मे रम गया।

वहा पढने के लिए काव्य या उपन्यास नही मिलते थे। किन्तु वहा का हर आदमी स्वय ही एक जीता जागता काव्य था प्रत्येक की राम कहानी दिल को हिला देने वाली विस्मय-कथा थी। जेल की कोठरी-कोठरी मे ऐसा करुण रस भरा पडा था, जिसका वर्णन कोई भवभूति ही कर सकता था। ऐसे ऐसे अजीबो गरीब व्यक्ति वहा थे, जिनका व्यक्ति-चित्रण करना विक्टर ह्यूगो या शरच्चद्र के ही बस का काम था। अपने भाई को बचाने के लिए खून का अभियोग अपने पर लेने वाला निरपराध भाई मैंने वही देखा। बच्चो की भूखे बिलखता देखना असहनीय हो जाने के कारण भगवान पाडुरग के दर्शन के लिए साल मे दो बार पढरपुर जाने का व्रत छोडकर चोरी करने लगे एक आदमी से मेरी यही दोस्ती हो गई। पत्नी के चरित्र पर सन्देह होने के कारण उसकी हत्या करने वाला किन्तु प्रति दिन सुबह शाम जेल के घटिया खाने मे से एक कौर उसकी स्मृति का नियमपूर्वक अर्पण करने वाला एक वेडर भी मुझे वही पर देखने को मिला। गाव मे पाठशाला न होने के कारण बचपन से ही आवारा बने छोकरे अब बडे होकर वहाँ आए थे। बडे हो जाने के बाद निर्वाह के लिए

आवश्यक रोजगार न मिलने के कारण पेट पालने के लिए भले-बुरे मार्ग पर चल कर कई वयस्क भी उस दुनिया मे आ चुके थे।

अपने मनोरजन के लिए मैं हमेशा कविता गुनगुनाता रहता। उन्हे सुनने का चसका अनेक कैदियो को लग गया। वे सारे मेरे मित्र बन गए। उन्होंने अपने दिल मे मुझे स्थान देना शुरू किया। तब एक ऐसे सत्य से साक्षात्कार हुआ, जिसकी कभी भूले से भी कल्पना मैंने नही की थी। वह सत्य था आदमी स्वभावत अपराधी नही हुआ करता। परिस्थितिया उसे अपराधी बना देती हैं। बचपन मे शिक्षा नही, बडे होने पर काम नही! जन्म से लकर मरघट तक जमाने भर की दरिद्रता! फिर क्या कहने है? गर्मियो मे प्यासा राही जिस तरह जो मिल जाय उसी पानी से अपनी प्यास बुझा लेता है, उसी तरह ये लोग भी जीवन मे जो मिल जाए उन्ही सुखो को लूटते फिरते हैं। नीति-अनीति का विचार करने के लिए उनके पास समय ही नही होता।

इसी तरह की बीसियो कहानिया सुनते एक रात मैं अपने कम्बल मे मुह छिपाकर फबक फबक कर रोने लगा। मेरे पास ही थोडे फासल पर एक पठान सोया था। वह जाग गया। उसे लगा, मैं शायद घर की याद आने के कारण रो रहा हू। पास आकर मेरी पीठ सहलाते हुए कहने लगा, 'बच्चा, मा की याद आया?' मैंने सिर हिलाकर हा कहा। अपना दुख उसे कसे समझाऊ, समझ मे नही आ रहा था।

मैं मा की याद मे बेताब हो तो गया था, किन्तु वह मा रामगढ की नहीं थी! हिमगिरि पीन पयोधर वत्सल, सरित सुहावन भारत मा थी वह! हर रोज मैं सोचता उसका दुख दूर करने के लिए हम बुद्धिजीवी लोग आखिर क्या कर पा रहे हैं?

रामगढ के एक से एक बढकर बडे बडे व्यक्ति आखो के सामन आने लगे। वे सबके सब राजासाहब के सामने जी हुजूरी कर रहे थे। मोटी मोटी तनख्वाहे ले रह थे। इसी धारणा से जी रहे थे, कि दुनिया उनके बच्चो के सुखोपभाग के लिए ही बनाई गई है। धन के वे इस बुरी तरह से गुलाम बन गए थे, कि देश की गुलामी को देख भी नही पा रहे थे, फिर अनुभव करना तो दूर रहा!

उनसे भी अधिक श्रेष्ठ लोग हमारे कॉलेज के सारे आचाय-प्राचाय याद आए। उनमे से कई लोगो का जीवन त्यागमय था, वदनीय भी था। किन्तु उनके त्याग का क्या उपयोग था ? ये बुद्धिमान महानुभाव देश को मुहर्रिर या शिक्षक देते जा रहे थे और फशनबाजी म रहने वाली युवक-युवतियो की बिरादरी पदा किए जा रहे थे। देश के लिए अथक प्रयास करने वाले, समाज सेवा के लिए अपना सवस्व होम देने वाले युवक ये लोग शायद ही कभी निर्माण कर पाते थे ! क्या कॉलेज का एक भी प्राध्यापक इसके लिए प्रयत्नशील था कि ऐसे अधिकाधिक युवक निर्माण करें ? इनमे से किसी को पता नही था कि कोरी बुद्धि के भरोसे नई दुनिया नही निर्माण की जा सकती !

जेल म एक ही वष मे मुझे वह दष्टि मिल गई जो कालेज म तीन वष बिताने पर भी नही मिली थी। मेरी राय म जीवन का सही अथ समझाने वाली दो ही पाठशालाए हैं एक है जेलखाना और दूसरी देहात। इनमे से किसी एक पाठशाला मे हर युवक युवती को कम से कम एक साल बिताना कानून द्वारा अनिवाय बना दिया जाना चाहिए। कोई मुझे शिक्षा विभाग का निदेशक बना दे, तो

ओफ ! अजी मैं तो भूल ही गया था कि परसो मुझे फासी दी जाने वाली है '

दादा साहब आगे पढ नही पा रहे थे। आखें मूदकर वे पडे रहे। अब तक उनकी धारणा थी कि पढाई की उपेक्षा कर दिनकर ने अपना जीवन बरबाद कर दिया है। किन्तु अब उन्हे लगा 'किसका जीवन बरबाद हुआ दिनकर का या मेरा अपना ?'

कोई रोचक उपन्यास पूरा पढे बिना जी नही मानता ! दिनकर के पत्र के बारे मे भी दादासाहब के मन मे उसी तरह की अतृप्त उत्कठा मचलने लगी थी। उन्होने आगे पढना प्रारभ किया

'जेल से रिहा होने के बाद मैं आपके घर आया था, वह दिन

वह दिन आज भी याद आता है। मट्रिक परीक्षा का परिणाम आ गया था। सुलू को द्वितीय शकरसेठ छात्रवत्ति मिली थी। इस उपलक्ष्य मे उससे मिठाइया मागने के बजाए उसे मिठाई देने के हेतु मिठाई खरीदकर

ही मैं आपके घर पहुचा था ।

मैं पहुचा तब सुलू अपने कमरे मे वेषभूषा कर रही थी। आईने मे मेरी गाधी टोपी का प्रतिबिंब देखकर वह चौंक गई और उसने मुड़कर मेरी ओर देखा।

अचानक एक अजीब कल्पना मन म कौंध गई कि यह सुलू नही, शायद उसकी बडी बहन है। वह बचकानी सुलू पता नही कहा गायब हो गई थी ? और उसके स्थान पर उसके समान दीखने वाली यह कोई और युवती

वाकई म सुलू कितनी बडी हो गई थी ! कल शाम देखी नन्ही-सी कली के स्थान पर सुबह पूरा खिला फूल देखने के बाद नन्हा बच्चा जिस तरह असमजस मे पड जाता है, उसी तरह मैं भी सुलू का वह रूप देखकर असमजस म पड गया था। किन्तु फिर भी उसकी ओर बस देखत ही रहने का मोह मैं सवरण नही कर सका। उसका सौन्दय

मेरी पसद की हरे रग की साडी पहिनकर वह अपनी किसी सहेली के यहा जाने के लिए तयार हो गई तो मैंने उसे अप्सरा कह दिया। वाकई मे सुलू अप्सरा को भी मात दे रही थी !

फिर यही तय हुआ कि मैं आपके यहीं रहकर बी० ए० कर लू। किंतु पढाई म मेरा चित्त नही लग पा रहा था। एक ओर सुलू का सौन्दर्य मुझे मोहपाश मे खीचता जा रहा था और दूसरी ओर जेल के वे सारे अनुभव मेरे कानो म लगातार कहे जा रहे थे हमे ना भूलाना !"

मैं एक स्वाध्याय मडल का सदस्य बन गया। समाजवादी साहित्य तेजी से पढने लगा। ऐसी हालत म स्वय चकित था मैं कि कसे तीसरी श्रेणी म भी बी० ए० कर सका। परीक्षा का परिणाम आने से पहले ही मैंने रामगढ म शिक्षक की नौकरी स्वीकार कर ली थी। नौकरी करने के अलावा कोई चारा भी मेरे लिए नही रहा था। पिताजी को लकवा मार गया था। वे हमेशा बिस्तर पर ही पडे रहते थे। महाजन ने अपना कर्जा वसूलने के लिए मां को तग करना आरम्भ किया था। अत

सुलू क सहवास के प्रति मैं बेहद आकृष्ट हो गया था। समाजवाद का काफी गहन अध्ययन भी करना चाहता था। किन्तु ये सब ख्याली पुलाव

बन गए और मुझे रामगढ़ लौट जाना पडा था।

वहा मुश्किल से नौ दस महीने ही मे नौकरी कर पाया। किन्तु उन दस महीनो ने मुझे वो बातें सिखा दी, जो शायद दुनिया की किसी किताब म पढन नही मिलती!

रियासत के पास धन की कमी बताकर पाठशाला मे केवल पच्चीस रुपये वेतन पर बी० ए० पास लोगो को शिक्षक की नौकरिया दी जाती थी। और साथ ही राजासाहब की बडी लडकी के लिए एक नया सुन्दर बगला भी बनाया जा रहा था।

आज भगवतराव उसी बगले मे रह रहे हैं! अक्कासाहब के लिए ही उसका निर्माण किया गया था। सुना था कि अपनी सौतेली मा से उनकी बनती नही थी। इसीलिए राजासाहब ने अपनी कन्या के लिए यह स्वतन्त्र प्रबन्ध कर दिया था। अर्थात् इसमे चालीस-पचास हजार रुपये किसानो से प्राप्त लगान के ही लगे थे!

एक डेढ साल पूव मेरा मित्र जोशी राजासाहब की निजी सेवाओ मे दाखिल हो गया था। मट्रिक पास करना उसके लिए टेढ़ी खीर प्रतीत हुआ था। किन्तु बडा भाई दरबार मे राजगायक था। अक्कासाहब को गायन-कला सिखाने का दायित्व हाल ही मे उसे सौंपे जाने की भी चर्चा थी। उसी की सिफारिश के कारण जोशी को मुहर्रिरी मिल गई थी। किन्तु प्रति मास केवल पन्द्रह रुपये पाने वाला यह मुहर्रिर बीस रुपये किराए के मकान मे रहता था। मैं चकित था कि कसे यह सम्भव होता होगा? उसकी आम रहन सहन भी बडी ठाटबाट की होती थी। एक दिन उसने मुझ स कहा, "तुम महामूख हो, दिनू!" रियासत मे नौकरी करनी हो तो भाई निजी विभाग म ही करनी चाहिए। एकदम वेदवाक्य है यह!"

छह महीनो मे मैं यह भलीभाति जान गया कि गरीब लोगो को जिन अपराधो के लिए जेल भेजा जाता है, वे ही अपराध कर अमीर लाग महलो म गुलछर्रे उड़ाते रहते है और समाज मे शान तथा इज्जत से रह लेते हैं।

छात्रो के अलावा किसी जमघट मे आना-जाना मैंने छोड दिया। अन्य किसी स मिलना जुलना भी बन्द कर दिया। छात्र निजी रूप म आकर मिलत तो, अपने मन की सारी भडास मे उनके सामने निकाल देता। ग्रथो

को पढने के बाद मेरी धारणा बनती चली थी कि गाधीवाद स समाजवाद ही श्रेष्ठ है। उन कच्ची बुद्धि वाले छात्रा के सामने मैं रूसी समाजवादी क्राति के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता और सुनकर उन बच्चो का युवा खून खौलता देखकर परम सन्तोष मान लेता था।

किन्तु मेरी ऐसी बातो का कभी बतगड भी हो जाएगा, मैंने सोचा तक नहीं था।

किन्तु वैसा होकर रहा।

लाटसाहब चार घटा के लिए रामगढ आने वाले थे।

मेरी महफिल मे आने वाल छात्रो म से कुछ तुनक-मिजाज लडका ने तय किया कि उसकी गाडी उडा दी जाए। उनका षडयन्त्र सफल नही हो सका। गिरफ्तार लड़को मे दो मुखबिर बन गए। अपने बयानो मे उन्होंने मेरा भी नाम ले लिया।

पिताजी अब स्वस्थ होकर फिर से काम पर जाने लगे थे। उन्हे इसकी खबर लगते ही मुझे कही दूर चले जाने की सलाह दी। मा ने भी बहुत मिन्नतें कर वही आग्रह किया। मैंने भी सोच लिया कि पिताजी को नौकरी से निकलवा दिया जाए और स्वय चार-पाच वष के जेल म चक्की पिसने के लिए जाया जाए, इससे तो कही बाहर जाना ही अच्छा।

कम स कम दो-तीन साल परदेस मे रहने का इरादा कर लिया

उत्तर भारत मे जाने का निश्चय किया। पहले लगा कि सुलू को पत्र लिखकर सूचित कर दूँ। किन्तु फिर सोचा—पता नही उत्तर भारत से मैं कब लौट आऊगा। सुलू से बिना मिले जाना यानी—शायद—

सुलू स इस तरह मिलन के लिए जाने का अथ—

मौत के साए मे केवल सत्य ही सीना तानकर खडा हो सकता है, इसीलिए लिख रहा हू। वरना—

मुझे सुलू स प्यार हो गया था। रामगढ जाने के बाद उसे पत्र लिखने को जी बार बार चाहता था। किन्तु सोचता कि पत्रा म दबी जुबान मे ही प्यार प्रकट हो गया और सुलू ने उसका स्वागत कर लिया तो—

मुझे अपनी मजिल से मुख मोडना पडता। वह हर्रासगार के फूल-सी कोमल थी। मेरा सारा जीवन खुनी हवाओ म गर्मी सर्दी के आघात झेलते

तुम तृप्त अनुभव करोगे ? एक चुवन लेते ही अनेक चुवना की चाह हावी हो जाएगी। यामोह की पहली सीढी पार करने के बाद दूसरी सीढी चढ़ने की लालसा भी जागेगी। तब सुलू के प्रति तुम्हारे मन मे आज जा निरपेक्ष प्रेम है वह आसक्ति मे बदल जाएगा। यह आसक्ति तुम्हे ध्येयमाग से विमुख कर दगी। प्रेम के लिए ध्येय का त्याग करने तुम तयार हो जाओग। फिर भी तुम सुलू को सुखी नही कर पाओगे। गहस्थी केवल प्रेम के भरोस नहीं चलाई जाती उसके लिए पैसा भी आवश्यक होता है। अधरामत की मिठास अमिट तो होती है, किन्तु दोपहर की क्षुधा मिटाने के लिए छौंका लगी दाल का स्थान अमत भी नही ले सकता। सुलू सुख मे पली है, अपने पिता की इकलौती कया है। तुम्हारा त्याग, तुम्हारी देशभक्ति, कष्टमय जीवन की तुम्हारी कल्पनाए—उस नही भाएगी ये सब बातें, फूल घर मे गुलदस्ते मे रखने के लिए होते है और वही शोभा भी देते हैं। यज्ञ की वलिवेदी क पास तो वे मुरझा कर झुलस ही जाएगे।

खिडकी से भीतर आने वाली चादनी मे अपनी खटिया खीचकर मैं बडी देर तक सोच-विचार मे डूब गया था। जीवन मे सत्य का साक्षात्कार बुद्धि की अपेक्षा भावना ही अधिक शीघ्रता से कर लेती है, उस रात मैंने यह बात अनुभव की। सुलू और मैं चार साल इकटठा रहे थे, सहवास के कारण एक दूसरे से बहुत ज्यादा हिलमिल गए थे। फिर हम दोना जवान भी हो चुके थे। किन्तु इन्ही चार वर्षों मे हम दोनो की चाहतो और ना चाहतो मे स्पष्ट अन्तर पडता जा रहा था। हमारे स्वभावो मे अन्तर आने लगा था। किन्तु वह अन्तर क्या है, क्यो है, उसे किसी को समझा कर बता पाना मेरे लिए तब असम्भव था।

आज—

किन्तु मेरे शब्दो की अपेक्षा सुलू के घर मे टगा क्रौंचवध का वह चित्र ही वह अन्तर आपको भलीभाति समझा सकता है।

उस चित्र मे क्रौंच पक्षियो के जोडे मे से नर पक्षी का अपना तीर चला कर मारने वाला निषाद है न ? ससार के हर अयाय के प्रतीक क रूप मे चित्रकार ने बहुत ही सशक्त तूलिका से उस निषाद को चित्रित किया है। उस निषाद क पास धनुष्य है, तीर है। हर अयाय के समर्थन के लिए इसी

तरह की पाशवी शक्ति तयार खडी होती है ! यह शक्ति न तो बुद्धि का ख्याल करती है, न भावनाओ की परवाह ! सहारक उन्माद की धुन म वह तो बस ताडव करती जाती है। उसकी मदमाती एडिया क नीचे कुचले मसले जाने वाले निरीह जीव चीखते चिल्लात रहत हैं, किन्तु उन चीख-पुकारा से अन्याय का दिल थोडा भी नही पसीजता ! पसीजे भी क्या ? विनाश की लीलाओ म ही उसे आनन्द जो आता है। सौन्दय की प्रतिमाओ के भजन को ही वह पराक्रम मानता है। पाशविक सामथ्य के प्रदशन मे उसका अहकार सुख सन्तोष पाता है।

उस भील निषाद के तीर का शिकार बना नर-क्रौंच तथा उसके लिए करुण आक्रोश करते हुए यह भी भुलाने वाली कि उसकी अपनी जान भी खतरे मे है, लगातार विलाप करने वाली क्रौंचमादा इस ससार के निरीह, दीन, दुखी, निरपराध दलित लोगा के प्रतीक हैं, क्रौंच पक्षियो का वह बेचारा गरीब जाडा ! उसने किसको उपद्रव पहुचाया था ? निषाद को उसने कौन सा कष्ट दिया था ? मुक्त आकाश मे उडते-उडते वह एक पड पर आकर बठ जाता है। प्रणय-मथुन के लिए बहुत अच्छा एकात मिलने की खुशियो म उनका मन बाग-बाग हो जाता है। बेचारो को क्या पता कि इस ससार म निरीह आत्माए भी सुरक्षित नही होती, दीनदुखिया का कोई सहारा रखवाला नही होता, विवशता एक घोर अपराध होता है और पाशवी शक्ति से प्रेरित अन्याय के शरसधान से बच पाना किसी के लिए सभव नही है।

एक क्षण ! पेड पर जारी मथुनक्रीडा की ओर चोरी-चोरी देखने वाली नीचे की घास देखते ही देखते म उस नर क्रौंच के खन मे नहा जाती है !

वह दश्य देखकर सारा वन थर्रा उठता है। किन्तु धनुपवाण लिए उस निषाद का विरोध करने की हिम्मत कोई नही दिखाता।

तभी एक अजीब चमत्कार-सा होता है। एक ऋषि उस पक्षिणी के दुख से आकुल होकर आगे आता है। क्रोध के मारे वह आपे से बाहर हुआ होता है। अन्याय का विरोध करने वाला बुद्धिवाद चित्रकार ने इस ऋषि के रूप म चित्रित किया है। वह ऋषि क्रोध म उस निषाद से कहता है, "तुमने महाभयकर पाप किया है। इन निरीह पछियो को तुमने भीषण दुख

की आग मे धकेल दिया है। तुम्हे कभी सद्गति प्राप्त नही होगी।"

जिस तरह बुद्धिवाद अन्याय को सह नही सकता, उसी तरह भावना भी अन्याय को देख नही सकती। उस चित्र मे विलाप करती हुई जो युवती है वह भावना का ही मूर्त रूप है। वह उस रक्तस्नात नर क्रौंच को उठाकर सीने से लगा लेती है, उसके निष्प्राण देह पर आसुओ की झडी लगा देती है। किन्तु अत्यन्त पवित्रतम आसू भी उड चुके प्राणो को वापस नही ला सकते।

उस ऋषि द्वारा दिया गया अभिशाप उस क्रूरकर्मा निषाद के लिए शब्दो के अतिरिक्त कोई अर्थ नही रखता और निर्ममता का आदी बन चुका उसका मन उस युवती के आसुओ की तनिक भी परवाह नही करता। वह धनुष पर तीर चढा कर दूसरे पक्षी का शिकार करने उद्यत हो जाता है।

दादासाहब, इस दृष्टि से उस चित्र की ओर आप फिर देखिए।

सुलू को यह चित्र बहुत ही पसन्द है। भगवतराव से लड-झगड कर प्रदर्शनी से खरीद कर ले आई थी वह। किन्तु यह चित्र सुलू के मन को सबसे अधिक पसन्द आ गया इसमे मुझे कोई आश्चर्य नही लगता। चित्र मे चित्रित युवती के साथ उसके अपने मनोधर्म काफी समानता रखते हैं।

मुझे भी वह चित्र एकदम पसद है, प्रिय भी है। किन्तु जब जब मैने उसे सुलू के दीवानखाने मे देखा तब अकसर एक विचार मेरे मन मे आता रहा। चित्रकार ने जान-बूझकर चित्र अधूरा ही रख छोडा है। वह शायद यह दिखाना चाहता है कि आज की दुनिया कैसी है। यह नही कि आज की दुनिया मे अन्याय का विरोध बुद्धि और भावना किया ही नही करती। अवश्य करती हैं, किन्तु बुद्धि का विरोध शाब्दिक होता है, आज की दुनिया मे बुद्धि केवल शापवाणी का उच्चार करती खडी है। और भावना? वह बुद्धि के समान अकर्मण्य तो नही है। किन्तु वह आह भरती है, आसू बहाती है और अन्याय के शिकार बने लोगो का मर्मवेदना जताने उठकर सहलाती है, सीने से भी लगा लती है। किन्तु यह सब कुछ करने के बाद भी अन्याय करने वालो के राक्षसी आक्रमण का प्रतिकार करने की सामर्थ्य उसमे भी नही है।

किन्तु आज की यह दुनिया कल भी इसी तरह रहने वाली नही है।

आने वाले कल की दुनिया का सही सही चित्र बनाना हो, तो इसी चित्र म एक और आकृति मैं चित्रित करूगा। वह आकृति एक युवक की होगी। तपोवद्धा ऋषि तथा वह भावविह्वल युवती से वह सवथा भिन्न होगा। उसके पास भी तीर कमान होगे। किन्तु उसका निशाना गरीब वेसहारा पछियो पर नही होगा। उस क्रूरकर्मा निषाद के बाणो का हवा म बीच ही म टुकडे-टुकडे करने के लिए ही वह शरसधान करेगा। इस पर यदि निषाद गुस्से म उस पर आक्रमण करे तो उमे पूरी तरह से परास्त कर पेडो पर क्रीडा कर रहे पछियो को वह बच्चो जैसी निरीहता से देखता रहगा।

किसी ने कहा है कि कला अतीत की कया, वर्तमान की पत्नी तथा भविष्य की माता होती है! क्रौंचवध के उस चित्र की याद आते ही मुझे इस उक्ति की सत्यता अनुभव होती है।

दादासाहब, उस रात मेरी आखा के सामने यह चित्र नही था। किन्तु मेरा मन बार-बार कह रहा था—

सामाजिक भावना ही विकासशील मानव जीवन की आत्मा है। इस भावना का आविष्कार शब्दा, आसुआ तथा कृति द्वारा होता है। काव्य इस भावना का पहला सुदर रूप है। किन्तु काव्य के शब्द कितने ही सुदर रह तो भी अन्त मे हवा मे विलीन हो जाते है। आसू इस भावनाओ का दूसरा रमणीय रूप है। किन्तु मानव-मन की अथाह गहराइयो से निकलने वाले ये मोती अन्ततोगत्वा माटी मे ही मिल जाते हैं! अन्तरतम म सुलगती आग को भी जहा आसू बुझा नही सकते वहा दुनिया के दावानल को भला वे कसे शान्त कर सकेंगे? चहु ओर का दुख देखकर व्याकुल बने मानव मन का बोझ हल्का कर सकने के अतिरिक्त शब्दो और आसुआ म कोई सामथ्य नही होती।

इस भावना का तीसरा रूप मानव प्रगति के लिए उपकारक हो सकता है। उस रूप म यह भावना मुह से या आखो से नही, अपने हाथा से बोलती है। अपना रक्त सीच कर दूसरो का जीवन वह फुलाती-खिलाती है।

शब्द, आसू और रक्त! तीनो का उद्गमस्थान एक ही है, किन्तु उसकी दुनिया कितनी भिन्न हैं?

प्रकृति की इतनी सघन पष्ठभूमि पर वहा के इन्सानो की विकराल गरीबी देखकर मैं बहुत ही अन्यमनस्क हो गया। कश्मीर से वापस आने को निकला तब मन मे भयकर क्षोभ धधक रहा था।

ताजमहल देखते समय मुझे सुलू की तीव्र याद हो आई। सुलू के सिवा वहा अन्य कुछ न तो दिखाई देता, न ही सूझता था। वह अब बी० ए० पास हो गई होगी, पहले से कही अधिक सुन्दर दीखने लगी होगी—

उनके बाद शीघ्र ही एक मित्र के साथ मैं राजस्थान चला गया। भग्न चित्तौडगढ के खडहर देखते समय मन मे कई कल्पनाओ का अम्बार-सा लग गया ऐसा आभास हुआ मानो ताडव नृत्य करते रुद्र के विशालकाय पुतल के किसी पागल ने टुकडे-टुकडे कर यहा बिखेर दिए हैं किन्तु छोटे-से छोटे टुकडे से भी प्रेरणादायी चेतना रग-रग से प्रकट हो रही है। ताजमहल व्यक्ति जीवन की सुन्दरता का प्रतीक है तो चित्तौडगढ व्यक्ति जीवन के सामर्थ्य की प्रतिमा!

और एक रात एक देहाती राजपूत ने राणा प्रताप पर रचा एक बहुत ही सुन्दर गीत मुझे गाकर सुनाया—आज भी उस गीत के सुर मेरे कानो मे सजीव हो उठे हैं।

उस गीत मे राणा प्रताप के महानिर्वाण का प्रसग स्वरबद्ध किया गया था!

एक झोपडी मे राणा मत्युशैया पर पडे हैं। वे सब साथी, जिन्होंने अनेक युद्धो मे उनका साथ दिया था और सच्चे सहयोगी कहलाए थे उनकी शैया के पास सिर झुकाए बैठे हैं। उन्हे विश्वास है कि अपना यह रण-बाकुरा नेता मत्यु की भी हसते हसते ही अगुवानी करेगा। किन्तु राणा जी कराहते हुए कुछ कह रहे हैं। साथी सरदार रुंधे स्वर मे पूछते हैं, 'क्या चाहिए राणाजी?' प्रताप उत्तर देते हैं, 'वचन!' सरदार प्रश्न करते हैं, 'कैसा वचन?' 'प्राण जाते हो तो जाए किन्तु चित्तौड [illegible] की दासता नहीं स्वीकारेगा!' 'सुखासीनता के कारण चित्तौड अपनी आजादी नहीं गवाएगा।' 'सिर पर सम्मान का सेहरा पहनने वाला चित्तौड पराधीनता की बडी पाव मे नही डलवा लेगा!' सभी सरदारों ने राणा को वचन दे दिए। सवेरा होते ही गरुड अपने घोंसले से उड जाता है...

प्रकार राणा प्रताप के प्राणपखेरू उनके नश्वर देह को त्याग कर अनत म उड गए।

धीरे धीरे मैं मा को, सुलू को, आपको भुलाता चला गया। फिर तो ऐसा रम गया कि महीनो आपकी याद नही आती थी। मुझपर तो बस यही धुन सवार थी कि अज्ञान और गरीबी म फसे अपने देशबाधवो की निरन्तर सेवा कसे करता रहू। रात मे गहरी नीद सोने वाले को कमरे म रखी घडी की टिक टिक भी सुनाई नही देती। किन्तु नीद हराम हो जाए तो वही टिक-टिक भी उसके लिए सिरदर्द बन जाती है। प्रीति, कीर्ति, वैभव, विलास आदि का भी वही हाल है। जिस पर ध्येय की धुन सवार हो जाए उस इनकी पुकारें सुनाई नही देती।

एक बार सभी तीर्थस्थानो की यात्रा करने वैरागियो के एक जत्थे के साथ मैं तीन चार महीने घूमता रहा। उन धम के मतवालो के जमघट म भी मुझे यही अनुभव हुआ। जत्थे के एक बूढ़े बरागी स मेरी अच्छी मित्रता हो गई। भगवान की प्राप्ति के लिए उसने क्या-क्या विपदाए नही झेली थी—क्या-क्या शारीरिक कष्ट नही उठाए थे—पावो मे शक्ति न रहने पर भी हर साल सभी तीर्थों की यात्रा करने की उसकी जिद्—

उसका भगवान झूठा था, लेकिन उसकी निष्ठा कितनी खरी, कितनी जाज्वल्य थी। हर व्यक्ति का भगवान अलग-अलग हो सकता है, किन्तु अपने भगवान के प्रति उस बूढे बरागी के मन मे जितनी आस्था थी उतनी आस्था कितने लोगो मे होती है?

रामगढ से चलते समय मेरा मन गाधीवाद की अपेक्षा समाजवाद की ओर अधिक आकृष्ट हो रहा था। किन्तु सारा देश घूमने तथा विभिन्न देहातो मे महीनो निवास कर चुकने के बाद जब मैं सोचने लगा तो प्रतीत होने लगा—समाजवाद और गाधीवाद बाह्यत प्रतियोगी प्रतीत हुए, तो भी अतरग म दोनो एक दूसरे के सहयोगी ही है। समाजवाद आज की दुनिया को पिता की नजरो से देखता है, तो गाधीवाद मा की। समाजवाद एक नई दुनिया का निर्माण करना चाहता है, किन्तु नए आदमी के बिना नई दुनिया का निर्माण नही किया जा सकता और अगर हो भी जाए, तो नए मानवो के बिना वह अधिक दिन तक टिक नही सकता।

गाधीवाद नया मानव निर्माण करना चाहता है। किन्तु पुराने आदमी का मतपरिवनन जादू की छडी घुमाने मात्र से नही हो सकता। वह तो विविध सस्कारो द्वारा ही किया जा सकता है, करना पडता है। आम आदमिया के जीवन मे सामाजिक सस्कारो की बहुतायत तथा आध्यात्मिक सस्कारो का अभाव ही हुआ करता है। इसीलिए नवमानव के निर्माण के लिए भी मानव समाज के चहु ओर विद्यमान पुराना वातावरण वदलना ही आवश्यक होता है। मानव आज जिस पुराने वातावरण से घिरा है उसे वदलते ही नया मानव अपने आप विकसित हो जाएगा।

दादासाहब, हो सकता है कि आपको मेरी यह सारी बातें उकता देने वाली वकवास नगें। मैं जानता हू कि आपकी राय मे गाधीवाद प्रतिक्रिया वादी है तक की कसौटी पर खरा न उतरने वाला है। गाधीजी ने आज तक हिमालय जितनी वडी भूलें की हैं, यह आपका वाक्य भी मैंन भुलाया नही है।

कि‍तु हिमालय सदश गलतिया करने पर भी आसेतुहिमालय फली चालीस कराड जनता के मानस सिंहासन पर आज भी गाधीजी विराजमान है, इसका कारण एक ही है। गाधीजी की गलतिया शायद हिमालय सदश है, कि‍तु उनकी श्रद्धा, त्याग तथा कत त्व हिमालय से भी वडे हैं। गाधीजी रानाडे जी के समान क्रान्तिदर्शी है, आगरकरजी के समान उग्र सुधारक है, तिलकजी जसे प्राणो की वाजी लगाकर लडने वाले वीर पुरुष है और कर्वेजी क समान समाजसेवा के निष्ठावान उपासक भी है। इन परस्परविरोधी पहलुआ के कारण ही गाधीजी का ~यक्तित्व अतीव आकषक बना हुआ है। किन्तु विविध पहलुओ के कारण ही उनके दशन के वारे मे अजीवोगरीव गलतफ्हमिया भी पैदा हुई हैं।

दादासाहव प्रकृति से गाधीजी, बुद्ध-नानक तथा एकनाथ-तुकाराम की विरासत के उत्तराधिकारी हैं। किन्तु हि‍दुस्तान मे वे ऐसे समय पैदा हुए, जब राजनीतिक क्षेत्र मे गोखले तथा तिलकजी के उत्तराधिकारी हाने के अलावा उनके सामने कोई चारा नही था। गाधीजी एक ही धम को मानत हैं—मानवधम को ! किन्तु आज ससार के एक भी देश म हालात ऐस नही है कि मानवधम ही राष्ट्रधम बन जाए। हमारी परत त्र मातभूमि म भी

वैसे हालात किसी सूरत मे नही हैं। किन्तु इसके लिए गाधीजी को दोष देने से क्या लाभ ?

गाधीजी स्वभावत सतपुरुष है। वे क्राति चाहते तो हैं, किन्तु केवल सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक क्राति नही, अपितु मानव मानस म क्रान्ति व चाहते ह ! आज ससार भोगवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है। सवत्र भाग मूल्यो का बोलबाला हो गया है। इसान की महानता उसकी सत्ता, सम्पत्ति और सामथ्य पर आकी जाने लगी है। गाधीजी की मा यता है कि आदश मानव जीवन के अतिम मूल्य सेवा, त्याग तथा भक्ति पर निभर हैं। सत्ता की मदाधता एव सम्पत्ति की विपमता को दूर किए बिना मानवधम विश्व म पूजनीय नही हो सकता। गाधीजी इसे भलीभाति जानते है। इस दप्टि से गाधीवाद की ओर देखें तो—

और दादासाहब सच कहू, तो गाधीवाद से गाधी श्रेष्ठ है। आप एक बार उनसे अवश्य मिलिएगा ! रामगढ लौटने से पहले मैं केवल उ ह एक बार देखने के लिए सेगाव गया था। उस दिन मैंने अनुभव किया कि गाधी जी का व्यक्तित्व एकदम बिजली जैसा है।

मैंने सबसे पहले उ हे देखा जब वे सवेरे सर करने के लिए निकले थे। कडाके की सर्दी पड रही थी किन्तु यह बूढ़ा आदमी कितनी तेज रफ्तार से चल रहा था ! मानो कोई चचल नटखट लडका हो ! मैंने सोचा—बच्चो की दौड-प्रतियोगिता म ये भाग लें तो शायद पहला पुरस्कार भी पा जाएगे ! कहते हैं कि सच्चा कवि प्रौढावस्था म भी अपनी बालसुलभ मनोवत्ति बनाए रखता है। नेता को भी अपनी जवानी इसी तरह बनाए रखनी ही पडती है। अ यथा युवको के साथ वह एकरूप नही हो सकता। अधिका श नेता अल्प समय के लिए प्रकाश मे आकर फिर पिछड जाते हैं, इसका कारण भी यही है कि वे देखते ही देखत म बूढ़े हो जाते हैं।

तीसरे पहर गाधीजी के साथ बातें करने के लिए ठीक दस मिनट का समय मिला, उ ह प्रणाम कर मैं नीचे बठा ही था कि उन्होंने अपनी मधुर मुस्कान से मुझे जीत लिया। मुझे तो लगता है कि गाधीजी का सारा दशन उनकी उस मुस्कान म समाया है। मानवधम की वह उज्ज्वल पताका है। वह मुस्कान मानो कह रही है—सारा ससार हमारा है। हम सब भाई-

भाई हैं।

हम वातें करत बठे थे तभी एक न-ही-सी बालिका लजाते लजात वहा आ गइ और गाधीजी को फूल देने लगी। फूल देने के बाद तोतली बोली मे कहने लगी, 'जाला बहुत पला है! बापू, आप कुलता पहन लीजिए न ?'

गाधीजी ने हसकर कहा, 'मेरे पास कुर्ता नही है बेटी!'

'अच्छा ? मैं मा से कहकर आपको दिलवा देती हू!' गाधीजी से मिलने आई वह बालिका किसी अमीर बाप की बेटी थी। वह मा से कहने के लिए निकली ही थी कि गाधीजी ने उसे रोका।

'एक कुर्ते से मेरा काम नही चलेगा।' उ होने हसते हसते कहा।

दो तीन चार-ग्यारह सत्ताईस—' वह लडकी मुह म जो आए, आकडा कहे जा रही थी और गाधीजी 'ना' सूचक सिर हिलाते जा रहे थे। वह असमजस म पड गई। तब गाधीजी न हसकर कहा, 'अपनी मा स कहना मुझे चालीस करोड कुर्ते लगेंगे और वे भी हर छह मास बाद। पूछ लो अपनी मा से वह इसके लिए तैयार है ?'

लडकी चली गई। उसके बाद मेरी और गाधीजी की थोडे ही क्षण बातचीत हुई। आश्रम म रहने का अपना इरादा मैंने व्यक्त किया। किन्तु गाधीजी ने मना कर दिया। हाथ मे लिए फूलो की ओर देखत हुए उ होने कहा, 'मेरा धम है कि ये फूल यहा के ही देवता पर चढ़ा द। इ हे काशी-विश्वेश्वर या डाकारनाथ के चरणो मे अर्पित करने की जिद्द गलत होगी, है न ?'

जहा के फूल वही के देवताओ को अपण करना मेरा धर्म है। गाधीजी का यह वाक्य मैंने कभी भुलाया नही।

आगे चलकर काशी मे रामगढ के एक मुहर्रिर से भेंट हो गई। उनसे मालूम हुआ कि पिताजी की मत्यु हो चुकी है। अब मा से मिलने के लिए मैं अधीर हो गया। उन महाशय ने बताया कि अब भी मेरे नाम रियासत का वारण्ट जारी है। किन्तु—

जो भी हो देखा जाएगा, सोचकर मैंने मा से मिलने जाने का निश्चय कर लिया। मैं रामगढ आ गया, कुछ दिन जेल मे काटे और वहा स रिहा होने पर रामगढ रियासत के किसानो को सगठित करन के काय के लिए

अपने आपको समर्पित कर दिया।

हमारे आज के देहात—प्राचीन मंदिरों के खडहर से प्रतीत होते हैं। इन खण्डहरो मे सन्तोष का टिमटिमाता दिया भी कही नही जलता। अज्ञान और गरीबी की लोमडिया यहा बेसुरा क्रन्दन करती रहती हैं।

जीवन मे पुरानी आस्था समाप्त हो गई है, नई आस्था का निमाण अभी हुआ नही है। शास्त्रीय दृष्टि से किसी चीज का विचार करना असम्भव है किसी बात पर अटूट श्रद्धा रही नही है। शहरा म जो घटो रूकची माया फैली है उसकी मन कल्पना भी नही कर सकता। बचारा किसान बहती धारा मे बहता चला जा रहा है, जिंदगी के दिन जस गुजरें, गुजारता जा रहा है।

धीरे धीरे रियासत के किसानो मे मुझे लोकप्रियता प्राप्त होने लगी। पुलिस की वक्रदष्टि भी मेरे हर कामो पर नजर रखने लगी। मेरे पिताजी के कुछ दुश्मन अब भी पुलिस विभाग म काम कर रहे थे। वे आंखो मे तेल डालकर मुझ पर निगरानी रखने लगे।

किन्तु मैं कोई गुप्त षडयन्त्र नही रच रहा था। बस किसानो की सेवा करना चाहता था। अपने धम का पालन करने के लिए ही मैंने इस काय के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया था। इसलिए मुझ पर खार खान के अतिरिक्त पुलिस मेरा कुछ भी बिगाड न सकी।

मुझे काफी सहयोगी कायकर्ता मिलने लगे। किन्तु इस बात म जितना आनन्द उतना ही खतरा भी था। आन्दोलन म शामिल होने वाले लोग कई तरह के होते हैं। कोई हुल्लडबाज होते हैं तो कोई बहुत ही ज्यादा भावुक। कोई अपना उल्लू सीधा करने वाले होते हैं, कोई किसी से वैयक्तिक प्रतिशोध लेने आन्दोलन मे आ जाते हैं। कुछ लोग नि स्वार्थ भावना से भी आए होते हैं। कुछ लोग जुबान के बहुत कच्चे होते हैं तो कुछ लोगो को अपने दायित्व की पूरी कल्पना ही नही होती।

हमारे आन्दोलन की अवस्था ठीक वैसी ही होने लगी, जसी वर्षा म अनेक छोटे बडे नालो का पानी समाता जाने के कारण अधिकाधिक गन्दी होते जाने वाली बाढ भरी नदी की होती है। लाटसाहब की गाडी उडा देने का षडयन्त्र रचने वाले विद्यार्थी जेल मे रिहा होने के बाद तुरत ही

मेरे आन्दोलन म शामिल हो गए। वे इस तरह खून खौलाने वाले भाषण देते कि—

और वह राजगायक जोशी! मेरे कक्षा मित्र जोशी का बडा भाई। वह भी काफी लम्बी जेल काटकर आया था। रिहाई होते ही वह हमारा प्रमुख कायकर्त्ता बन गया। देहातो मे प्रचार के लिए उसकी सुरीली आवाज का हम काफी लाभ होता था। किन्तु भाषण ऐसा अनापशनाप देता और ऐसी आग उगलता कि उसका भाषण आरम्भ होते ही मैं चुपचाप सिर झुकाकर बठ जाता।

ऐसे साथियो से दूर रहना या उ ह अपने से दूर रखना मेरे लिए सभव नही था। इन लोगा से अच्छे कायकर्त्ता हमारे आ दोलन के आसपास भी नही फटकते थे।

देहाता मे काफी काय कर जब भी मैं रामगढ आता, सुलू स मिलने के लिए उसके बगले पर अवश्य जाता था। अधेरे म घने जगल से गुजरते समय किसी झोपडी से आती राशनी राही को कितना धीरज बधाती है! सुलू की आखो मे मुझे वही रोशनी मिलती थी और उसे देखकर मेरा मन बाग बाग हो उठता था।

किन्तु आगे चलकर उसकी आखो मे उदासी की छटा दिखाई देने लगी। उसका आभास मिलते ही मुझे खलील गिब्रान की एक छोटी सी कहानी याद आती। कहानी एक मा और उसकी बटी की है। दोनो को नीद मे चलने की आदत थी। एक रात इसी तरह नीद मे चलकर वे दोनो एक उद्यान मे पहुँच गइ। बेटी को देखते ही मा जोर से चीखी, 'तुम बैरन हो मेरी। तुम्हारे ही कारण मैं अपना यौवन खो बठी!' बेटी भी उतने ही *जोश मे चिल्लाई, 'मरती क्यो नही बुढिया! तुम्हारे ही कारण मेरी* आजादी गई। मेरा जीवन बस तुम्हारी नकल मात्र बन बठा है!' तभी मुर्गे ने बाग दी। दोनो जाग गइ।

मा ने ममता से बटी से कहा, 'अरी मुन्नी, कौन हो तुम?' बटी ने प्यार से उत्तर दिया, जी मा! मैं ही तो हू आपकी लाडली बिटिया!'

क्या पति पत्नी का प्रेम भी इसी तरह का होता है?

क्या पता!

किन्तु यह सत्य है कि सुलू और भगवतराव को जब जब देखता, यह कहानी बरबस मुझे याद आ जाती थी।

अब मैं मुश्किल से तीस-एक घण्टे का ही मेहमान हू। सुलू स भेंट हो पाना अब असम्भव है। वरना मैं स्वय ही उससे कहने वाला था—तुम भगवतराव की धर्मपत्नी हो। अपने धर्म का पालन तुम्ह करना होगा। पत्नी का प्रेम पति के कत्तव्य का पूरक होता है। तुम भगवतराव की प्रेरणा स्रोत बनो। उन्हे उनके धम का ज्ञान कराने वाली दुर्गा बनो।

आप कृपया उसे यह भी समझाइए दादासाहब, कि मेरे लिए व्यथ म आसू न बहाना। मेरे प्राणा की रक्षा करने के लिए सभा के दिन शाम को उसन जो प्रयास—

कोई मुझे प्राणो स भी अधिक चाहता है, यह कल्पना ही अतीव सुखदायक है। वह मन को अपार शान्ति प्रदान करती है।

सुलू का यह प्रयास सफल नही हो पाया यह और बात है।

उस दिन मेरी मा आखिरी सासें गिन रही थी। दोपहर से मैं उसके पास बठा था। मुझे बार-बार लगता था—काश! मा बेहोश हो जाए! ताकि बिना उसका दिल तोडे ही मैं सभा म जा सकू।

किन्तु वह बेहोश नही हुई। मैं उठने लगा तो 'दिनू!' कहकर उसने इतनी लाचारी से मेरा हाथ पकडे रखने की चेष्टा की, कि उतने मात्र स उसे थकान आ गई। दीदी ने डॉ० शहाणे को बुला भेजा।

मैं तो सभा म जाने के लिए बताब हुआ जा रहा था। तभी सुलू का नौकर उसका पत्र लेकर भागा भागा आ पहुचा। 'सीने मे बहुत दर्द उठा है। अभी इसी वक्त आन मिलो,' उसने लिखा था। एक दिन पहले ही वह नाले म बाढ का पानी चढता जाने के बावजूद बीच धारा म बुत बनी खडी रह गई थी। उसका पत्र पढते ही उस बात का भेद खुल गया। नाले म उतरन क बाद शायद सीने म दद उठा होगा! मुझे पहले ही पता था कि उसे यह बीमारी लग गई है! सीने मे दद का मतलब है—घटे आध घटे म ही हृदयगति रुक जाने से मर चुके लोगो के नाम मुझे याद आने लग। सुलू के बारे मे मैं बहुत चिंतित हो गया। इधर मा मत्युशैया पर थी, और उधर सुलू—

सभा की चिन्ता भी खाए जा रही थी। सुबह से ही गाव मे अफवाह फैली थी कि, हो न हो आज की सभा मे भीषण उपद्रव होने वाला है।

सहयोगियो को सन्देशा भेजा कि मेरे आते तक सभा की कार्यवाही प्रारम्भ न की जाए, और मैं तुरन्त सुलू के यहा जाने निकला। मेरा चित ठिकाने पर नही था। सुलू के बगले के द्वार पर पहुचते ही मेरे ध्यान मे आया कि सुलू का पत्र मैं मा के सिरहाने ही छोड आया हू। यदि वह किसी के हाथ लग जाए तो—

किन्तु अब तो वापस लौट जाने के लिए समय ही नही था।

मुझे बचाने के लिए ही सुलू ने यह सारा नाटक खेला है, यह बात समझ पाने मे मुझे काफी देर लगी। तब तक तो सभास्थान पर वह सब कुछ हो चुका था जो नही होना चाहिए था। जोशी आदि कार्यकर्ताओ ने सभा के प्रारम्भ म ही बहुत ही तीखी भाषा म प्रक्षोभक भाषण दिए। पुलिस उन्ह बोलन नही दे रही थी। हाथापाई हो गई, मारपीट भी प्रारभ हो गई। किसानो के उस विशाल समुदाय म से किसी ने पुलिस पर जोरो का पथराव किया। एक थानेदार मारा गया। तीन चार पुलिस वाला की भीड ने खासी मरम्मत कर डाली। तुरन्त ही पुलिस ने गोली चला दी।

सुलू के यहा से सभास्थान पर पहुचने म मुझे बहुत देरी हो गई थी। किन्तु मुझे तुरन्त गिरफ्तार कर लिया गया। मुझ पर अभियोग रखा गया कि मैं भेष बदलकर लोगो मे घुसा था और उन्ह उभाड रहा था। भीड म मुझे भेष बदलकर घूमते देखने वाले गवाह भी सरकार का मिल गए? महीना भर मुकदमा चला और हमारे पन्द्रह-बीस साथियो को कम-ज्यादा अवधि की सजाए सुनाई गईं। मैं उनका नेता! यह सभी दृष्टिया स ठीक है कि फासी पर चढने का सम्मान मुझे दिया जाए।

किन्तु—

दादासाहब, सुलू को समझाइए। उपन्यासो म करुण प्रसग पढने पर भी वह रोने लगती है। वह सोचने लगती है कि वे प्रसग मानो उसके अपने जीवन के हैं। इसीलिए—

फूल का क्या? एक न एक दिन उसे मुरझाना तो पडता ही है। मानव जीवन भी फूलो जसा ही है। मुरझा जाने के क्षण तक सुगन्ध देता रहा

तो जन्म सफल हो गया।

आप शायद कहेंगे कि सभी मौतें एक सी नही होती। मौत मौत मे भी फर्क होता है। फासी लगने की कल्पना मात्र मे इसान के रोगटे खडे हो जाते है। किन्तु दादासाहब, जहाज का खल्लासी सागर मे डूब जाए तो क्या आप आश्चर्य करेंगे? इसी तरह देशभक्त फासी पर चढ जाए तो—

फासी के फन्दे से मुझे कतई भय नही लग रहा। किन्तु मैं अवश्य कहने वाला हू कि फासी देते समय मेरा मुह ढाका न जाए ताकि आखिरी सास तक मैं अपनी मातभूमि का दशन कर सकू। जी भरकर उसे आखो म समाकर आखें मूद सकू।

दादासाहब, जीवन मे अन्य सार ऋण उतार देने का प्रयास मैंने किया। किन्तु आपका ऋण वसे ही रह गया। मैंने आपको कभी मामूली पत्र भी नही भेजा! इस अन्तिम क्षण सोचा—दिल खोलकर सारी बातें लिखकर भेज दू। अब लगता है दिल का सारा बोझ हल्का हो गया है!

सुलू से कहिए—दिनकर पिछली बार उत्तर भारत मे गया था न? उसी प्रकार अबकी बार भी वह एक दूर, बहुत दूर की यात्रा पर जा रहा है। उस अति दूरस्थ प्रदेशो की मजेदार बातें देखकर वह तुमसे मिलने फिर आएगा। बताऊँ, कब? अगले जन्म मे!

जी हा, मैं पुनजन्म मे विश्वास रखता हूँ। बहुत चाहता हु कि सुलू का बेटा बनकर उसकी कोख से जन्म लू। और मैं जब फिर पदा होऊँगा, तब हमारा यह भारत देश आजाद हो चुका होगा, हिमालय के समान उन्नत मस्तक किए वह दुनिया के अन्य राष्ट्रो की ओर स्वाभिमान से देखने लगा होगा, आज का अनाडी, अधभूखा भारतीय किसान अपनी मातृभूमि का सुखी सेवक और शूर सनिक बन चुका होगा!

मेरा यह अन्तिम स्वप्न शीघ्र साकार हो न हो, किन्तु इन्सान जीवन भर सपनो के भरोसे ही तो जीता है। यही क्यो, मौत की गोद मे भी नित नये सपन देखते हुए ही वह चिरनिद्रा म लीन हो जाता है।

वन्दे मातरम्,

आपका अनचाहा शिष्य
दिनकर सरदेसाई

जूडी बुखार उतरने पर रोगी असाधारण ग्लानि अनुभव करता है। दिनकर का पत्र पूरा पढने के बाद दादासाहब के मन की वही अवस्था हो गई। उनके हाथ से वह पत्र छूट कर नीचे गिर पडा। किन्तु उनमे इतनी भी शक्ति नही थी कि उसे फिर से उठा लेते।

उनकी आंखो के सामने बार-बार वे ही शब्द नाच रहे थे—आपका अनचाहा शिष्य!

कल तक यह वर्णन बिलकुल सही होता, किन्तु आज?

भूचाल आते ही एक रात के भीतर बडे बडे मंदिर महल धराशायी हो जाते है। जीवन भर सीने से लगा रखी धारणाएँ भी अनुभव के धक्के से उसी तरह देखते ही देखते मे ढह कर ढेर बन जाती हैं। विगत चौबीस घंटा मे दिल को हिला देने वाले दो जबरदस्त धक्के उन्होने खाए थे। सुलू की वह कहानी और दिनकर का यह पत्र।

उन्होने सोचा, वे लोग भी मन से कितने दूर होते हैं जिन्हे आप जीवन मे अपने बहुत ही करीब के मानते हैं।

यही सच है कि हरेक का अंतरंग उसकी अपनी स्वतंत्र दुनिया होता है।

बुखार के रोगी को धूप से कष्ट होता है। उसी प्रकार दादासाहब को अब कमरे की रोशनी भी असह्य होने लगी। उन्होने तुरन्त मेज की बत्ती गुल कर दी और आँखें मूद कर वे आराम से लेट गए। थके मांदे मन पर एक तरह की अचेतनता छायी जा रही थी।

कितनी अजीब थी वह अचेतनता।

दादासाहब को लगा—एक क्रौंच पक्षी चिल्ला रहा है—'Men are not born They are made' बाल्मीकि गुस्से मे 'मा निषाद' वाला श्लोक कह रहा है। सुलू सितार के तार तोड कर आकाश के सितारो से जोड रही है और भगवान को टेलिफोन कर रही है!

दादासाहब ने चौंककर आखें खोली।

दीवानखाने मे लगी घडी घण्टे बजा रही थी—एक—दो—तीन—

चार—बारह बजे!

उसका मतलब था दिलीप को फासी पर चढाने के लिए अब केवल छह सात घण्टे ही शेष थे।

इस कल्पना से ही दादासाहब का कलेजा कांप उठा।

प्रबल इच्छा हुई कि दीवानखाने म लगा क्रौंचवध का वह चित्र, जिसका दिलीप ने इतना वणन किया था, देख लिया जाए। व उठे भी, किन्तु तभी—

वे कान लगा कर सुनन लगे।

चूडियो की खनक थी वह ओर आ भी रही थी दीवानखान स—

उन्होने होले स दरवाजा खोला। कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। किन्तु साडी की फरफराहट—

दीवानखाने स कोई बाहर की ओर जा रहा था।

फिर चूडियाँ खनकीं।

दादासाहब एकाग्रता से सुनने लगे।

जीने की सीढियाँ कोई चढ रहा था।

किन्तु इतनी रात बीते ? अधेरे में ?

कुछ समय पहले देखी वह अक्खड़बाज विधवा की याद दादासाहब को हो आई। सम्भवत वही तीसरी मजिल पर जा रही होगी।

इमका मतलब ?

भगवतराव उस युवती के साथ चोरी चोरी—

अब उनसे दरवाजे के पास ही इस तरह चुपचाप खडा रहा नहीं गया।

दब पाँव व कमरे स बाहर आ गए। अधेरे में टटोलते हुए दीवानखाने क दरवाजे से भी बाहर आ गए। धीरे धीरे सीढ़ियाँ चढ़न लगे। यह सोच कर कि भगवतराव तीसरी मजिल पर होंगे, व फिर सीढ़ियाँ चढ़न लगे। बीच म एक मोड़ पर—

वह भगवतराव की आवाज थी। उन्हें स्पष्ट सुनाई दिया—'तुम नीचे

चली जाओ !'

'मुझे आपके बारे म बडी चिंता लगी है जी। कितने दिन आप इस तरह जीएँगे ?' वह युवती कह रही थी।

'आज की आखिरी रात है !'

'क्या मतलब ?'

भगवतराव चुप रहे।

'कोई आपकी वातो का क्या मतलव ले, जी ?' उस युवती न फिर कहा।

फिर भी भगवतराव चुप।

'मैं नही जानती थी कि आप इतने वदल गए है ! मेडिकल कालेज मे तो आप मेरा दातकटा पान भी खा लेते थे ! याद है न ?'

क्यो नही, क्यो नही ? पूरा बीता जीवन ही जहाँ आँखो के सामने खडा हो गया है, वहा—'

'तो ?'

'उस समय का भगवतराव—'

'उस समय के भगवतराव एक गरीब छात्र थे। आज के भगवतराव रामगढ रियासत के दरबार सजन हैं। सारे सुख हाथ जोडे उनके सामने खडे है।'

'नही !'

'नही का क्या मतलब ?'

सारे दुख ही दुख खडे हैं मेरे सामने !'

दुख खडे हो आपके दुश्मनो के सामने !'

दादासाहव को केवल भगवतराव की हसी सुनाई दी। थोडी देर वाद भगवतराव कहने लगे, मैंने कोई अभद्र बात नही कही है, कमल। ज्यादा लडियान के कारण वच्चा की आदतें खराब हो जाती हैं न ? सुख भी इसान को उसी तरह नादान वना देते है और मेडिकल कालेज म जिस भगवतराव ने तुमसे प्यार किया था, विलायत जाते समय भूमध्य सागर म

वह डूब कर मर गया है !'

दादासाहब दग रह कर सुनने लगे।

किन्तु उन्हें कुछ भी सुनाई नहीं दिया। वह स्तब्धता उनके लिए असहनीय हो उठी।

उन्हें लगा, शायद संभाषण समाप्त हो गया है। किन्तु यह कमल की बच्ची अभी ऊपर ही है। जरूर वह भगवतराव पर डोरे डाल रही होगी। उनके कंधे पर उसने हाथ रखा होगा या—

कुछ डाटते हुए भगवतराव ने कहा, 'कमल, तुम पहले नीचे चली जाओ !'

सीढ़ियों पर फिर पदचाप सुनाई दिया। दादासाहब सीढ़ियों के मोड़ पर एक कोने में सिकुड़कर दुबक गए। कमल गुस्से में पाँव पटकती नीचे चली गई। अब क्या किया जाए, दादासाहब सोचने लगे। ऊपर चला जाए या—

भगवतराव जाग ही रहे थे। किन्तु शायद उनका चित्त ठिकाने पर नहीं था। उनके साथ इसी समय दिलीप और सुलू के बारे में बात छेड़ना—

तभी कोई सीढ़ियों पर उतरने लगा। वे भगवतराव ही थे।

वे नीचे पहुँच गए, तब उनके पीछे-पीछे दादासाहब भी जीना उतर कर आ गए। सोच रहे थे भगवतराव कहाँ जा रहे हैं ? क्या कमल के कमरे में ?

नहीं ! वे अपने कमरे में जा रहे होंगे ! और जब मुझे वहाँ नहीं पाएंगे तो—

किन्तु भगवतराव बंगले के अन्दर गए ही नहीं। वे सीधे बाहर के दरवाजे से फाटक पार कर गए। इतनी रात बीते वे कहाँ निकल पड़े होंगे ? शायद उस सामने वाले तालाब में आत्महत्या—

इस विचार का दादासाहब को डर लगने लगा। 'कितने दिन जाएंगे आप इस तरह ?' अभी अभी कमल ने उनसे पूछा था और उन्होंने कहा था, 'आज आखिरी रात है !' क्या अर्थ हो सकता है उस उत्तर का ? कहीं ऐसा तो नहीं कि आत्महत्या करने का इरादा उन्होंने पक्का कर लिया है ?

भगवतराव सडक लाघ कर आगे जा चुके थे।

दादासाहब ने उनका पीछा करना शुरू किया।

भगवतराव सीधे तालाब की ओर चल दिए। दादासाहब को लगा, दौडते हुए लपक कर उन्हे रोकना होगा। वरना कही मेरे पहुँचने से पहले ही वे तालाब मे कूद पडेंगे और फिर—

दादासाहब तेजी से चलने लगे, उनकी आहट पाते ही भगवतराव रुक गए। दादासाहब उनके पास पहुँचे तो उन्होने पूछा, 'कौन है ?' और स्वयम् ही कह पडे, आह ! दादा साहब आप !'

'जी हा, लाख कोशिशें करने पर भी नीद नही आ रही थी, तो सोचा जरा इस ठण्डी हवा मे बैठ लू तो शायद—'

कहते हुए दादासाहब तालाब की पथरीली मुडेर पर बैठ गए। दोनो काफी देर चुप थे।

अत मे भगवतराव उनकी ओर न देखते हुए बोले, 'एक बात की, मैं आपसे क्षमा चाहता हू।'

दादासाहब ने केवल प्रश्नसूचक हाथ हिलाया।

'आपके दिनकर का वह पत्र ! वह लिफाफा खोल कर मैंने पढ लिया था ! पढना तो नही चाहिए था। लेकिन—'

आगे कुछ बोलने की नही सूझी शायद, तो वे चुप हो गए।

दोनो ने आकाश की ओर देखा। चादनी तो गायब हो ही गई थी किन्तु आकाश मे बादल छा जाने के कारण कोई सितारा भी नही दिखाई दे रहा था। दूर तक एक तरह की उदासी का साया फैला था।

तालाब के पानी की ओर देखते हुए भगवतराव ने कहा, इतने सालो से मैं इस बगले मे रह रहा हू, किन्तु इस तालाब का मूल्य महज शोभा के अतिरिक्त भी कुछ है, मैंने कभी जाना ही नही था ! किन्तु पिछले महीने मे—'

वे कुछ रुके। उनकी आवाज भर्रा गई। किन्तु पाँव फिसलने से गिरने लगा आदमी जिस तरह फुर्ती से अपना सन्तुलन फिर साध लेता है, उन्होंने अपनी आवाज फिर साध ली और शातभाव मे बोले पिछले महीने म इस आकाश ने मेरा साथ न दिया होता और यह तालाब मेरा मित्र न

चनता तो—'

उन्होंने बीच ही मे बगले की ओर मुडकर देखा। तीसरी मजिल पर स्थित उस कमरे की ओर देखते हुए बोले, 'दादासाहब, आपका भूतो मे विश्वास है?'

दादासाहब ने सिर हिला कर 'ना' कहा।

भगवतराव ने कहा, 'मेरा भी नही। किन्तु पिछले महीन म एक बात मैं जान गया कि भूत इस ससार मे भले न हो, आदमी के मन मे अवश्य हुआ करते हैं!'

दादासाहब को फिर भी चुप ही पाकर भगवतराव न कहा, 'शायद मेरी यह बात सुन कर आपको आश्चय लग रहा होगा। किन्तु जसे आग बहुत तेज हो जाने पर दूध उफन जाता है न, कुछ वसा ही मेरा हाल हो गया है!'

दादासाहब बुत बने बठे थे। भगवतराव ने आगे कहना प्रारम्भ किया, "आपका पहला तार आया तो मुझे बहुत अच्छा लगा! किन्तु एक के बाद एक गाडिया आकर चली गइ। सुलू नही आई। तब मुझे विश्वास हो गया कि—'

पलभर रुक कर वे कहने लगे, 'पहले कुछ साल हम दोनो ने कितने आनद के साथ बिताए। किन्तु सुख के उन्माद मे न तो मैं सुलू के मन को जान सका, न सुलू मेरे मन को। जानते भी कैसे? कई बार तो हम अपना ही मन क्या है, नही जान पाते! तो—

रोगी को बुखार के साथ खासी भी आने लगे तो हम डॉक्टर लोग उसका एक्स रे निकलवाते हैं। जीवन म भी ऐसा होता है। मुझसे झगडा कर सुलू यहा से चली गई, तब तक तो मैं यही सोचता था कि बत्तीस तैंतीस साल पहले रायगढ रियायत के एक देहात मे विनायकशास्त्री शहाणे के यहा पदा हुआ भगवत और मैं एक ही हू। किन्तु—

सुलू यहा से अकेली नही गई। वह मेरी नीद और मन का चन भी ले गई! उसके चले जाने के बाद दिन तो जस तसे काम-काज म कट जाता, किन्तु रात काटने दौडा करती!

मैं सुलू से गुस्सा हो गया था। फिर भी उससे मेरा प्रेम ज्यो का त्यो

के बाद शिक्षक की नौकरी मिल जाया करती थी। मैंने सोच लिया कि सातवी के बाद मैं भी किसी प्राथमिक पाठशाला म शिश्क बन जाऊगा।

आज उस विचार पर हसी आती है। तब भापा-शिक्षक को तेरह रुपये महीना दिया जाता था। और उन तेरह म से पाच रुपये पिताजी को भेज कर शेप आठ रुपयो मे अपना खर्चा किस तरह पूरा किया जा सकेगा इसका हिसाब बिठाते मैं हार जाया करता था।

सातवी की परीक्षा मे मैं सर्वप्रथम आ गया। इसीलिए अग्रेजी स्कूल के मुख्याध्यापक का ध्यान मेरी ओर गया। उन्होंने एक वप म मुझसे अग्रेजी की तीन कक्षाओ का अध्ययन पूरा करवा लेने का निश्चय किया 'वार' लगा कर वह वष मैंने जसे तसे पूरा कर लिया। तब भी लोगा के यहा भोजन के लिए जाते समय मेरे साथ वसा ही व्यवहार होता गया जैसा मेरी अपनी मौसी के यहा होता था। इस अनुभव के बाद लगने लगा, दुनिया पसो की है, प्रेम की नही।

उसी समय पिताजी का देहान्त हो गया। अब दुनिया मे मैं अकेला था। मैं एकचित्र होकर पढने लगा। हर बार मेरा पहला नम्बर आता और पहली छात्रवृत्ति मुझे मिलती। अब तो मैं भलीभाति जान चुका था कि दुनिया पैसा के सामने झुकती है। इसीलिए मन म आने लगा कि मैं भी खूब पढूगा और खूब पैसे कमाऊगा। मेरी मेधा से राजासाहब स्वयम् प्रभावित हुए और मेरी सहायता भी करने लगे। बस फिर क्या था ? स्वग हाथ आने का आनद मैं अनुभव करने लगा! रायगढ की कीतिपताका सबसे ऊची फहराने की जिद् से मैं किताब का कीडा बन गया। परीक्षा, किताबें, छात्रवत्तियो, विश्वविद्यालय इन्ही के बारे मे सोचना मेरा घम सा बन गया। मेरी दुनिया मे इसके अलावा अन्य किसी बात का मानो कोई स्थान ही नही रहा। मन को और कोई बात न सूझती न सुहाती!

आगे चल कर राजासाहब ने मुझे मेडिकल के लिए भेजा, तब तो उनके प्रति मेरे मन म आदर का स्थान भक्ति ने ले लिया। मेरा कोई मित्र नही था समाचार पत्र पढने का मुझे शौक नही था, सिगरेट का भी व्यसन नही था और उप यासो का तो मैं शत्रु ही हो गया था! उपयासो की प्रेम कहानिया मुझे क्पोलकल्पित और थोथी लगती थी। मैं हमेशा कहा

करता कि बचपन की कहानियो के राक्षस और यौवन के इन उपन्यासा मे वर्णित सुन्दरिया दुनिया मे प्रत्यक्ष मे कही नही मिलती !

किन्तु—

शायद मैं मेडिकल के चौथे वर्ष मे था, तब कि बात है। मन स्वीकार करने लगा कि उपन्यासो की दुनिया मे वर्णित सुन्दरिया प्रत्यक्ष जीवन म भी मिल ही जाती हैं। अभी खाने के समय मुझे आग्रह करने वाली वह कमल—उन्ही दिनो मेरी उससे मुलाकात हो गई।

कहते हैं कि प्यार अधा होता है। किन्तु मैंने इसके ठीक उलटा अनुभव किया। *प्यार को वह सब दिखाई देता है जो और किसी को नही* दीखता। ऐसा न होता तो—

कुछ दिन तो मैं कमल पर मरने लगा था। पढाई करने बैठता तो मन म विचार आने लगते कि यह किस गोरखधधे मे जुटा हू ! आदमी की देह इतनी सुन्दर और आकर्षक होती है, और हमारी इन किताबो मे उसकी केवल घिनौनी आकृतिया ही चित्रित की गई हैं। धत् ! पता नही कसे इस डाक्टरी के चक्कर म पड गया। इससे तो अच्छा होता कि एक चित्रकार बनता और कमल जसी रूपमती को हमेशा अपने सामने बैठाए रखता !

दिखाई तो यही दे रहा था कि कमल भी मुझसे प्यार करती है। पता नही, वह शायद इस घमण्ड मे हो कि मुझ जसे मेधावी छात्र को भी अपने इशारो पर नचा रही है ! अपनी प्यारी बिल्ली या कुत्ते को सबको दिखाते फिरने मे ही कुछ लोग बडा गर्व का अनुभव करते हैं, शायद कुछ वैसी ही भावना कमल की मेरे बारे मे हो। कुछ भी हो, आम धारणा तो यही फली थी कि आगे चल कर मेरा कमल से विवाह हो जाएगा।

किन्तु चार-छह महीनो म ही मैं जान गया कि प्यार की राह मे कवल काटे ही नही, बल्कि बडे गहरे गहरे गड्ढे भी होते हैं। मैं एक गरीब विद्यार्थी था। राजासाहब के ऋण से मुक्त होने के लिए आगे चलकर उन्ही की रियासत म नौकरी करने का निश्चय मैंने किया था। उसका *परिणाम* '

भगवतराव यकायक रुक गए। उनके बातें करने का ढग दादासाहब

को ठीक वसे लगा जस गाडी जब छूटने वाली हो और उसम जाने वाला कोई यात्री प्लटफाम पर खडे व्यक्ति के साथ जल्दी जल्दी बातें करत समय रखता है। इसीलिए वे चुपचाप भगवतराव की बातें सुनत जा रहे थे। भगवतराव कह रहे थे—

"शीघ्र ही कमल ने बम्बई के किसी बडे डाक्टर से विवाह कर लिया। कालेज-वालज छोडछाड कर हिमालय मे चले जाने को मेरा जी करने लगा। किन्तु आहिस्ता-आहिस्ता मेरी समझ म स्पष्ट होने लगा कि यह तो बचपन मे प्राप्त अनुभव का ही नया सस्करण है। आज इस ससार म पैसा ही भगवान है, यहा प्रेम की पूजा कोई नही करता !'

मैं फिर अपनी पढाई म ऐसे जुट गया जस कोई सन्यासी परमार्थ की साधना म लग जाता है। मेहनतकश लोग थक कर लेटते ही गहरी नींद मे सो जाते हैं न ? मेरी हालत ठीक वसी हो गई बस—पढाई, पढाई और पढाई ! चौबीसो घण्टे मैं पढने बठन लगा।

भगवतराव शहाणे पढाई करने वाली मशीन बन गया। उस मशीन का अन्तिम चरण म असाधारण सफलता मिली। राजासाहब ने सहर्ष उसे उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेज दिया।

वहा भी मैं अपनी पढाई मे इतना दत्तचित और एकाग्र हो गया कि लोकेषणा की धुन म मन के सारे घावो को भुला बठा।

किन्तु रामगढ़ मे दरबार सजन बनने के बाद मैं कुछ भरमा गया। मुझे कीर्ति प्राप्त हो गई थी। सम्पत्ति भी मिली थी, मानसम्मान म कोई कमी नही रह गई थी। दुनिया की नजर म मैं परम भाग्यशाली था किन्तु—समझ नही पा रहा था कि जीने का मतलब क्या है ? जीना किसके लिए है ?

जीवन एक खोटे सिक्के के समान प्रतीत होन लगा। विवाह का विचार मन मे आते ही कमल की याद सताने लगी। मन सोचने लगा—प्यार एक जुआ है। हारने की तयारी रखने वाले ही उसे खेलें।

मन उदास हो चला था। सुलू जीवन म न आती तो—शायद जीने के लिए मैं किसी न किसी दुर्व्यसन का सहारा ले लेता !

सुलू के सहवास मे मैंने अनुभव किया कि अपने मन के सारे नए-

पुरान घाव भरते जा रहे हैं। जीवन को अब पूणत्व प्राप्त हो गया है। मेरे जीवन मे राजासाहब और सुलू देवता-स्वरूप बन गए। उन्हे प्रसन्न रखने के अलावा जीवन मे कुछ भी चाह नही रही थी। कभी नही सोचा कि इनकी आराधना मे भी कभी कोई विरोध पैदा हो सकता है ! किन्तु—

इसी बगले की तीसरी मजिल वाले कमरे मे राजासाहब की कन्या का मैंन उसकी इच्छा के विरुद्ध आपरेशन किया। अक्कासाहब को उन्हे सगीत सिखाने के लिए रखे शिक्षक स प्यार हो गया था। वह गरीब था किन्तु फिर भी उसके साथ विवाह करन के लिए अक्कासाहब तैयार थी। किन्तु राजासाहब को यह मजूर नही था। उन्होने मुझ पर काफी उपकार किया था। मैं उनका ताबेदार भी था। उस मनहूस दिन—

अक्कासाहब को क्लोरोफाम देते ही उन्होने जिस असहाय-करुण दष्टि स मुझे देखा—तीर स घायल नन्हे से पछी के समान उनकी वह नजर मैं अभी तक भुला नही सका हू।

वह आपरेशन सफल भी हो जाता। किन्तु अक्कासाहब के मन पर जबरदस्त आघात हुआ था। होश म आन पर उन्होने जो कुछ कहा था वह आज भी मुझे याद है ! उन्होन कहा, 'डाक्टर आपने नाहक क्लाराफाम दिया मुझे। आपक हथियारो की कट कट-कट आवाज मैं लगातार बराबर सुन पा रही थी। मेरा बच्चा—' उनकी ये बातें सुनकर मैं सिहर उठा। उनकी अन्तिम बक बक भी क्या अजीब थी, "जान बचाना डाक्टर का धम होता है। जान लना कसाइयो का धधा होता है !'

इसी घटना को लेकर मुझम और सुलू मे झगडा हो गया। वह हमारा पहला झगडा था। तब तक तो मैं यही मानता था कि उस मामले मे मैंने अपना कत्तव्य पूरा किया। किन्तु सुलू ने मुझसे सीधा सवाल किया, 'आपने नौकरी पर लात क्या नही मार दी ?"

दिनकर के यहा आ जाने क बाद से उसके इस सवाल का अथ धीरे-धीरे मेरी समझ म आने लगा। दुनिया म पैस की प्रतिष्ठा अवश्य है, किन्तु ध्येय की भी अपनी प्रतिष्ठा है !

दिनकर और सुलू मे दोस्ती बढने लगी। उसी के आग्रह पर मैंने जेल का अन्न सत्याग्रह रुकवा दिया, राजासाहब के जन्म दिन की खुशी मे सभी

राजवंदियों की रिहाई करवा दी। किन्तु मुझे जब दिखाई देने लगा कि जीवन में एक ही बार मिले अपने प्यार के रास्ते मे दिनकर एक बाधा बनता जा रहा है, मुझे [illegible] लगा। और अन्त मे—

दिनकर की मां सख्त बीमार थी। उसे देख आने के लिए दिनकर के जीजाजी ने मुझे बुला भेजा। मैं गया। दिनकर अपनी मा के पास था ही नही। किन्तु उसके नाम सुलू का लिखा एक पत्र दिनकर की मा के सिरहाने पडा था। सुलू की लिखावट पहिचान कर मैंने वह पत्र उठा लिया।

'सीने म जारो का दद उठा है। अभी इसी वक्त मिलने चले आओ,' ऐसा उसन उस पत्र मे लिखा था। मैं अच्छी तरह जानता था कि सुलू को ऐसी कोई बीमारी नही है।

मैं बगले पर वापस आया सुलू के कमरे का द्वार खोल दिया। हड बडाहट म वह दिनकर से कसकर लिपट गई, यह मैंने देखा ही था कि—

उसके बाद के चौबीस घण्टे कैसे बीते मैं ही जानता हू ! सुलू से न जाने मैंने क्या-क्या भला बुरा नही कहा ! उसने भी काफी अडबड बातें कही ! मुझे बिना सूचना दिए ही वह चली गई !

बम्बई मे कमल विधवा हो चुकी थी और जब भी मैं काम से बम्बई जाता मुझसे अवश्य मिला करती थी। सुलू के चले जाने के बाद मैंने गुस्से म ही कमल को तार दे दिया। मुझे किसी-न किसी इसान के साथ की नितात ही अतीव आवश्यकता थी। कमल आ तो गई, किन्तु—

भगवतराव अचानक उठ खडे हुए और चलने लगे। वर्षा की बडी बडी बूदें गिरने लगी थी।

चलते चलते भगवतराव ने हसकर दादासाहब से कहा, मेरी ये आप बीती सुनकर आप शायद ऊब गए होंगे। किन्तु मेरी अवस्था तो बुखार मे बडबडाने वाले मरीज जसी हो गई ! कभी लगता है मेरे आचरण म कोई गलती नही थी। कभी सोचता हू, पुराने कपडो की भाति जीवन म मन के विचार भी पुराने पड जाते है। पुराने कपडे त्यागकर हम नए कपडे सिलाने ही पडते हैं। उसी प्रकार इसान को नया मन तयार करना ही पडता है। मैंने सोचा था कि सुलू के सहवास मे शायद यह सामर्थ्य मुझे

प्राप्त हो जाती ! किन्तु—

उन्ह बीच म टोककर दादासाहब ने कहा, "आज कल म सुलू वापस आ ही जाएगी। किन्तु उसने आपको देने के लिए—'

अब तक दोनो बगले के फाटक तक आ गए थे। भगवतराव ने अधीरता स कहा "तो आपने आते ही यह पहले क्यो नही बताया ?"

व बालक सदृश्य फुर्ती से दौडकर बगले की सीढिया चढ गए।

उनके हाथ मे दादासाहब ने सुलू की लिखी रामकहानी दे ता दी, किन्तु दूसरे ही क्षण उनका कलेजा धक धक करने लगा। उस कहानी म सुलू ने बिना झिझक हर घटना साफ-साफ लिख दी थी। कुछ भी छिपाया नही था। दिनकर का चुम्बन लेने की उसके मन म प्रबल हो उठी कामना भी – नही नही ! भगवतराव को भला वह बात कैसे जचेगी ?

किन्तु भगवतराव दादासाहब द्वारा दी गई वह मोटी कापी लेकर अपने ऊपर वाले कमरे मे कभी के जा भी चुके थे।

दादासाहब को किसी भी तरह नीद नही आ रही थी, घडी मे एक घण्टा बजा।

उन्होंने सोचा शायद एक बज चुका है ! दिलीप को फासी पर चढने के लिए अब पाच छह घण्टे ही तो रह गए ह। इस बीच उसकी रिहाई कैसे—

दादासाहब जागे फिर घडी के घण्टे की आवाज से ही !

उन्होने खिडकी स बाहर देखा। पौ फट चुकी थी। किन्तु रिमझिम पानी बरसने के कारण वातावरण मे मायूसी छाई थी। इतनी देर तक सोए रहने के कारण दादासाहब स्वयम् चकित रह गए थे। बाहर आकर वे जल्दी जल्दी भगवतराव के कमरे की ओर जाने लगे तो नौकर ने कहा, 'मालिक तो कब के बाहर चले गए !'

दादासाहब न सोचा, भगवतराव जेल के मुख्य अधिकारी भी है और इसीलिए फासी दन के समय उन्हें स्वयम् उपस्थित रहना पडता होगा। लेकिन यह ख्याल आते ही उनके होश उड स गए। जैसे-तसे वे दीवानखाने मे आकर बठ गए।

सामने ही, क्रौंचवध का वह चित्र टगा था। उनकी आखो के सामने दिनकर खड़ा हो गया। निषाद, पीली कर बाण हवा म टुकडे-टुकडे करने वाला एक युवक-उस' चित्र मे और चित्रित किया जाए तो वह आन वाले कल की दुनिया का प्रतीक होगा, ऐसा उसन लिखा था। दादासाहब व्यग्र म ही उस युवक की कल्पना करने लगे। तभी उन्हें सुनाई दिया, 'मालकिन, मालकिन!'

दादासाहब ने दरवाजे मे जाकर देखा। फाटक खोलकर सुलू ही भीतर आ रही थी। उसकी चाल बहुत ही धीमी थी। इन दो दिनो म वह एकदम सूख भी गइ थी। उसकी हसती आखा मे एक अजीब फीकापन छा गया था।

सीढिया चढकर आते ही उसने दादासाहब की ओर देखा।

तुरत उसने मुह फेर लिया। दादासाहब आगे बढे और उसकी पीठ सहलाने लगे। साडी के पल्लू से अपने आसू पोछते हुए सुलू ने कहा, 'राजासाहब से सारी बातें साफ-साफ कह देने का निश्चय कर मैं यहा आई हू। य तीन रातें मैंने कसे गुजारी—दादा, मुझपर नाराज मत होइए और उन्ह भी कह दीजिए कि सुलू तुम्हारी ही है, किन्तु दिनकर का इस ससार मे सुलू के अलावा कोई भी नही है!'

और अधिक बोल पाना उसके लिए असम्भव-सा हो गया। वह दीवानखाने म जाकर धम् से नीचे बठ गई और दोनो हथेलियो मे मुह छिपा कर फूट फूटकर रोने लगी।

घडी सात मे पाच मिनट दिखा रही थी। दादासाहब ने सोचा, काश, सुलू एक दिन पहले तो आई होती! अब—एकदम अतिम क्षण—

अभी इसी क्षण इस कार म बिठाकर जेलखाने की ओर ले जाया जाए तो कैसा रहेगा? क्या भरोसा, एकाध मिनट की भी देरी हो गई तो—

सामने वाले उस चित्र म रक्तस्नात पडे उस पछी पर दादासाहब की नजर गडी गई। उनसे उस चित्र की ओर देखा न गया। उन्होने आखे मूद ली।

तभी बाहर कार आकर रुकने की आवाज आई। दादासाहब उठकर द्वार तक आ गए। कार से भगवतराव उतर रहे थे। शायद कार म और

भी कोई था। उतरते-उतरते भगवतराव उस व्यक्ति से बातें भी कर रहे थे।

दिनकर को फासी दिलवा कर ही शायद वे लौटे थे।

अब सुलू से क्या कहा जाए ? दादासाहब पसीना पसीना हो गए। गला सूखने लगा।

वह दूसरा व्यक्ति भी अब कार से बाहर आ चुका था।

दादासाहब ने गौर से देखा—जी हा, वह तो दिनकर ही था ! पहले से कुछ निराला लग रहा। किन्तु—

छोटे बच्चे की भान्ति तालिया पीटकर दादासाहब ने कहा, 'सुलू, सुलू—'

सुलू ने सिर उठा कर देखा। उसकी समझ मे नही आ रहा था, दादा-साहब का किस बात की इतनी खुशी हो गई है।

दादासाहब उसे लगभग खीच कर ही दरवाजे मे ले गए। भगवतराव और दिनकर फाटक से भीतर आ रहे थे। सुलू अपनी आखो का भरोसा नही कर पा रही थी। दादा के कधे पर माथा टेक कर उसके मुँह से उद्गार निकला—'दादा—' मानो पूछ रही हो, 'दादा, यह सब सपना तो नही है न ?'

उसने सिर उठा कर फिर मुडकर देखा। वह सपना नही था। भगवत राव तथा दिनकर प्रसन्नता से हँसते हँसते बातें करते चले आ रहे थे।

हर्ष के मारे कही मूर्छित होकर गिर न पड़ू, सुलू को भय लगने लगा था। आदमी की आहट पाते ही पेड की टहनी पर खेल रही गिलहरी फौरन उसकी चोटी पर पहुँच जाती है, उसी तरह सुलू भाग कर तीसरी मजिल के अपने कमरे मे गई।

दिनकर ने आते ही दादासाहब को झुक कर प्रणाम किया तो वे गद-गद हो गए। तुरन्त दिनकर ने हँसते हुए कहा, 'दादासाहब, आप मुझे उप-देश दिया करते थे, न ? वसा ही उपदेश आज भी देना होगा।'

किसे ?'

भगवतराव को। उन्होने आज केवल मुझे ही रिहा नही करवाया, बल्कि अपने आपको भी रिहा कर लिया है।'

'मैं समझा नही'?'

'उन्होने अपने पद का त्यागपत्र दे दिया है । और मलेरिया निवारण की दवाइया पर अनुसधान करने के लिए अभी आठ बजे वाली गाडी से कलकत्ता जाना चाह रहे हैं !'

'लेकिन वे नही जा सकेंगे !'

घडी देख कर भगवतराव ने कहा, 'क्या नही जा सकेंगे ? बैग मे चार कपडे डाले और मेरी प्रवास की तयारी हो गई ! बाकी बातें—'

'जो भी हो, अपना बूढे आदमी का भविष्य कथन है कि आज आठ की गाडी से तो क्या, बल्कि अभी दो चार दिना मे भी आप कही नही जा सकेंगे !'

'चलो, मै भी चुनौती स्वीकार करता हू । देखें तो कैसे नही जा सकता मैं । कह कर भगवतराव जल्दी जल्दी सीढ़िया चढ कर अपने कमरे में गए ।

कमरे म पाव रखते ही उनका ध्यान अपने पलग की ओर गया। नौकर पर इतना गुस्सा चढ आया उन्हे ! क्या दशा कर रखी थी कमरे की । चद्दरें, तकिया, कम्बल सब अस्त-व्यस्त पडे थे, कोई आकर देखता तो उसे लगता, भगवतराव अभी सोए पडे है ।

उन्होने जल्दी से अपना बग निकाला । भीतर का सारा सामान निकाल कर प्रवास के लिए आवश्यक चीजें उसमे भरने लगे । तभी विवाह के बाद का सुलू का एक फोटा हाथ लगा । भगवतराव फोटो की ओर एकटक देखते रहे । भावना के आवेग मे वे फोटो का चुबन लेने कुछ झुके ही थे कि किसीने पीछे स आकर वह फोटो उनके हाथ से छीन ली ।

इस समय और ऐसा मजाक—शायद कमल ऊपर आ गई होगी !

भगवतराव ने क्रोध म मुडकर देखा ।

फोटो हाथ मे लिए सुलोचना वहा हसते खडी थी ।

भगवतराव ने एकदम उसे बाहो मे भर लिया। अपने कन्धे पर आश्वस्त उसका सिर ममता से सहलाते समय भगवतराव को लग रहा था —दुनिया भर के सभी सुख इस समय मेरी सेवा में हाथ जोडे खडे है !

सुलोचना का चुबन लेने वे झुके तो 'कोई देख लेगा न' कहते हुए

सुलू ने उनकी बाहो मे मुह छिपा लिया। शर्माने की उसकी यह अदा देख कर भगवतराव ने हसते हुए कहा, 'इतना भी क्या शरमाना ? यहा हम दो ही तो है !'

अपने बिल से बाहर झाकने वाले खरगोश की अदा से सुलू ने उनकी बाहो से मुह बाहर निकाला और नजर से नजर भिडाते हुए कहा, 'जी नही ! यहा हम तीन हैं ?'

'तीन !'

'जी !' फिर से उनकी बाहो मे मुह छिपाते हुए सुलू ने कहा, 'हमारा मुन्ना जा है !'

कल रात पढी सुलू की वह रामकहानी भगवतराव को याद आई। कहानी के अन्त मे फूलो की बरसात हो रही है, ऐसा आभास उन्होने अनुभव किया।

नीचे से सितार पर मधुर धुन के स्वर सुनाई देने लगे।

तभी बाहर से आवाज आई, 'सुलू दीदी !' सुलोचना ने झट अपन-आपको भगवतराव के बाहुपाश से छुडा लिया।

दिनकर को द्वार मे खडा देखते ही उसने कहा, दिलीप !'

नीचे से सितार की धुन अब अधिक स्पष्ट सुनाई देने लगी—'इस तन-धन की कौन बढाई—'

पति पत्नी को आभास हुआ कि कमरे के द्वार पर दिलीप नही, सितार की झकार के आत, मधुर, उदात्त सुर ही साकार होकर खडे हैं। दोनो को लगा कि उसकी आखें मानो यही कह रही हैं—

प्रीति क्राति का ही दूसरा नाम है।

□□